

वर्ष 37, अंक-5, सितंबर-अक्तूबर, 2014

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

प्रेमचंद विशेषांक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय

साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	: 23378616 23370698	प्रशासन अनुभाग	: 23370834
महानिदेशक	: 23378103 23370471	अनुरक्षण अनुभाग	: 23378849
उप-महानिदेशक (डी.ए.)	: 23370784	वित्त एवं लेखा अनुभाग	: 23370227
उप-महानिदेशक (ए.एस.)	: 23370228	भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	: 23379386
निदेशक (जे.के.)	: 23370794 23379249	अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	: 23370391
		अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	: 23370234
		अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	: 23379371
		हिंदी अनुभाग	: 23379309-10 एक्स.-3388, 3347

गगनांचल

सितंबर-अक्टूबर, 2014

प्रकाशक

सतीश चंद मेहता
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

संपादक

अरुण कुमार साहू
उप-महानिदेशक (ए.एस.)

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002
ई-मेल : ddgas.iccr@nic.in

गगनांचल अब वेबसाइट पर भी उपलब्ध है। www.iccr.gov.in पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

	शुल्क दर	
वार्षिक :	₹	500
	यू.एस. \$	100
त्रैवार्षिक :	₹	1200
	यू.एस. \$	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

लेख

- सामाजिक सरोकारों के अग्रणी लेखक
पुष्पपाल सिंह 5
- प्रेमचंद एक बहुआयामी व्यक्तित्व
रति लाल शाहीन 10
- प्रेमचंद और प्रसाद - एक सिक्के के दो पहलू
डॉ. सुशीलकुमार पांडेय 'साहित्येंदु' 12
- स्त्री विमर्श और प्रेमचंद
डॉ. आरती स्मित 16
- प्रेमचंद की कहानी-कला
डॉ. श्रीनिवास त्यागी 20
- प्रेमचंद और रवींद्रनाथ ठाकुर
डॉ. रामचंद्र राय 23
- संभावनाओं और अपेक्षाओं से भरा उपन्यास है कर्मभूमि
डॉ. मंजु तंवर 25
- अनुवाद साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद का योगदान
डॉ. हरीश कुमार सेठी 30
- प्रेमचंद और चार्ल्स डिकेंस—यथार्थवाद के महापंडित
डॉ. वेद मित्र शुक्ल 37
- कथाकार प्रेमचंद का आलोचना पक्ष
डॉ. रमा 41
- संवेदनशील मनुष्य को रचता प्रेमचंद का बाल साहित्य
कविता भाटिया 45
- प्रेमचंद और फकीर मोहन सेनापति के कथा साहित्य में व्यक्त कृषक जीवन
डॉ. एनी राय 48
- प्रेमचंद के साहित्य में यथार्थ का स्वरूप
डॉ. संगीता त्यागी 54
- प्रेमचंद के कथा साहित्य में सांप्रदायिक सौहार्द
डॉ. श्रुति रंजना मिश्र 57



पंडित उदयशंकर का नृत्य संसार ललित शर्मा	60
कोरियाई साहित्य में मां डॉ. दिविक रमेश	65
प्राचीन मंदिरों की स्थापत्य-विरासत एवं संरक्षण डॉ. अनुज कुमार	68
दिनकर का गद्यकार रूप सुरेश सक्सेना	70
जबान पर चाहिए लगाम डॉ. केशव फालके	73

कहानी

लाग-डांट मुंशी प्रेमचंद	76
तुम्हीं ने तो कहा था डॉ. प्रीति	80
असली दहेज डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'	84

कविता/गीत/गजल/दोहे/नवगीत

भावर्षि प्रेमचंद/ तुम्हें प्रणाम डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'	90
धुनकर इंद्रा रानी	90
अशांत इंद्रा रानी	91
मां लक्ष्मी घर आ रही, खोलो बंद किवार प्रा. प्रेमचंद सोनवाने	91
अधर पर गीत हों तो... डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'घायावर'	92
महानगरी/ संपादक ललित शेखर	92-93
मैंने लिख दिया प्रेम/मैं और तुम कविता विकास	93
एक प्रश्न लघु-सा मीरा अवस्थी	94



प्रकाशक की ओर से



साहित्य का उद्देश्य केवल लोगों को संदेश देना नहीं होता है, बल्कि श्रेष्ठ साहित्य तो अपने युग का जीता-जागता दस्तावेज होता है। उसमें उस कालखंड की समस्याओं, विशेषताओं, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का विशद वर्णन होता है। पाठक में उस साहित्य को पढ़कर एक नई सोच एवं चेतना का उदय होता है।

हिंदी भाषा के महान कथाकार, उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य की विविध विधाओं—कहानी, उपन्यास, नाटक, बाल साहित्य आदि पर न केवल लिखा, बल्कि उस समय के समाज में फैली विसंगतियों, विशेषताओं और सामाजिक परिस्थितियों से भी पाठकों को रूबरू करवाया।

उन्होंने समाज में फैली बाल, विधवा, बेमेल विवाह, स्त्री अशिक्षा, छुआछूत जैसी विसंगतियों को अपने साहित्य के कैनवास पर इस तरह से उकेरा है कि वह शुष्क भाषणबाजी न होकर पाठक के मन-मस्तिष्क को बेहद संवेदनशीलता के साथ स्पर्श करती है।

ऐसे ही प्रख्यात साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद पर 'गगनांचल' पत्रिका का यह अंक समर्पित है। उनके जीवन एवं साहित्य का फलक इतना व्यापक है कि उसको एक अंक में समेटना मुश्किल है, लेकिन फिर भी हमने एक विनम्र प्रयास किया है। आशा है हमारा यह प्रयास हमारे पाठकों को अवश्य पसंद आएगा।

सतीश चंद मेहता

(सतीश चंद मेहता)

महानिदेशक

संपादक की ओर से



भारतीय भाषाओं में कुछ ही लेखक ऐसे हैं जिन्होंने समय की सीमा पार की और विश्व साहित्य के इतिहास में महानतम लेखकों के बीच में गिने जाने का गौरव प्राप्त किया। मुंशी प्रेमचंद उनमें से एक हैं। उनकी रचना में मानव अस्तित्व की सार्वभौमिक दुर्दशा और उत्तरजीविता एवं पहचान के लिए उनके संघर्ष का स्पर्श मिलता है। प्रेमचंद अत्यंत सादगी के साथ कहानियां लिखते थे जो पाठक के दिल को छू लेती हैं, उसे अपनी रचना का भाग बना लेती हैं और उसे रचना के मुख्यपात्र के साथ-साथ खुशी, दर्द और पीड़ा महसूस करवाती हैं।

आज जैसे-जैसे हम 21वीं सदी के शुरुआती दशक के बीच से गुज़र रहे हैं वैसे-वैसे युद्ध, असिहष्णता और सांप्रदायिक विभाजन के बीच अस्तित्व, पहचान और उत्तरजीविता के लिए हमारा संघर्ष जारी है और ऐसे में मुंशी प्रेमचंद द्वारा दर्शाया गया मानव प्रयास का लोकाचार मान्य रहेगा।

‘गगनांचल’ के इस अंक में हमने मुंशी प्रेमचंद और उनके लेखन और इससे अधिक महत्वपूर्ण बात उनकी मानव के लिए सहानुभूति और उनके कष्टपूर्ण परिश्रम को अधिक समझाने का प्रयास किया है।

मैं आशा करता हूँ कि हमारे पाठक इस प्रयास की सराहना करेंगे। मैं आपकी प्रतिक्रिया और सुझावों का स्वागत करता हूँ।

अरुण साहू

(अरुण कुमार साहू)

संयुक्त सचिव एवं उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सामाजिक सरोकारों के अग्रणी लेखक

पुष्पपाल सिंह

कई पुरस्कारों से सम्मानित पटियाला के पंजाबी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष पुष्पपाल सिंह की विविध विषयों पर तीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन में सक्रिय।

प्रेमचंद अपने समय के ही कुशल चित्ते नहीं थे। उन्होंने अपने समय के समाज की संरचना में गहरे प्रवेश कर अपने विपुल साहित्य में उसे इस रूप में चित्रित किया कि न केवल उसे अपितु आने वाले समय को भी एक उचित दिशा मिले। उनका ग्राम समाज कृषक प्रधान था। इस समाज का कोई पात्र और उसकी कोई समस्या ऐसी नहीं थी जो कि उनकी दृष्टि से छूट गई हो। उनके सुपुत्र अमृतराय ने अपने एक भाषण में कहा था, “मैं नहीं समझता कि भारतीय कहानियों, कथाकारों में किसी भी भाषा में, ऐसा कोई कथाकार है जिसने इस देश के किसानों के मर्म को समझा है या उसके दुख-दर्द को वाणी दी है, उस तरह जिस तरह प्रेमचंद ने दी है और जिस माने में कि ये देश अस्सी फीसदी किसानों का ही देश है और हमारे तमाम सोचने-बिचारने पर भी, हमारे उस ग्राम्य परिवेश का भी बहुत बड़ा असर है।” इस ग्राम्य परिवेश में प्रेमचंद इतने गहरे उतरे हैं, उनके दुःख-दर्द में उनकी इतनी गहरी सांझ है कि वे इसकी सांस-सांस से परिचित हैं। अमृतराय ने इसे उनका “आपा खो कर किसान से मिलना” कहा है। वस्तुतः प्रेमचंद अपना ‘आपा खोकर’ सब कुछ भूल-बिसरा कर, भारतीय किसान के अंग-संग रहे थे। उसकी भाषा, वेशभूषा, व्यवहार, रहन-सहन, कहन, आदि से वे जिस रूप में परिचित हैं,

उसमें रमे, रचे-बसे हैं, उतना अन्य कोई कथाकार नहीं। प्रेमचंद ने जर्जर अवस्था में जीते फटेहाल अपने समकालीन किसान को जिस रूप में चित्रित किया है, अपनी रचनाओं में जिस रूप में जिया है, वह उस काल के किसान की सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों का अधिकाधिक प्रलेखन (डाक्यूमेंटेशन) है। किसान के माध्यम से ही वे भारत की पूरी सामाजिक संरचना में प्रवेश कर इस महादेश का समाज-शास्त्र अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं किंतु कहीं भी वे इस वैचारिकता को साहित्य में उठाते या आरोपित नहीं करते हैं। किस्सागोई के अपने सहज गुण से वे पाठक के साथ-साथ हो चलते हैं। इस प्रकार उनके यहां वैचारिकता और कथा-रस का एक विरल मंजुल सहकार सदैव उपस्थित रहता है। इसलिए उनकी रचना किसी वर्ग विशेष की न रह कर मेरी, तेरी, उसकी, सबकी बन जाती है। कथा को सामान्यजन के लिए बना देना उनकी कलम की खूबी है।

‘विपन्नता के अथाह सागर’ (‘गोदान’ के शब्द) में पड़ा प्रेमचंद का यह किसान किसान की पेशे से आजिज आ गया वह किसान है, खेती जिसके लिए एक अभिशाप, गले में पड़ा सांप हो गई है जिसे न छोड़ते बनता है, न करते। गरीबी की मार से बिलबिलाता यह किसान केवल ‘मरजाद’ (मर्यादा) रक्षा के लिए खेती कर रहा है। बार-बार कहानियों और ‘गोदान’ आदि उपन्यासों में किसान अपनी इस बेचारगी को तरह-तरह से किंतु बहुत स्पष्ट रूप में शब्द देता है। किसान को बारंबार यह भान होता है कि उसकी दशा मजदूर से भी बदतर है। वह किसानी इसीलिए कर रहा है

कि किसानों में ‘पत’, ‘मर्यादा’ है जो मजदूरी में नहीं। इसी पत-रक्षा के लिए वह इसमें मर-खप रहा है। किसान की इस व्यथा को प्रेमचंद अपनी ‘सवा सेर गेहूं’, ‘मुक्तिधन’, ‘बैर का अंत’, ‘अलग्योझा’, ‘सद्गति’, ‘सभ्यता का रहस्य’ आदि कहानियों में चित्रित करते हैं। ‘सभ्यता का रहस्य’ कहानी में इन स्थितियों का बहुत सूक्ष्म विश्लेषण है, “दमड़ी के पास कुल छः बिस्वे जमीन थी। पर इतने प्राणियों का खर्च भी था। उसके दो लड़के, दो लड़कियां और स्त्री खेती में लगे रहते थे, फिर भी पेट को रोटियां मयस्सर नहीं होती थीं। अगर सब के सब घर से निकल मजदूरी करने लगते, तो आराम से रह सकते थे। लेकिन मौरूसी किसान मजदूर कहलाने का अपमान न सह सकता था। इस बदनामी से बचने के लिए दो बैल बांध रखे थे। उसके वेतन का भाग बैलों के दाने-चारे में उड़ जाता था। ये सारी तकलीफें मंजूर थीं, पर खेती छोड़ कर मजदूर बन जाना मंजूर न था। किसान की जो प्रतिष्ठा है वह कहीं मंजूर की हो सकती है, चाहे वह रुपया रोज ही क्यों न कमाएं।”

इन स्थितियों के बीच जूझता किसान ‘गोदान’ के होरी के रूप में अपने तीन बीघे के किले से ‘हारे हुए महीप की भांति चिपका’ बैठा रहता है। उसकी नियति अंततः सड़क कूटने वाले मजदूर की नियति को प्राप्त करती है। वस्तुतः भूमि कृषक के लिए पुरखों की ‘जैजात’ (जायदाद) है, उसके वह ‘महतो’ कहलाने का सुख प्राप्त करता है, भले ही वह मजदूर को अपने से अच्छी रोटी खाते देखता है किंतु जमीन का मोह उसे मजदूर के उस सुख से भी वंचित रखता है। ‘वैर का अंत’

कहानी इसी सत्य की तीव्र प्रतीति कराती है, रामेश्वर राय मजदूरी करता है तो मानो उस पर वज्रपात हो जाता है, उसे यह 'मान-मर्यादा से हाथ धोना' लगता है। ये सारी स्थितियां आज भी प्रकारांतर से छोटे किसान के इर्द-गिर्द पसरी हुई हैं। इन्हीं कारणों की गिरफ्त में पड़ा आज भी किसान 'आत्महत्या' करने को अभिशप्त है। होरी भी कर्ज की मार से त्रस्त यही अभिलाषा पालता है कि "हम राज नहीं चाहते, भोग-विलास नहीं चाहते, खाली मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं।"

किसान का रक्त चूसने वाली शक्तियां साहूकार-महाजन भी किसान की इस दुर्दशा से परिचित है, पर वे अपने स्वार्थ के कारण उनकी कोई भी सहायता नहीं करना चाहतीं। 'गोदान' में दुलारी सहुआइन के द्वारा यह बात स्पष्ट होती है। उसका रुपया गांव में सूद पर डूबा पड़ा है, पर वह भी 'किसानी' में ही 'मरजाद' (मर्यादा) की बात करती है, "असल बात यह है कि किसी के पास है ही नहीं, दे कहां से? सबकी दशा देखती है, इसी मारे सबर कर जाती है। लोग किसी तरह पेट पाल रहे हैं, और क्या! खेती-बारी बेचने की मैं सलाह न दूंगी। कुछ नहीं है, मरजाद तो है।" छोटा किसान आज भी इसी द्वैत में जी रहा है। प्रेमचंद ने इस किसान को उसके सर्वांग में अपनी रचनाओं में जिया है।

किसान की अकूत गरीबी का चित्रण वस्तुतः उन्होंने 'आपा खोकर' किया है। 'पूस की रात' का हरखू जो जिंदगी-भर अपने कंबल के लिए तीन रुपए नहीं जुटा पाता, वह भी नील गायों द्वारा खेत चर कर चौपट किए जाने पर भी एक तुष्टि भाव से भरा हुआ है कि अब पूस की रात के जाड़े में यहां सोना तो नहीं पड़ेगा। अपने सर्वनाश पर यह तुष्टि भाव घोर गरीबी के ही कारण तो उत्पन्न हुआ है। 'गोदान' में होरी की गरीबी कितने ही कोणों से चित्रित हुई है। होरी जीवन भर गरीबी की मार सहता रहा किंतु जीवन के अंत में अपनी गरीबी से जो समझौता उसे करना पड़ा, उसने उसे पूरी

तरह तोड़ कर रख दिया। यह वह क्षण है जब उसे अपनी फूल-सी कोमल छोटी बेटी रूपा का विवाह अपनी उम्र से दो-चार साल छोटे राम सेवक से दो सौ रुपए ले कर करने को तैयार होना पड़ता है। यह होरी के लिए अत्यंत संताप का समय है। कुल मरजादा, पुरखों की पुश्तैनी जमीन को बचाने के लिए बेटी पर रुपए ले कर वह जिस पाप की गठरी को अपने सिर ले लेता है, उसका भार नहीं उठा पाता है। उन रुपयों को दातादीन से ले कर वह जिंदा ही मर जाता है। आत्मग्लानि की कचोट उसे बारंबार सालती है। प्रेमचंद उसकी मनोभूमि में बहुत गहरे प्रवेश करते हैं, "होरी ने रुपए लिए तो उसका हाथ कांप रहा था, उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुंह से एक शब्द न निकला जैसे अपमान के अथाह गड्ढे में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुंह पर थूक देता है। वह चिल्ला कर कह रहा है, भाइयों मैं दया का पात्र हूं। मैंने नहीं जाना, जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीर कर देखों, इसमें कितना प्राण रह गया है—कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरो से कुचला हुआ। उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छांह में बैठा? उस पर यह अपमान! और अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधर्मी। उसका सारा विश्वास जो अगाध हो कर स्थूल और अंधा हो गया था, मानो टूक-टूक उड़ गया है।"

आत्मग्लानि की इस दाहक स्थिति में ही होरी जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुंच जाता है। उसके बाद अधिक दिन कहां जी पाया वह। आठ आने रोज पर सड़क का मजूदर बन कर दिन-भर खुदाई का भारी काम करते हुए, रात को बारह-बारह बजे तक उसका और धनिया का सुतली कातना—उसके तन का सत ही मजूरी की इस चर्या में निकल जाता है। सुतली की इसी कमायी के बीस आने उसका गोदान बनते हैं। वह जिस कारुणिक और त्रासद रूप

में इस संसार से विदा होता है, लगता है उसका मरण सामान्य मरण नहीं है, एक पूरी किसान वृत्ति की त्रासद मृत्यु है। 'गोदान' का पूरा महावृत्त किसान की इस महामृत्यु का अनुपम आख्यान है। वस्तुतः किसान भू-रक्षा प्रयत्न में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है।

इस संदर्भ में प्रेमचंद की 'रंगभूमि' के सूरदास का स्मरण भी सहसा हो आता है। जो अपनी जमीन की रक्षा में प्राणोत्सर्ग कर देता है। जब देश के कई भागों में भूमि अधिग्रहण के खिलाफ आंदोलन होंगे तो बार-बार 'रंगभूमि' का यह प्रसंग याद आता रहा। प्रेमचंद की दूरदर्शी दृष्टि औद्योगिकीकरण और खुले बाजार के इस भयावह परिणाम को इतने समय पूर्व प्रकल्पित कर लेती है, ऐसी दृष्टि क्रांतदर्शी साहित्यकार के पास ही होती है। जब-जब 'सेजो' (विशेष आर्थिक क्षेत्रों) के लिए जमीन का अधिग्रहण होंगे, 'रंगभूमि' और प्रेमचंद स्मरण में रहेंगे।

प्रेमचंद जिस देश-काल में रह रहे थे, वह अत्यंत उथल-पुथल भरा समय है। उस समय देश की आजादी के लिए चल रहा संघर्ष पूर्ण ताप पर था। प्रेमचंद जैसा सचेत कलाकार अपने समय की इस भारी उथल-पुथल से असंपृक्त कैसे रह सकता था, उन्होंने अपने इस समय को अपनी रचनाओं में पूर्ण जीवंतता से जिया है। वे बहुत कुशलता से राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में अपनी कलम से शिरकत करते हैं। उनकी 'शतरंज के खिलाड़ी', 'जुलूस', 'आहुति', 'दो बैलों की कथा' आदि अनेक कहानियों तथा 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'प्रेमाश्रम' जैसे उपन्यासों तथा कुछ अंशों में 'गोदान' में भी स्वतंत्रता आंदोलन की धमक देखी-सुनी जा सकती है। जिस स्वराज्य के लिए गांधी जी के नेतृत्व में देश आजादी की लड़ाई लड़ रहा था, प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में एकाधिक स्थानों पर उस पर गंभीरता से विचार किया है और अपने स्वराज्य के प्रकल्प को विभिन्न पात्रों द्वारा प्रस्तुत कराया है।

'रंगभूमि' उपन्यास में तो उसकी व्यापकता में चर्चा है ही, कहानी के सीमित कलेवर में भी

वे इस प्रश्न को अनछुआ नहीं रहने देते हैं। 'आहुति' की रूपमणि का यह कथन उनकी धारणा से परिचित होने के लिए द्रष्टव्य है, "...अगर स्वराज्य आने पर भी संपत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा लिखा समाज यों ही स्वार्थाध बना रहे, तो मैं कहूंगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा! अंग्रेजी महाजनों की धन-लोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसीलिए सिर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं? कम-से-कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविंद बैठ जाएं। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ कम से कम विषमता को आश्रय न मिल सके।"

वह आगे कहती है, "जाति हित के लिए प्राण देने वालों को बेवकूफ बनना मुझसे सहा नहीं जाता।" इन कथनों से स्पष्ट है कि प्रेमचंद न केवल अपने वर्तमान का चित्रण कर रहे हैं, आगत की भी उन्हें सुध है, वे आने वाले भविष्य की कल्पना सहज ही करते हैं और आज हम उसी भय और आशंका को भोग रहे हैं जिसे उस क्रांतदर्शी साहित्यकार ने लक्षित किया था।

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण प्रत्यक्षतः तो अनेक स्थानों पर किया है किंतु जिस कौशल से वे इसका चित्रण 'दो बैलों की कथा' में करते हैं उसमें जो उच्च कोटि की कलाकारिता है, वह प्रेमचंद जैसे सशक्त कथाकार की कलम का ही कमाल हो सकती है। 'दो बैलों की कथा' 'हंस' के अक्टूबर 1931 ई. अंक में प्रकाशित हुई अर्थात् यह प्रेमचंद के उस कला-दौर की कहानी है जिसमें 'सवा सेर गेहूँ' (1924), 'शतरंज के खिलाड़ी' (1924), 'पूस की रात' (1930), 'सद्गति' (1930), 'ठाकुर का कुआँ' (1932) जैसी बेहतरीन कहानियों की रचना हुई और 'कफन' जैसी बेजोड़ कहानी का सृजन हुआ। अपनी कथा-यात्रा के इस

अंतिम दौर में प्रेमचंद की कहानी कला की तीन बड़ी उपलब्धियाँ हैं—व्यंग्य की तेज धार की जबर्दस्त मार, अकूत गरीबी का भयावह चित्रण करने की अद्भुत क्षमता और वर्ग संघर्ष की भावना का तीखा अहसास। 'दो बैलों की कथा' में तीनों गुण तो कमोवेश मात्रा में मौजूद हैं ही, इनके साथ ही यहाँ कुछ-कुछ फंतासी और कुछ-कुछ रूपक कथा के तत्व भी विद्यमान हैं, जो कहानी के गहरे पाठ और कई-कई पाठ की मांग करते हैं जिससे कथा के निहितार्थ तक पहुँचा जा सकता है। दो बैलों का दमन और शोषण ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा देश का दमन-शोषण बन जाता है और दोनों बैल भारतीयों के प्रतीक बन जाते हैं। इन बैलों का मूक और पल-पल सुलगता विद्रोह भारतीयों का विद्रोह बन जाता है। कहानी में वर्णित कांजी हाउस भारतीय उपमहाद्वीप है। दो बैलों की कथा के माध्यम से प्रेमचंद मुख्यतः अपने देशवासियों की दुर्दशा का ही चित्रण करना चाहते हैं। इसका स्पष्ट संकेत कहानी के प्रथम अनुच्छेद के उत्तरांश से ही मिल जाता है।

'सीधापन' भारतीयों का सीधापन, संसार के लिए उपयुक्त नहीं है, प्रेमचंद कहानी में इसे रेखांकित करने के लिए बैलों की कथा में अफ्रीका की राजनीति को ले आते हैं और स्पष्टतः कहते हैं कि भारतीयों को अपना सीधापन छोड़ कर जापान का रास्ता अपनाना चाहिए, "सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिए न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्यों दुर्दशा हो रही है? क्यों अमेरिका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचा कर रखते हैं, जी तोड़ कर काम करते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुन कर गम खा जाते हैं। फिर भी बदमाश हैं। कहा जाता है, जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे भी ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गाय बना दिया।"

यह उद्धरण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि यहाँ कथाकार सीधे-सीधे बैलों की कहानी नहीं कर रहा है अपितु कहानी के अंतर्प्रवाह (अंडर करेंट्स) राजनीतिक हैं। यह प्रेमचंद की ही विशेषता है कि वे इस कहानी को मुखर नहीं होने देते। कहानी को 'कहानी' ही रहने देते हैं। उनका विचार कहानी के भीतर से झांकता है, कहानी के ऊपर चढ़ कर नहीं बोलता। बैलों की कथा का निहितार्थ कहानी के फलक को एक विस्तृति देता है। ऐसी विस्तृति जिसमें न केवल अपने देशवासियों की शोषण के जुए के नीचे जुतने की नियति चित्रित है, अपितु उससे निस्तार पाने के लिए सुलगता विद्रोह भी वाणी पाता है। हमारे जातीय मूल्य और धर्मनिष्ठा भी यहाँ घटना-प्रसंगों में उनके अपरिहार्य अंग बना दिए जाते हैं।

मोती और हीरा बैलों के संवाद भी कांग्रेस के नरम दल और गरम दलों की स्थितियों, स्टैंडिंग का प्रतीकात्मक अंकन बन जाते हैं। मोती में एक सशक्त विद्रोह भाव है, तो हीरा को सदैव ही अपने धर्म और मूल्यों की चिंता है। कांजी हाउस की कच्ची दीवार को तोड़ने के लिए दोनों बैल अद्भुत प्रयत्न करते हैं। दोनों अपनी शक्ति भर अपने भीतर सुलगते विद्रोह को वाणी देते हैं, सींगों की मार से दीवार तोड़ देते हैं, चौकीदार द्वारा पकड़ लिए जाते हैं। ये सारी स्थितियाँ राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में संघर्ष करते सेनानियों की स्थितियों से कितना मेल खाती है। ये दोनों भी पुनः बंदी बना लिए जाते हैं और भी मार पड़ती है और भी मोटी रस्सियों से बांध दिए जाते हैं। आखिर, आजादी के इन प्रयत्नों की सार्थकता क्या है? यह प्रश्न कितने ही देशवासियों को मथता होगा। प्रेमचंद इसका उत्तर हीरा-मोती के द्वारा ही दिलवाते हैं—

"मोती ने पड़े-पड़े कहा— "आखिर मार खाई, क्या मिला?"

"अपने बूते भर जोर तो मार लिया।"

"ऐसा जोर मारना किस काम का कि और बंधन में पड़ गए।"

“जोर मारता ही जाऊंगा, चाहे कितने बंधन पड़ते जाएं।”

यह प्रसंग आजादी की लड़ाई में बार-बार जेल जाते, असह्य मार और विभिन्न प्रकार की यातनाएं झेलते वीरों की कुर्बानियों की सार्थकता को कितने महत्त्वपूर्ण रूप में रेखांकित करता है। हीरा-मोती के द्वारा कांजी हाउस की दीवार गिरा दी जाती है, सारे जानवर आजादी के लिए भागने लगते हैं, “पर गधे अभी तक ज्यों के त्यों खड़े थे।” कहना न होगा कि उस समय देश में ऐसे गधों की कमी न थी जो आजादी के संघर्ष से बिलकुल अलग-थलग खड़े थे, प्रेमचंद उन्हीं गधों को रगद रहे हैं। इस प्रकार दो बैलों की यह कथा इतने गहरे सामाजिक-राजनीतिक सरोकारों से लैस है।

आज समाज और साहित्य के सरोकारों में दो प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं—स्त्री प्रश्न और दलित प्रश्न। समाज के इन दो उपेक्षितों, शोषितों की हिमायतदारी में आज प्रेमचंद के अपने-अपने पाठ सृजित कर मनमाने निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं। उन स्थापनाओं की वास्तविकता परखने और उन पर समुचित चर्चा करने का न तो यहां प्रसंग ही है और न उचित अवसर, किंतु यह देखना समीचीन होगा कि इन दो महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रेमचंद जैसे युग-प्रवर्तक साहित्यकार की सोच क्या है और अपनी रचनाधर्मिता में इनसे वे किस तरह रू-ब-रू हुए हैं।

आज स्त्री विमर्श के नाम पर बहुत बड़ी-बड़ी बातें हो रही हैं और इनसे संबंधित साहित्य भी प्रभूत मात्रा में, ‘ढेरों-ढेर’ प्रकाशित हो रहा है, एक नवीन चेतना का उदय भी साहित्य में देखा जा सकता है। बीसवीं शती के प्रारंभिक वर्षों में ही प्रेमचंद ‘निर्मला’, ‘सेवा सदन’, ‘गबन’, ‘रंगभूमि’, ‘गोदान’ आदि उपन्यासों तथा ‘बड़े घर की बेटी’, ‘शांति’, ‘कुसुम’, ‘सुहाग का शव’, ‘नैराश्य लीला’, आदि अनेक कहानियों में भारतीय समाज में स्त्री की दशा को पुनर्परिभाषित करने का प्रयत्न करते हैं।

समाज के आर्थिक पक्ष का चित्रण करते हुए उनकी रचनाशीलता के केंद्र में किसान और मजदूर हैं तो सामाजिक-संबंधों और समस्याओं का चित्रण करते हुए उसके केंद्र में स्त्री है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर उन्होंने अपने लेखों, टिप्पणियों में स्त्री-पक्ष में खड़े होकर उसके अधिकारों की पुरजोर वकालत की है। ‘कुसुम’ कहानी में वे नारी की युग-युग से प्रताड़ित स्थिति को इस प्रकार समीक्षित करते हैं, “आदि काल में स्त्री पुरुष की उसी तरह संपत्ति थी, जैसे गाय, बैल, या खेती-बारी। पुरुष को अधिकार था स्त्री को बेचे, गिरवी रखे या मार डाले। विवाह की प्रथा उस समय केवल यह थी कि वर पक्ष अपने सूर-सामंतों को लेकर सशस्त्र आता था और जो कुछ उसके हाथ लग जाता था, उसे उठा ले जाता था। वह स्त्री को अपने घर ले जाकर बेड़ियां डालकर घर के अंदर बंद कर देता था। उसके आत्म-सम्मान के भावों को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है, सोहाग स्त्री की सबसे बड़ी विभूति है। आज कई हजार वर्ष बीतने पर भी पुरुष के मनोभावों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पुरानी सभी प्रथाएं कुछ विकृत और सुसंस्कृत रूप में मौजूद हैं।”

तत्कालीन समाज में ये बड़े क्रांतिकारी विचार हैं जो हजारों वर्षों की परंपराओं को चुनौती देते हैं। कहानी में ऐसा अवसर खोज निकालना कि वे पूरी परंपरा को खंगाल कर स्त्री की दशा को पूरी तरह विश्लेषित कर सकें, इस बात का सूचक है कि वे स्त्री प्रश्न को कितनी गहराई से अपनी चिंता में ले रहे थे। उस समय विधवा विवाह, बाल-विवाह समस्या को इतने चुनौतीपूर्ण रूप में अपने साहित्य में चित्रित करते हैं कि इस सामाजिक समस्या को समाप्त करने के लिए पूरी तरह कृत-संकल्प हैं। जब शारदा बिल पेश हुआ तो उन्होंने उसका पुरजोर समर्थन किया। उसका पक्ष लेते हुए उन्होंने तेज-तरार टिप्पणियां लिखीं, “जो कुछ भी हो, इस समय हमारा सामाजिक धर्म यह भी है कि शास्त्रों और स्मृतियों की शरण लेकर इस बिल को रद्द

कराने की चेष्टा न करें। विधवाओं के साथ समाज ने बड़ा अन्याय किया है और अन्याय को पाल कर कोई समाज सरसब्ज नहीं हो सकता।” (अक्टूबर 1933)।

स्त्री के अधिकारों की वकालत करते हुए उन्होंने फरवरी 1931 में जो टिप्पणी लिखी, उसमें अन्य बातों के साथ इस बात को बलपूर्वक रखा कि “पिता की संपत्ति पर पुत्रों और पुत्रियों का समान अधिकार हो।” जब 2005 ई. में केंद्रीय सरकार इस अधिकार को कानून का रूप दे सकी तो यह सहज ही ध्यान हो आया कि प्रेमचंद कितने समय पहले इस अधिकार के लिए स्त्री-समर्थन में खड़े हैं।

इससे भी आगे बढ़ कर वे इस टिप्पणी में एक और बात कहते हैं, “तलाक के समय स्त्री-पुरुष की आंधी संपत्ति पाए और यदि मौरूसी जायदाद हो, तो उसका एक अंश।” इसके अतिरिक्त उनकी कहानियों में विवाह संस्था को प्रश्नांकित कर दांपत्य में स्त्री की दायम दर्जे की स्थिति को नकारा गया है। उनकी कहानियों की नारी अपना समान अधिकार मांगती है।

प्रेमचंद नारी को आर्थिक स्वतंत्रता अर्जित करने के लिए भी प्रेरित करते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद नए युग का स्वप्न देखते हैं, उसमें नारी को बहुत सम्मानप्रद भूमिका में खड़ा पाने के लिए अपनी रचनाओं एवं वैचारिक लेखों में निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं।

दलित-प्रश्न पर प्रेमचंद के कथा-साहित्य को लेकर सवाल उठते रहे हैं कि उन्होंने दलितों को उनका समुचित देय नहीं दिया। कहा गया कि उनका लेखन दलितों की ‘स्व-अनुभूति’ का साहित्य नहीं। ‘सहानुभूति’ का साहित्य है। किंतु प्रीतिकर यह है कि अब अनेक दलित लेखक यह स्वीकार करने लगे हैं कि प्रेमचंद ने दलित-समस्या को बहुत सही परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया है। उस संदर्भ में दलित लेखक केवल भारती का यह कथन आदरणीय है, “क्या प्रेमचंद वास्तव में दलित विरोधी थे? दस साल पहले उनकी ‘कफन’

कहानी को लेकर मैं इसी धारणा का हो गया था। पर जैसे-जैसे मैं उनकी अन्य कहानियां, उपन्यास और लेख पढ़ता गया, मैं अपनी धारणा से बाहर आने लगा। मैंने अनुभव किया कि 1936 तक के कालखंड में प्रेमचंद अकेले लेखक हैं जिनसे दलित विमर्श की शुरुआत होती है।”

कंवल भारती आगे कहते हैं, “प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों में दलितों के प्रति सहानुभूति का स्तर सिर्फ दया भाव पर आधारित नहीं है। दया भाव समस्या को नहीं उठाता, बल्कि वह बनाए रखने का यत्न होता है। प्रेमचंद का दलित विमर्श इस यत्न से मुक्त है। वे दलित समस्या की मुक्ति में दलितों के पक्ष में खड़े नजर आते हैं। वे उनकी समस्या को राष्ट्र की समस्या मानते हैं और उनके उत्थान को राष्ट्र का उत्थान।”

प्रेमचंद के दलित विमर्श पर बात करते हुए हमें एक और बात ध्यान रखनी चाहिए कि प्रेमचंद का समय वर्ण-व्यवस्था की कट्टरता में किस प्रकार बुरी तरह जकड़ा हुआ था। प्रेमचंद काशी जैसी पुरातनपंथी नगरी में बैठकर ब्राह्मण मातादीन को जो चुनौती सिलिया चमारिन से दिलाते हैं, वह सामाजिक परिस्थितियों में संभव ही नहीं थी। प्रेमचंद

अपनी कथा में यह यथार्थ स्वयं प्रकल्पित करते हैं। जीवन यथार्थ से दूर प्रेमचंद रचित यह कला यथार्थ कितना उत्प्रेरक है। यह प्रेमचंद के उस तीव्र रोष की भी अभिव्यक्ति है जिसमें वे मातादीन के गले में हड्डी डलवा देते हैं।

‘रंगभूमि’ के सूरदास की अवतारणा भी इसी दिशा में कम क्रांतिकारी पग नहीं है। दलितों के पक्ष की यह लड़ाई विभिन्न रूपों में ‘मंदिर’, ‘ठाकुर का कुआं’, ‘सद्गति’, ‘कफन’ आदि कहानियों में लड़ते हैं। उनकी रचनाओं में दलितों द्वारा प्रतिरोध का स्वर दबा-दबा नहीं है अपितु विद्रोहात्मक और चुनौती भरा है। ‘सद्गति’ जैसी कहानियों में उनके पात्र यदि भाग्यवादी भी हैं तो उनके माध्यम से पूरी वर्ण-व्यवस्था की कलाई खोल दी गई है कि उनकी दुर्दशा को भाग्य पर निर्भर बता कर किस प्रकार दलितों के शोषण का एक और अस्त्र निकाल लिया गया था। उनका मुख्य उद्देश्य दलित जीवन की त्रासद स्थितियों का चित्रण कर उनके प्रति विद्रोह-भाव जगाना था।

प्रेमचंद की कृतियों में अतीत और वर्तमान किस प्रकार एक बिंदु पर आकर खड़े हो जाते हैं, उसका बेहतरीन उदाहरण उनका ‘गबन’

उपन्यास है। ‘गबन’ का पुनर्पाठ प्रेमचंद में नए अर्थ का संधान करता दिखाई देता है। आज के उपभोक्तावादी समय में लालसाएं जिस प्रकार आसमान को छू रही हैं, आकाश ही जिनकी सीमा है (‘स्काई इज द लिमिट’), जिस प्रकार विज्ञापन और विपणन की नई-नई नीतियां डिजाइनर आभूषणों और परिधानों के लिए एषणाएं जगा रही हैं—मनुष्य को अपने साधनों से बाहर जाकर आकर्षक उत्पादों को खरीदने के लिए तरह-तरह के भ्रष्टाचार, कदाचार, धांधलियों (स्कैम्स) में संलिप्त करती जा रही हैं, इन्हीं स्थितियों का शिकार रमानाथ, जालपा और कुछ अंशों में रतन भी होते हैं—अपने साधनों का ध्यान किए बिना ‘सब कुछ’ को प्राप्त करने की लालसा और जुगुतें आज के समय की विडंबना, विद्रूपमयी स्थितियां हैं।

इन्हीं संदर्भों में ‘गबन’ की कथा केवल प्रेमचंद के समय (1930-31) की न रह कर वर्तमान की कथा बन जाती है और उपन्यास पूरी तरह ‘वर्तमान’ का उपन्यास बन जाता है। इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्य में उस समय की ही नहीं आगत की चिंताएं भी पूरी तरह प्रतिच्छायित हैं।

म.नं.-125, ग्राउंड फ्लोर, पॉकेट-9, सेक्टर-24, रोहिणी, नई दिल्ली-110085

प्रेमचंद एक बहुआयामी व्यक्तित्व

रति लाल शाहीन

रति लाल शाहीन : कई पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के साथ-साथ सात पुस्तकें प्रकाशित। कई पुरस्कारों से सम्मानित रति लाल शाहीन फिलहाल स्वतंत्र लेखन में सक्रिय हैं।

मुंशी प्रेमचंद जी के बारे में अगर एक वाक्य कहें कि भारत के गांवों का आईना है उनका साहित्य, तो कोई गलत मीमांसा नहीं होगी। सन् 1915 में उनका साहित्य में पदार्पण हुआ और आज सन् 2014 में भी हिंदुस्तान वैसा का वैसा ही है। वे एक दूरदर्शी साहित्यकार थे। जो दूरदर्शी नहीं होता, वह समय के साथ धरातल में मिल जाता है। प्रेमचंद जी के पास विशाल अनुभूति और असीम अनुभव था। वे वक्त की धड़कन को किसी निष्णात् वैद्य की तरह पहचानते थे। उनकी कहानियों में आज भी ताजगी है।

वे मानते थे कि कला सिर्फ कला के लिए नहीं होती। 'कला के लिए कला' वह समय सही समय होता है, जब देश संपन्न और सुखी हो। आज भी कितने किसान कर्ज और निर्धनता की वजह से आत्महत्या कर अकाल काल कवलित हो रहे हैं।

प्रेमचंद जी ने तीन सौ से ज्यादा कहानियां लिखीं। गोदान, गबन, कर्मभूमि, निर्मला, सेवा सदन जैसे उपन्यास लिखे जिनमें उनके अंतरंग अनुभव और अनुभूति की सच्चाई मिलती है। मानसरोवर के आठ भागों में उनकी कहानियां हैं। कफन और ईदगाह कहानी तो बहुपठित व प्रशंसित हैं, जिनमें कफन कहानी में, कफन के लिए जमा किए गए पैसों को बाप और बेटा शराब और कबाब में खर्च कर देते हैं।

जिस पर तर्क यह देते हैं कि इतने पैसे मरने वाली की दवा-दारू के लिए मिल गए होते, तो वह आज भी जीवित रहती। ईदगाह में सब बच्चे मिठाई-खिलौने खरीदते हैं, मगर हमिद बच्चा अपनी दादी के लिए चिमटा खरीदता है, ताकि रोटियां सेंकते समय दादी का हाथ न जले। कफन के घीसू-माधो के जरिए मुंशी प्रेमचंद जी सवाल पूछना चाहते हैं उनकी इस विचारधारा के लिए जिम्मेदार कौन है?

ठाकुर का कुआं और पूस की रात भी बेहद चर्चित कहानियां हैं जिनमें प्रेमचंद जी ने वर्ग संघर्ष और आम आदमी की दयनीय स्थिति का चित्रांकन किया है। अच्छी कहानी वह होती है, जो पढ़ने के उपरांत पाठक के मन में शुरू होती है और उसे झकझोरने का काम करती है। इस कला में वे सिद्धहस्त थे। इसीलिए वे कथा सम्राट कहानीकार कहे जाते हैं।

उनका 'गोदान' उपन्यास भी बहुचर्चित है, जिसमें सात छोटी-बड़ी कथाएं गुंफित हैं। गोदान में एक प्रसंग नकल उतारने का है। महाजनी सभ्यता जर्मीदारी नासूर को प्रेमचंद जी ने बहुत करीब से देखा था। इसमें ठेकेदार ठाकुर दस रुपए का दस्तावेज लिखवा कर महज पांच रुपए देता है। बाकी रकम नजराने, तहरीर, दस्तूरी और ब्याज के तौर पर काट लेता है—

“यह तो पांच हैं मालिक।”

“पांच नहीं, दस हैं। घर जाकर गिनना।”

“नहीं सरकार! पांच हैं।”

“एक रुपया नजराने का हुआ कि नहीं?”

“हां सरकार!”

“एक कागज का!”

“हां सरकार!”

“एक दस्तूरी का!”

“हां सरकार!”

“एक सूद का!”

“हां सरकार!”

“पांच नकद हुए कि नहीं?”

“हां सरकार! अब यह पांचों भी मेरी ओर से रख लीजिए।”

“कैसा पागल है?”

“नहीं, सरकार! एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक बड़ी ठकुराइन का! एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को! बाकी बचा एक! वह आपकी क्रिया-कर्म के लिए!”

अपनी हास्य-व्यंग्य शैली से प्रेमचंद जी न कही जाने वाली बात भी कह देते हैं।

प्रेमचंद जी ने गरीबी को करीब से देखा था। उनके पिता का नाम अजायब राय था। मां का नाम आनंदी देवी। लमही ग्राम में जन्मे प्रेमचंद ने जीवन में खूब संघर्ष किया। बचपन में डाक विभाग में अल्प वेतन भोगी पिता उनको धनपतराय कहते थे, जबकि चाचा नवाबराय। पांच वर्ष की आयु में तेजस्वी बालक की

शिक्षा-दीक्षा उर्दू-फारसी में शुरू हुई। शैक्षिक जरूरतों के लिए ट्यूशन करते रहे। अठारह रुपए के मासिक वेतन पर शिक्षक बने। फिर, शिक्षा विभाग में ही डिप्टी इंस्पेक्टर हो गए। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित होकर सर्विस छोड़ दी। प्रथम विवाह बस्ती में हुआ। संतोषजनक विवाह न होने के कारण फतेहपुर में विधवा शिवरानी देवी से द्वितीय विवाह किया, जिनसे दो पुत्र श्रीपत राय व अमृत राय हुए। काशी में आकर 'मर्यादा' का संपादन किया। काशी विद्यापीठ में प्रधान अध्यापक बने, पर जी वहां भी नहीं लगा। वहां से लखनऊ आकर 'माधुरी' पत्रिका का संपादन किया। वह कार्य भी छोड़कर वापस काशी चले आए। अपना प्रेस खोल कर 'हंस' एवं 'जागरण' का संपादन करने लगे। मुंबई की फिल्म कंपनी के बुलावे पर मुंबई गए। पर, बीमार हो गए और अपने गांव लमही में लौट आए। वहीं अक्टूबर, 1936 में बैकुंठवास हो गया। इस तरह, उनका जीवन काफी उतार-चढ़ाव से भरा रहा।

वे साहित्यकार को दलितों, वंचितों और पीड़ितों का वकील मानते रहे। हिंदी कहानी को छायावाद से मुक्त करवाकर मानवतावादी और यथार्थवादी धरातल पर ले आए। उनकी कहानियों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कथावस्तु का समावेश मिलता है। उनका साहित्य कल्पना लोक के कृत्रिम वातावरण की बजाय यथार्थ से अनुप्राणित है।

प्रेमचंद ने अपनी कथा को सरल और सजीव

भाषा के प्रयोग से जानदार बनाया है। तुलसी और भारतेन्दु के बाद प्रेमचंद जी ने ही आम-फहम भाषा का प्रयोग किया है। लोग हिंदी सीखें, इसलिए देवकीनंदन खत्री जी ने चंद्रकांता उपन्यास की रचना की थी। प्रेमचंद जी अपने कथावस्तु और कथोपकथन के लिए पढ़े और सराहे जाते हैं। उन्हीं की कहानियों के बाद नई कहानी और अकहानी आंदोलन चले हैं। 'हंस' पत्रिका नाम को दिल्ली से प्रकाशित 'हंस' के राजेंद्र यादव ने जीवित रखा है। प्रेमचंद ने टॉलस्टॉय की कहानियों का हिंदी अनुवाद किया, तो वह भी हिंदीकरण ही लगता है। अन्य लेखकों की तरह प्रेमचंद जी ने बंगला का अनुकरण नहीं किया।

प्रेमचंद जी ने पात्रों के माध्यम से जीवन के सत्व को निचोड़ा है। गोदान में वे लिखते हैं— "मेरे जहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजुबानी से अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है।"

वे लिखते हैं, "इस नई सभ्यता का आधार धन है।"

एक जगह वे लिखते हैं, "धर्म का काम संसार में मेल और एकता पैदा करना होना चाहिए। यहां धर्म ने विभिन्नता और द्वेष पैदा कर दिया है, क्योंकि खान-पान में, रस्म-रिवाज में धर्म अपनी टांगे अड़ाता है।"

गोलमाल में वे लिखते हैं, "भारत का उद्धार अब इसी में है कि हम राष्ट्रधर्म के उपासक

बनें। विशेष अधिकार के लिए न लड़कर, समान अधिकारों के लिए लड़ें।"

एक जगह वे कहते हैं, "खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।"

निर्धनों के बारे में लिखते हैं, "जिस समाज में गरीबों के लिए स्थान नहीं, वह उस घर की तरह है, जिसकी बुनियाद न हो। कोई हल्का-सा धक्का भी उसे जमीन पर गिरा सकता है।"

निराला जी की तरह प्रेमचंद जी को भी अपनी अवहेलना झेलनी पड़ी थी। नंददुलारे बाजपेयी जी ने उनमें प्रोपेगैंडा प्रवृत्ति का होने का इलजाम लगाया था। हंस में 1932 में जवाब देते हुए उन्होंने लिखा था, "सभी लेखक कोई न कोई प्रोपेगैंडा करते हैं। वह सामाजिक, नैतिक व बौद्धिक भी हो सकता है। जो प्रोपेगैंडा नहीं कर सकता, वह विचार शून्य है। उसे कलम हाथ में लेने का कोई अधिकार नहीं है।"

प्रेमचंद जी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कथाकार हैं। इसीलिए उनकी कथाएं आज भी प्रासंगिक हैं। उनका साहित्य अपने आप आकर्षित करता है।

द्वारा संगीता राजपूत,
805/15, नम्रता बिल्डिंग, लिंक रोड, शास्त्री नगर,
गोरेगांव पश्चिम, मुंबई-400104

प्रेमचंद और प्रसाद - एक सिक्के के दो पहलू

डॉ. सुशीलकुमार पांडेय 'साहित्येंदु'

डॉ. सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु' के दो महाकाव्य, एक खंडकाव्य, एक दोहा संग्रह सहित चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

भारतीय साहित्य को प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद दोनों ने विश्व स्तरीय ऊंचाई दी है। इसलिए जब प्रेमचंद के साहित्य का जिक्र होता है तो प्रसाद के साहित्य पर चर्चा भी होती ही है। क्योंकि प्रेमचंद की कथा प्रसाद के बिना अधूरी ही रहेगी। दोनों का जन्म बनारस जनपद में हुआ था और इस नगर से दोनों का निकट का संबंध था।

प्रेमचंद प्रगतिशील साहित्य के तो, जयशंकर प्रसाद छायावाद की नींव के पत्थर थे। यदि प्रेमचंद वर्तमान समाज की त्रासदियों को दूर कर (विशेषकर सामाजिक असमानता) भारत को आगे बढ़ाना चाहते थे तो प्रसाद प्राचीन भारत के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक वैभव, विरासत का स्मरण कर उससे प्रेरणा ग्रहण कर देश को फिर से विश्वगुरु तथा स्वर्ण पक्षी बनाने के पक्ष में थे। प्रेमचंद ने माधुरी (पत्रिका) में प्रसाद पर सीधा आरोप जड़ा था कि वे अपने साहित्य के माध्यम से गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं तो प्रसाद का कथन था कि उनके नाटक रिक्शावानों के लिए नहीं है।¹

यद्यपि दोनों साहित्यकार लेखन परंपरा के दो ध्रुव थे किंतु राहें जुदा होने पर भी उनकी मंजिल एक ही थी—भारत का सर्वांगीण विकास तथा मानवता के उच्च मानदंड की स्थापना। आत्मीयता की यही पावन धारा दोनों को जोड़े रखती थी।

मुंबई से अर्थाभावग्रस्त होकर लौटे मुंशी

प्रेमचंद सबसे पहले प्रसादजी के यहां ही पहुंचे थे। प्रसादजी ने ही उनके रहने का बंदोबस्त भारतेन्दु परिवार के बगीचे में किया था। प्रसाद और प्रेमचंद एक साथ ही सैर पर जाते थे। श्याम बिहारी श्यामल ने प्रसाद को केंद्र बनाकर 'कथा' नामक उपन्यास लिखा है जो नवनीत (मुंबई) के सन् 2010 से 2012 तक लगभग सत्ताईस अंकों में छपा था। श्यामलजी के शब्दों में "प्रसाद ने जगाया, दास उठ बैठे, आंखें मींचते हुए, "सुबह हो चुकी है क्या?", मुस्कराये प्रसाद, हां मैं बाहर निकल रहा हूं प्रातः भ्रमण के लिए... बेनियाबाग में टहला जाएगा... वहां प्रेमचंद भाई साहब भी मिलेंगे××× बेनियाबाग में घुसते-घुसते ऊपर आसमान भीगी धोती जैसा लहराने-चमकने लगा। सामने से आते दिखे मुंशी प्रेमचंद, साथ में कोई एक अन्य सज्जन भी, कुछ ही दूरी पर××× प्रसाद के अभिवादन पर प्रेमचंद ने खिलखिलाते शब्द उछाले, "अभिवादन का काम मेरे हाथ में रहे तो ज्यादा अच्छा लगेगा... बेहतर तो यही होगा कि यथार्थवाद ही दूर से छायावाद को नमस्कार करे।"⁷

आरंभ में प्रेमचंद, प्रसाद के विरोधियों में से थे। उन्होंने प्रसादजी के नाटकों के संबंध में लिखा था कि—'नाटकों में ऐसे प्लॉट का उपयोग करना गड़े मुर्दे का उखाड़ना है।' उनकी यह आलोचना 'माधुरी' में प्रकाशित हुई थी। प्रेमचंद और प्रसाद दो ही सम्मानित महारथी हिंदी संसार में विशेष श्रद्धा के पात्र थे। प्रेमचंद के इन शब्दों का प्रभाव प्रसादजी के ऊपर अवश्य पड़ा था। किंतु वे बाहर से प्रकट करना नहीं चाहते थे। उस आलोचना के कई मास बाद प्रेमचंदजी यहां आए और



प्रसाद और प्रेमचंद : हरिवंश राय बच्चन का खींचा एक दुर्लभ चित्र। चित्र सौजन्य : सहारा समय समग्र

उन्होंने अपने लिखने पर खेद प्रकट किया। अंत में घनिष्ठता इतनी बढ़ी कि प्रतिदिन जब प्रातःकाल प्रसादजी टहलने के लिए विक्टोरिया पार्क में जाते थे तब प्रेमचंदजी से उनकी मुलाकात बराबर होती।¹⁰

साधारण मित्र होते तो एक दूसरे से रूठ जाते, बोल-चाल बंद कर देते पर महान विचारकों की मित्रता भी विलक्षण होती है। प्रेमचंद ने हंस का आत्मकथांक प्रकाशित करने का निश्चय किया और उसमें पहली आत्मकथा प्रसाद की छपी और अंतिम आत्मकथा प्रेमचंद ने अपनी जीवन-सार छपी।¹¹ इसे क्या कहा जाए—प्रसाद को प्रथम और स्वयं को अंतिम स्थान दिया। यही मैत्री का रहस्य है।

इस घटना को शिवपूजन सहाय इस रूप में व्यक्त करते हैं—एक बार प्रेमचंदजी ने



प्रेमचंद का आवास। चित्र सौजन्य : सहारा समय समग्र

अपने हंस में उनके ऐतिहासिक नाटकों पर संपादकीय मत प्रकट करते हुए लिख दिया था कि प्रसादजी प्राचीन इतिहास के गड़े मुर्दे उखाड़ा करते हैं। किंतु जिस समय यह मत प्रकाशित हुआ उस समय भी प्रेमचंदजी सदा की भांति प्रसादजी के साथ बैठकर निर्विकार चित्त से साहित्यिक सलाह करते रहे। दोनों महारथियों में कभी किसी प्रकार का मनोमालिन्य अथवा वैमनस्य नहीं हुआ।¹²

प्रेमचंद तथा प्रसाद के व्यक्तित्व के विषय में रामवृक्ष बेनीपुरी लिखते हैं—हम नए लोग अधिकतर खिंचे रहते थे, प्रसाद और प्रेमचंदजी के निकट। यहां अपनेपन का बोध होता। यद्यपि प्रसाद और प्रेमचंद के रहन सहन और तौर-तरीके में जमीन-आसमान का फर्क था। प्रसादजी रईस थे, रूप-रंग, बात-चीत, रहन-सहन सब में रईस, गोरा चिपटा हुआ मुखमंडल—अब तक एक भी चित्र नहीं देखा, जिसमें उनकी प्रतिकृति सही आई हो। बिहारी की नायिका की तरह, उनका चित्र खींचने में जैसे कैमरा क्रूर सिद्ध हो गया हो। प्रेमचंदजी भी गोरे थे, किंतु उनके चेहरे पर उस जवानी में भी, कितनी झुर्रियां थीं। लटपटी धोती, झब्बेदार कमीज, बेतरतीब मूंछ—ठीक इसके विपरीत प्रसाद जी की चुन्नट पड़ी धोती, रेशमी कुर्ता और चादर सफाचट चमचमाता चेहरा। प्रेमचंदजी बातें करते-करते बेतहाशा

ठूठा मारकर हंस पड़ते। प्रसादजी की मुस्कान गजब की थी, जोरों से हंसते भी तो रईसी शान से ही। प्रेमचंदजी के बालों में भूरेपन के साथ कुछ ललाई थी और आंखों में नीलापन।¹³”

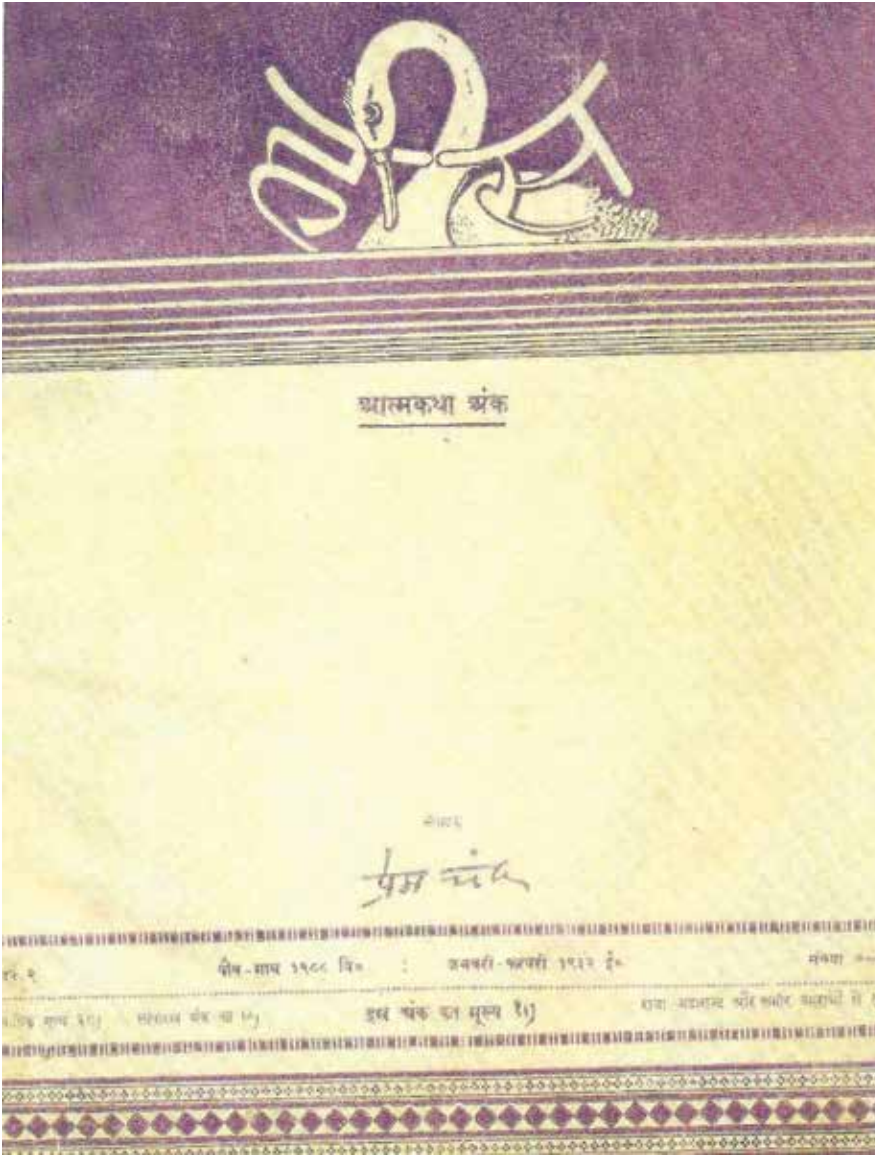
ज्ञानचंद्र जैन लिखते हैं कि- मैं मन ही मन प्रेमचंद और प्रसाद की तुलना करने लगा। प्रेमचंद के व्यक्तित्व में पहली दृष्टि में तनिक भी असाधारणता दृष्टिगोचर नहीं होती थी। वेश-भूषा, आकृति-प्रकृति, बातचीत सब में प्रेमचंदजी आम आदमी से तनिक भी अलग नहीं पड़ते थे। फिर भी उस साधारण से लगने वाले, असाधारण व्यक्ति की आंखों में एक

पैनी चमक थी, वे जैसे पारदर्शी शक्ति रखती थीं। प्रेमचंदजी जब आपकी ओर देखते थे तो ऐसा लगता था कि उनकी आंखें आपके अंतरतम में प्रवेश कर रही हैं। बातचीत में इतने उन्मुक्त भाव से ठहाका लगाते थे कि ऐसा लगता था कि कमरे की दीवारें हिल जाएंगी। उनकी खरी ईमानदारी और सच्चाई उनके एक-एक हाव-भाव में टपकती थी। प्रसादजी के अंग-अंग में उनकी विशिष्टता झलकती थी। उनके तेजोमय मुखमंडल पर उनके ऐश्वर्यपूर्ण जीवन की छाप थी। उनकी मननशीलता की सूचना देने वाला उनका उन्नत भाल, उनके चरित्र की दृढ़ता प्रकट करने वाली उनकी पुष्ट ठोड़ी, उनकी रसिकता के सूचक उनके कोमल पतले होंठ, उनके कलाकार होने के परिचायक उनकी सुकोमल लंबी अंगुलियां, उनके व्यक्तित्व को असाधारणता प्रदान करती थीं।¹⁴”

प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद जैसी महान व्यक्तियों की उपस्थिति में बनारस न तो आनंदित हुआ और न ही उनकी मृत्यु पर शोकग्रस्त। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने एक संस्मरण में प्रेमचंद की अंतिम यात्रा का जिक्र ऐसे किया है कि शवयात्रा में बनारस के बौद्धिकों और साहित्यिकों की भीड़ देखकर एक नगरवासी ने टिप्पणी की थी कि “लगता है किसी मास्टर की मृत्यु हो गई है।” तब प्रसादजी तुरंत बाजपेयीजी की ओर मुड़े और



जयशंकर प्रसाद का आवास। चित्र सौजन्य : सहारा समय समग्र



बोल उठे, आपने देखा, यही बनारस है।

कहा गया है कि जब मानव की मृत्यु होती है तब उससे संबंधित धन जमीन में गड़ा रह जाता है। मृतक जिन पशुओं का स्वामी था, वे सारे पशु बाड़े में ही रह जाते हैं। प्रिया नारी घर के दरवाजे तक ही मृतक का साथ देती है। सखा-मित्र, श्मशान तक साथ देते हैं। देह चिता तक साथ देती है, बाद में धर्म ही साथ जाता है।⁸ प्रसाद ने प्रेमचंद की महायात्रा में सम्मिलित होकर यह सिद्ध कर दिया कि वे प्रेमचंद के सच्चे सखा थे। श्यामल ने इस घड़ी का बड़ा ही मार्मिक चित्र उपस्थित किया है “अर्थी पर (प्रेमचंद का) शव रखे और बांधें जाने के दौरान पास में खड़े प्रसाद स्वयं को

रोक नहीं सके, क्षण भर के विचलन में ही लगा जैसे करुणा का समुद्र लहरा गया हो। मणिकर्णिका पर चिता सजने लगी, प्रसाद स्वयं शास्त्र-सम्मत विधि-प्रबंध की निगरानी और निर्देश में तल्लीन, आग देने के समय रस्म के अनुसार डोमराज ने नेग लेने के लिए हुज्जत शुरू की तो प्रसाद ने हंस कर कहा, “आपको नेग दिए बगैर हम आग लेंगे ही नहीं, किंतु एक बात ठीक से समझ लीजिए कि यह उस शख्स की चिता है जिसकी अपनी आग आपकी इस क्षणभंगुर आग से सर्वथा उलट, अनंत है, जिसकी कलम ने समाज में लगातार अब तक प्राणवंत अग्नि का संचार ही जारी रखा और अब आगे भी उसके लिखे

शब्द युगों-युगों तक यही कार्य करते रहेंगे। बड़े पुत्र श्रीपत के हाथ में जलती हुई कुश की लुकवारी थी। परिक्रमा में उसके पीछ-पीछे सभी घूमने लगे। मुखाग्नि देने की प्रक्रिया चलने लगी। प्रसाद, जैनंद्र, नंददुलारे के साथ ही सभी परिक्रमा करने लगे... प्रसाद ने निकट बैठे, खोए-खोए से नंददुलारे की ओर ताका—“ पंडितजी देखिए... देखिए...चिता की आग को ध्यान से देखिए... लकड़ियों के मोटे-मोटे बोटों से जो लपटें उठ रही हैं उनसे कहीं अधिक तीव्र है, मुंशीजी के भस्म होते दुबले-पतले पार्थिव शरीर से फफाकर निकलने वाली लहरें।”⁹

जैनंद्र कुमार को एक प्रसंग में लगा कि प्रेमचंद तथा प्रसाद में बनती नहीं है पर उन्हें अपना विचार बदलना पड़ा जब वे प्रेमचंद के शवदाह से लौटे तो देखा गया कि हम वहां तीन ही हैं। (धन्नु-बन्नु की बात नहीं कहता, वे थे भी छोटे और अलग) शिवरानीजी हर ढांडस के लिए प्रसाद को देखती हैं और मुझे भी वही सांत्वना है। इस मृत्यु के बाद अपनी मृत्यु पास बुला लेने में उन्होंने एक वर्ष भी नहीं लगाया। कौन जानता है, इस जल्दी में प्रेमचंद के अभाव का योग न था।¹⁵”

प्रेमचंद और प्रसाद के संबंधों की मीमांसा करते हुए नंददुलारे बाजपेयी ने ठीक ही लिखा है कि प्रसाद और प्रेमचंद जी एक दृष्टि से एक दूसरे के पूरक हैं। प्रेमचंदजी का साहित्य मुख्यतः दुःख के आधार पर स्थित है। दुःख का बोध करा देना ही शक्ति का स्रोत बहा देना है, उनका यह मूलमंत्र था। प्रेमचंदजी ने जो आनंद के विधानात्मक पक्ष की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत प्रसादजी संस्कृत और स्वस्थ नारी और पुरुष की शक्ति रहस्य ही प्रकट प्रस्तुत करते रहे। शक्ति का परिचय देना ही दुःख का उच्छेद कर डालना है।¹⁶

प्रेमचंद तथा प्रसाद के साहित्य का मूल स्वर स्वतंत्रता का प्रबल पक्षधर था। प्रेमचंद ने हंस के प्रथम संपादकीय में लिखा था कि “हंस के लिए यह परम सौभाग्य की बात है कि उसका

जन्म ऐसे शुभ अवसर पर हुआ है, जब भारत में एक नए युग का आगमन हो रहा है, जब भारत पराधीनता की बेड़ियों से निकलने के लिए तड़पने लगा है। इस तिथि की यादगार पूरे देश में एक विशाल रूप धारण करेगी... भारत में शांतिमय समर की भेरी बजा दी है। हंस भी मानसरोवर की शांति छोड़कर, अपनी नन्हीं सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए समुद्र पाटने, आजादी की जंग में योग देने चला है।¹⁷”

प्रसाद ने भी एक आह्वान परक गीत में यही भावना व्यक्त करते हुए लिखा—

“हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती स्वयं प्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती- अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञा सोच लो। प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो। असंख्य कीर्ति रश्मियां, विकीर्ण दिव्य दाह सी, सपूत मातृभूमि के, रूको न शूर साहसी। अराति सैन्य सिंधु में, सुवाडवाग्नि से चलो,

प्रवीर हो, जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।¹⁸

निष्कर्ष यह है कि प्रेमचंद और प्रसाद एक दूसरे के पूरक हैं, एक सिक्के दो पहलू हैं। प्रेमचंद को जानने के लिए प्रसाद को भी पहचानना पड़ेगा।

संदर्भ—

1. प्रसाद का कथन सुना जाता है, कहीं पढ़ने को नहीं मिला।
2. सहारा समय समग्र 18.10.2003, पृ.-18 (प्रस्तुतकर्ता व्योमेश शुक्ल)।
3. सहारा समय समग्र 18.10.2003, पृ.-18 (प्रस्तुतकर्ता व्योमेश शुक्ल)।
4. सहारा समय समग्र 18.10.2003, पृ.-18 (प्रस्तुतकर्ता व्योमेश शुक्ल)।
5. स्वतंत्र चेतना, दैनिक समाचार पत्र, लखनऊ 22.12.2014, पृ.-14।
6. राष्ट्रीय सहारा (दैनिक समाचार पत्र), लखनऊ, 16.12.2014, पृ.-9।
7. नवनीत, फरवरी, 2012 पृ. : 114-115।
8. धनानि भूमि: पशवश्च गोष्ठे,

नारीगृहद्वारि सखा श्मशाने।
देहश्चित्तायां परलोक मार्ग,
धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥ परंपरागत।

9. नवनीत जून, 2012 पृ. : 115-116।
10. विनोद शंकर व्यास : अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद संपादक पुरुषोत्तम दास मोदी, पृ.-38।
11. हंस आत्मकथा अंक, जनवरी-फरवरी, 1932 ई. पुनर्मुद्रण विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010 ई.।
12. अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद, पृ.-48।
13. अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद, पृ.-53।
14. अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद, पृ. : 121-122।
15. अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद, पृ.-62।
16. अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद, पृ.-69।
17. हंस आत्मकथा अंक, पुनर्मुद्रण विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
18. चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद।

सरस्वती शिशु मंदिर मार्ग, मु.-पटेलनगर,
पोस्ट-कादीपुर, जिला-सुल्तानपुर
(उत्तर प्रदेश)-228145

स्त्री विमर्श और प्रेमचंद

डॉ. आरती स्मित

डॉ. आरती स्मित : दो काव्य संग्रह एवं एक कहानी संग्रह के अलावा कई पत्र-पत्रिकाओं में आलेखों का प्रकाशन। वर्तमान में अनुवाद एवं स्वतंत्र लेखन।

इक्कीसवीं सदी अपने साथ जो अनुगूँज लेकर आई, वह स्त्री विमर्श की थी। जाना पहचाना शब्द है, लगभग बीस वर्षों से निरंतर सुनते आ रहे हैं हम सब। आम आदमी समझ नहीं पाता कि यह विमर्श क्या है? स्त्रियों के लिए इसकी क्या जरूरत है?

विमर्श = वि. मृशु. धञ। अतएव विमर्श का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है—सोचना, समझना, आलोचना करना। वृहत हिंदी कोश के अनुसार विमर्श का अर्थ है—विचार, विवेचन, परीक्षा, तर्क, ज्ञान, शिव, चरम बिंदु। आधुनिक हिंदी शब्दकोश के अनुसार, विमर्श का अर्थ सोच-विचार कर किसी तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना है। स्त्री विमर्श अर्थात् स्त्रियों की स्थितियों पर चिंतन-मनन। आधुनिक काल के आरंभ से लेकर अब तक या यों कहें कि भारतेंदु से लेकर अब तक स्त्री की हासोन्मुख स्थिति पर जाने कितनी बातें हुईं और हो रही हैं और उनके उत्थान के विचार को केंद्र में रखकर अनगिनत रचनाएं भी हुईं। इनमें प्रेमचंद का नाम वैसे ही उभरकर आता है जैसे गहन कालिमा के बीच प्रकाश-स्फुटन।

प्रेमचंद का लेखन काल 1900 से आरंभ होकर 1936 तक अबाध गति से चलता रहा। यह समय भारतीय समाज में दलित एवं स्त्री वर्ग के लिए दोहरी गुलामी का समय था। इस समय स्त्रियां एक साथ उपनिवेशवाद और सामंतवाद की चक्की में पिस रही थीं। विश्व

इतिहास रहा है कि जो भी समाज गुलाम रहा, उसकी स्त्रियों ने अधिक दंश झेला। वाल्टर बेंजामिन के शब्दों में, संस्कृति के दस्तावेत प्रायः बर्बरता के दस्तावेज होते हैं।

स्त्री समस्या पर प्रेमचंद की दृष्टि कितनी पैनी थी और उन्होंने उपनिषद्काल से लेकर अपने समय तक की समस्याओं के प्रतिरोध के लिए नारी को किस तरह वाणी दी, यह जानने से पहले वैदिक काल से अब तक के समाज पर एक दृष्टि डालना अपेक्षित है।

वैदिककालीन मंत्र—

“यथासिंधूर्णदीनाम् साम्राज्यम् सुषुवे वृषा।
एवं त्वं साम्राज्ञेधि प्रत्युरस्त परेत्य च।।”

इस मंत्र से तत्कालीन समाज में स्त्री की गरिमापूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती है। 600 ई. पूर्व रचित उपनिषद् में नारी शब्द का प्रयोग तक नहीं, किंतु जिस आधार पर सृष्टि को प्रमाणित किया गया उसमें नारी तत्व सर्वत्र व्याप्त है तथा नर के समान महत्त्वपूर्ण भी है। यह नारी तत्व सर्वशक्तिमान परामात्मा के रूप में ही गृहीत हुआ है... नर सर्वशक्तिमान कहलाता है और नारी उसकी शक्ति। मैत्रेयी याज्ञवल्क्य संवाद में कहती है—क्या सारी वसुंधरा मेरी हो जाने पर भी मुझे अमरत्व प्राप्त हो सकेगा? स्मृतिकाल में स्त्रियों के उपनयन संस्कार से उसे शिक्षा क्षेत्र से बेदखल करने की कूटनीति शुरू हुई। शिक्षा के अभाव के कारण स्त्रियों की बुद्धि पुरुषों की अपेक्षा बहुत हीन हो गई है जिनमें धर्माधर्म के ज्ञान का अभाव रहता है। अतः उन्हें स्वतंत्रता नहीं मिलनी चाहिए। स्त्रियों के लिए पति ही यज्ञ है, पति

ही उपवास, पति की सेवा से ही वे स्वर्गलोक में पूजित हो सकती हैं। पत्नी शब्द जो कि स्त्री के पति के साथ निकट यज्ञ संबंध का द्योतक था, के स्थान पर ‘भार्या’ एवं ‘जाया’ शब्द प्रयुक्त होने लगा। ‘भार्या’ और ‘पोष्या’ दोनों शब्द ही स्त्री के पति पर निर्भरता के सूचक हैं। और ‘जाया’ शब्द का प्रचुर प्रयोग पत्नी के प्रजनन-कार्य के महत्त्व को बल देने एवं पुष्ट करने का प्रबल प्रयास है।

ऐतिहासिक मध्यकाल के अंतर्गत साहित्यिक संदर्भ में वर्गीकृत आदिकाल, भक्तिकाल व रीतिकाल तत्कालीन परिवेश को समुचित रूप में समाहित कर लेता है। हिंदी साहित्य का आदिकाल साक्ष्य है कि उस समय स्त्री वस्तु के रूप में मान्य थी, पति धर्म-पालन सर्वोच्च शिखर पर था। सती प्रथा जोर पर थी। मुगलकाल व अन्य आक्रमणकारियों के हमले ने सतीत्व की रक्षा-भावना तथा पर्दा प्रथा को बढ़ाया। रूढ़ियां मजबूत हुईं। मुख्य पूजा के अधिकार से दलित और स्त्री वंचित कर दिए गए। निर्णय का अधिकार तो पहले ही छीन लिया गया था, उन्हें तो सिर्फ पालन करना था... पुरुष द्वारा निर्धारित नियमों का पालन। यह स्थिति न सिर्फ भारत में बल्कि पूरे विश्व की स्त्रियों की थी।

मध्यकाल में ही रूढ़ियों को धत्ता बताने वाली मीराबाई ने न केवल पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर चोट की, बल्कि अपनी निजता के अनुरूप जीवनयापन कर स्त्री-चेतना की जागृति का शंखनाद भी कर दिया। वर्तमान स्त्री-विमर्श मीरा की कृतियों तथा उनके जीवन में देखने को मिलता है। मीरा का स्त्रीवाद विमर्श

आधुनिक विमर्श से कहीं आगे चला जाता है। प्रेमचंद ने मीरा की सात्विक जागृति की झलक अपने स्त्री पात्रों में दिखाई है। प्रेमचंद मानते थे कि स्त्रियों के बिना भारतीय समाज का कोई विकास संभव नहीं है। जिस प्रकार हमें अपनी आजादी और सुख की चिंता है, उसी प्रकार हमें स्त्रियों की भी चिंता करनी होगी। उन्हें इस स्थिति में पहुंचाना होगा कि वे स्वयं अपनी चिंता कर सकें।

रीतिकाल में नारी सौंदर्य, आकर्षण से परिपूर्ण भोगी जाने वाली वस्तु मात्र नजर आती है। किंतु नवजागरण की अस्फुट स्वर-लहरी हवा में तैरने लगी थी। 19वीं सदी में जिसका प्रस्फुटन और 20वीं सदी में जिसका विस्फुटन हुआ। आज जागृति की उसी लहर को हम स्त्री विमर्श का नाम दे रहे हैं। प्रेमचंद का काल राष्ट्रीय जागरण का काल था। सामाजिक जागृति का शंखनाद हो चुका था। विवेकानंद, राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, महादेव गोविंद रानाडे, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फूले, महर्षि घोंडो केशव कर्वे, आदि महात्मन समाज सुधारकों ने स्त्री-चेतना को झकझोरा, उन्हें शिक्षित करने हेतु तमाम बाधाएं झेलीं, किंतु जुटे रहे। महिला विद्यालय, विश्वविद्यालय, विडो रिमैरिज एसोसिएशन आदि की स्थापना के साथ ही बाल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा तथा कन्या वध उन्मूलन के सार्थक प्रयास हुए। महिलाओं में जागृति आई, कालांतर में महिलाओं ने सामाजिक व राष्ट्रीय आंदोलनों में महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभाई, जिसका विस्तृत रूप हमें प्रेमचंद की कृतियों में देखने को मिलता है।

प्रेमचंद एक ओर महात्मा गांधी के अनुयायी थे तो दूसरी ओर अबेडकर के कुछ उसूलों को भी स्वीकारते थे। स्त्रियों की बेहतर स्थिति के लिए उन्हें जो विचार... जो मार्ग उचित लगे, उन्होंने अपनाया। ध्येय केवल महिलाओं के उत्थान का था। मध्ययुग में स्त्रियों की जो दुर्दशा हो चुकी थी, उसकी पुनरावृत्ति पर गुलाम भारत के इन महामानवों के प्रयासों ने रोक लगा दी। प्रेमचंद इसी परिवेश में तपे,

सधे और उनकी लेखनी कुंदन हो गई। न केवल लेखनी, व्यावहारिक जीवन भी समर्पित कर दिया। हर एक कुरीतियों के विरोध व प्रतिरोध में वे उठ खड़े हुए। स्त्रियां अब अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने लगीं। शिक्षा ने ज्योति दी और नए कानून ने संबल। दहेज के एक प्रसंग में उन्होंने लिखा—“हमें तो इसका एक ही इलाज नजर आता है और वह यह कि लड़कियों को अच्छी शिक्षा दी जाए और उन्हें संसार में अपना रास्ता आप बनाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए, उसी तरह जैसे हम अपने लड़कों को छोड़ देते हैं। उनको विवाहित देखने का मोह हमें छोड़ देना चाहिए और जैसे युवकों के विषय में उनके पथभ्रष्ट हो जाने की परवाह नहीं करते, उसी प्रकार हमें लड़कियों पर भी विश्वास करना चाहिए।”

प्रेमचंद ऐसी जागृति के लेखक हैं जो मानते हैं कि पुरुष स्त्री के बिना नहीं चल सकता और स्त्री का भी बराबर का अधिकार है। फरवरी 1931 को लिखे अपने एक लेख ‘नारी जाति के अधिकार’ में उन्होंने लिखा—“पुरुषों ने नारी जाति के स्वत्वों का अपहरण करना शुरू किया, लेकिन राष्ट्रीयता और सुबुद्धि की जो लहर इस समय आई हुई है, वह इन तमाम भेदों को मिटा देगी और एक बार फिर हमारी माताएं उसी ऊंचे पद पर आरूढ़ होंगी, जो उनका हक है। महात्मा गांधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा, जब तक पुरुषों और स्त्रियों के पास बराबर अधिकार नहीं है और स्त्रियों को जन्म से असमान माना जाता है, यह देश के आधे हिस्से को अपंग बनाने के समान है। स्त्रियों का शोषण और कुछ नहीं, अहिंसा के सिद्धांत को छिन्न-भिन्न करता है। मैं स्त्रियों के प्रश्न पर समझौता नहीं करूंगा।”

प्रेमचंद का युग ‘तलाक बिल’ का प्रत्यक्षदर्शी है। अपने लेख ‘नारी जाति के अधिकार’ में उन्होंने लिखा था, “तलाक के समय स्त्री पुरुष की आधी जायदाद पाए और मौरुसी जायदाद हो तो उसका एक अंश।” प्रेमचंद ने तलाक के विषय में विवेचन करते हुए स्त्री-पुरुष के संबंध को एक नई परिभाषा दी है—

“ज्यों-ज्यों उनमें (स्त्रियों में) शिक्षा का प्रसार हो रहा है, उनमें अपनी वर्तमान अधोगति से विद्रोह उत्पन्न हो रहा है और तलाक की मांग उसी विद्रोह का सूचक है। पुरुषों को अब उनसे समझौता करना होगा। उनकी शिकायतों की अवहेलना करके अब वे अपने पुरुषत्व को कलंक से नहीं बचा सकते।” इस संदर्भ में नैना और सुखदा (कर्मभूमि) का संवाद उल्लेखनीय है—

नैना : तुम कहती हो, पुरुष के आचार-विचार की परीक्षा कर लेनी चाहिए। क्या परीक्षा कर लेने पर धोखा नहीं होता? आए दिन तलाक क्यों होते रहते हैं?

सुखदा : तो इसमें बुराई क्या है? यह तो नहीं होता कि पुरुष गुलछरें उड़ाए और स्त्री उसके नाम को रोती रहे।

सुखदा की उक्ति को मीनाक्षी को (गोदान) में आधार मिलता है। यद्यपि स्वयं को आगे चलकर दुख के बाद भी उस बंधन में डाले रखना सुखकर बताती है, उसका पति अमरकांत उसकी जिंदगी में लौट भी आता है, किंतु सुखदा की भावाभिव्यक्ति बीसवीं सदी के तीसरे दशक की सुशिक्षित स्त्री की विक्षोभपूर्ण अभिव्यक्ति है। मीनाक्षी जब पति के व्यवहार से तंग आकर अलग रहने और तलाक लेने का फैसला करती है तो अपने गुजारे के लिए वह अदालत में आवेदन करती है, इस पर उसका पति उसके चरित्र पर लांछन लगाता है, पति से आहत मीनाक्षी केस जीतने के बाद पति के घर में घुसकर उसे, नाचती वेश्या व उसके गुर्गों की डंडे से पिटाई करती है।

प्रेमचंद विषम परिस्थितियों में तलाक का पक्ष लेते हैं किंतु अपने विस्तृत कथा साहित्य में वे यही चाहते हैं कि स्त्री-पुरुष इस प्रकार एक-दूसरे के विश्वास को बचाते हुए जीवनयापन करें कि ‘तलाक’ की स्थिति ना आए। इससे संतति सबसे अधिक प्रभावित होती है। मन्नू भंडारी रचित उपन्यास ‘आपका बंटी’ के तीन दशक पूर्व प्रेमचंद इस समस्या को सोच चुके

थे। प्रेमचंद मानते थे कि मां का स्थान सर्वोच्च होता है—

नारी मात्र माता है और उसके उपरांत वह जो कुछ है वह सब मातृत्व के उपक्रम मात्र। मातृत्व विश्व की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है। किंतु प्रेमचंद उसी माता का जीवन सफल मानते हैं जिसका पुत्र सुपुत्र हो... सपूतों के जन्म से माता का जीवन सफल होता है। प्रेमचंद यह भी स्वीकारते थे कि मातृ ऋण से उन्मत्त नहीं हुआ जा सकता है... मां के बलिदानों का प्रतिशोध कोई बेटा नहीं कर सकता, चाहे वह भूमंडल का स्वामी ही क्यों न हो? माता तू धन्य है! तुझे जैसी श्रद्धा, तुझ जैसा विश्वास देवताओं को भी दुर्लभ है।

प्रेमचंद ने स्त्री-पुरुष के सामाजिक वैषम्य को न केवल उभारा, बल्कि प्रतिकार भी किया है। शालीनता, विनम्रता, अनुगमन, सेवाभाव और सबसे अधिक यौन शुचिता का आग्रह केवल स्त्रियों के प्रति होता है, पुरुषों के प्रति नहीं, पत्नी की बुद्धिमत्ता हमेशा अवहेलना पाती है। प्रेमचंद का शोभ इस प्रकार प्रकट होता है—हम छोटे-छोटे कामों के लिए तजुर्बेकार आदमी खोजते हैं, जिसके साथ हमें जीवनयात्रा करनी है, उसमें तजुर्बेकार होना ऐब समझते हैं। प्रेमचंद का काल नवजागरण का काल था, नारी आंदोलनों के परिणामस्वरूप शताब्दियों से कुरीतिग्रस्त, कुंठाग्रस्त नारी मुक्ति की सांस लेने लगी। स्त्री शिक्षा तथा स्त्री-पुरुष के अधिकारों में समानता को समाज ने स्वीकारना शुरू किया। बाल विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, वेश्या-समस्या, पर्दा प्रथा, विधवा विवाह आदि विषयों पर गंभीरता से विचार और उन्मूलन के प्रयास आरंभ हुए, जिनका समावेश प्रेमचंद की रचनाओं में हुआ। वे इस बात से दुखी रहते कि स्त्रियों से ही सारी अपेक्षाएं क्यों की जाती हैं, पुरुष पूर्णतः स्वतंत्र है... क्यों? पुरुष हो जाने से सभी बातें क्षम्य और स्त्री हो जाने से अक्षम्य हो जाती हैं। युवतियां कितने अरमानों

से ब्याह कर लाई जाती हैं, और फिर कितने निरादर से महल में बंद कर दी जाती है। उनका भाग्य पुरुषों की दया के अधीन है। प्रेमचंद विवाह के आदर्श, स्थिर और पवित्र रूप को ही स्वीकृति देते हैं—विवाह का सबसे ऊंचा आदर्श उसकी पवित्रता और स्थिरता है। पुरुषों ने सदैव उस आदर्श को तोड़ा है, स्त्रियों ने निबाहा है। अनमेल विवाह पर आधारित उपन्यास 'निर्मला' में प्रेमचंद ने इसकी खामियां बताई हैं—“जब युवक वृद्ध के साथ प्रसन्न नहीं रह सकता, तो युवती क्यों वृद्ध के साथ प्रसन्न रहने लगी? कली प्रभात समीर के स्पर्श से खिलती है।”

प्रेमचंद मानते हैं कि जिन स्त्रियों में कोई व्यक्तित्व नहीं है, कोई उत्साह नहीं है, आदर्श नहीं है, उन्हें विवाह कर लेना चाहिए लेकिन जिनमें अपने विचार हैं, अपना व्यक्तित्व है, अपनी इच्छा है, जिन्हें कीर्ति और ख्याति की लालसा है, उन्हें अविवाहित रहना चाहिए। विधवा की सामाजिक उपेक्षा और उसकी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए प्रेमचंद विधवा विवाह के न केवल हिमायती बने, बल्कि अपने जीवन में चरितार्थ भी किया। समाज की ओर से विधवाओं को मिलने वाली प्रताड़ना की झलक प्रेमचंद की रचनाओं में आसानी से उपलब्ध है... विधवा पर दोषारोपण करना कितना आसान है। औरत अबला होती है। एक रक्षक के बिना उसका जीवन सुख और शांति से नहीं कट सकता। प्रेमचंद ने निश्चल दैवीय अथवा शाश्वत तथा आत्मिक प्रेम को सदैव स्वीकारा। उनकी दृष्टि में प्रेम आदि भी सहृदयता है, अंत भी सहृदयता है। प्रेम मानव जीवन का श्रेष्ठ अंग है। यदि ईश्वर की ईश्वरता देखने में आती है तो वह केवल प्रेम है। यह भी कि प्रेमविहीन हृदय के लिए संसार काल कोठरी है, नैराश्य और अंधकार से भरी हुई।

प्रेमचंद ने प्रेम का आग्रह अवश्य किया है किंतु यौन शुचिता को दांव पर लगाकर नहीं, दैहिक उच्छृंखलता उन्हें सदैव अमान्य रहा। उन्होंने स्त्री अधिकारों की सदैव पैरवी

की, किंतु भारतीय संस्कार भुलाकर...कुराह चलकर नहीं, जो वर्तमान समय में स्त्री मुक्ति के केंद्र में है। साठोत्तरी सुधारकों ने स्त्री देह की मुक्ति को चाशनी में लपेट कर स्त्री विमर्श का जामा पहना दिया है। उन्होंने शारीरिक स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के बीच की लकीर मिटाने की कोशिश की वह कम से कम भारतीय संस्कृति के लिए अग्रह है। डॉ. अंबेडकर भी स्त्री अस्मिता की रक्षा व उत्थान के लिए आजीवन संघर्षरत रहे किंतु स्त्री के दैहिक प्रदर्शन को उन्होंने भी अनुचित माना। डॉ. अंबेडकर ने महाड में चर्मकार समुदाय की स्त्रियों को संबोधित करते हुए कहा था, आप अपने आपको कभी अछूत मत समझो। साफ सुथरा जीवन व्यतीत करो स्पृश्य स्त्रियों की भांति वस्त्र पहनो। इसकी कभी चिंता न करो कि तुम्हारे वस्त्र फटे हुए हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी आधुनिक महिलाओं की उन्नति पर अधिक बल दिया। तत्कालीन समाज के पुरोधा जानते थे कि स्त्री शिक्षा के बिना सारे प्रयास व्यर्थ हैं और उनमें आत्मविश्वास जगाना नितांत आवश्यक है। गुप्तजी ने कहा भी—

“विद्या हमारी भी न तब तक
काम में कुछ आएगी
अर्धांगिनियों को भी सुशिक्षा
दी न जब तक जाएगी।।”

प्रेमचंद ने स्त्री अस्मिता की, दैहिक सुरक्षा की सदैव चिंता की, वे पुरुषों की दोहरी नीति से दुखी और उस जाल में फंसने वाली स्त्रियों के लिए सदैव चिंतित रहे। वेश्यावृत्ति के लिए उन्होंने पुरुष को ही दोषी ठहराया। अपने सतीत्व से ज्यादा उसे संसार की किसी वस्तु पर गर्व नहीं होता और न ही वो किसी चीज को इतना मूल्यवान समझती है। उन्होंने नारी चरित्रों को कर्म, शक्ति और साहस के क्षेत्र में नर के समकक्ष प्रस्तुत किया और नारी अस्मिता एवं कोमलता को अक्षुण्ण रखने की कोशिश की। वे मानते थे कि नारी हृदय धरती की भांति है जिससे मिठास भी मिल सकती है और कडुवाहट भी। प्रेमचंद का साहित्य उन

तमाम तथाकथित आधुनिक स्त्री-चिंतकों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करता है जो नारी को सशक्त बनाने के लिए चारित्रिक पतन की यह कहकर हिमायत करते हैं कि चरित्र की बातें पुरातनपंथियों का ढोंग हैं। राजेंद्र यादव ने 'हासिल' शीर्षक से एक आत्मकथात्मक कहानी लिखी, जिसका नायक कहता है— नारी क्या है? सिर्फ एक बहता हुआ सोता। उसे तो बहना ही है, अगर आप कुछ मिनट उसके किनारे अपनी थकान मिटा लेते हैं, दो घूंट पानी पीकर अगली लंबी यात्राओं पर निकल पड़ने के लिए तरोताजा हो जाते हैं तो इसमें बुराई क्या है? ना ही इसमें कुछ गलत है ना अनैतिक... भाड़ में गई नैतिक मर्यादाएं और शील चरित्र। यह हमारा सारा लेखन इन्हीं बंधनों के खिलाफ ही तो विद्रोह है।

नारी विमर्श में नारी के अधिकारों, उसकी मुक्ति एवं स्वतंत्रता के प्रश्न में उसकी यौन शुचिता का सवाल भी महत्वपूर्ण है। समाज में बढ़ते बलात्कार की घटनाओं को पुरुष की बीमार मानसिकता मानते हुए प्रेमचंद ने कर्मभूमि की स्त्री पात्र मुन्नी के व्यक्तित्व को जितने सशक्त रूप से उभारा, वह विमर्श का सार्थक मुद्दा है। डॉ. अनामिका भी इज्जत शब्द को देह के एक भाग तक सीमित नहीं मानतीं। प्रेमचंद ने स्त्री के बांझपन के कारण उसकी उपेक्षा के खिलाफ भी आवाज उठाई थी, जो आज भी स्त्री से जुड़ी बड़ी सामाजिक समस्या है। वे मानते थे कि स्त्री संतानहीन होकर भी पुरुष के लिए शांति, आनंद का एक अविरल स्रोत है।

आज लेखिका मृणाल पांडे उन्हीं मुद्दों को विमर्श का हिस्सा बना रही हैं। एक ओर महादेवी वर्मा, आशारानी वहोरा, डॉ. अनामिका, मृणाल पांडे और मन्नू भंडारी व कई अन्य सशक्त आवाजें हैं जिनके विमर्श की विशद रूपरेखा हमें प्रेमचंद के लेखन व उनके आचरणों में मिलती है, जो स्त्रियों की मौलिक और आधारभूत समस्याएं हैं और जिनसे उबरने की छटपटाहट हम में से हर एक अंदर है। कमलेश्वर ने भी स्त्री मुक्ति का तात्पर्य पुरुष हो जाना या पुरुषोचित गुणों को स्वीकारना नहीं माना वरन् स्त्री के खोल से बाहर आकर मनुष्यत्व की दिशा में अग्रसर होना माना है। स्वामी विवेकानंद ने कहा था, “आदर्श स्त्रीत्व का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है। सतीत्व आधुनिक हिंदू नारी के जीवन की केंद्रीय भावना है। पत्नी एक वृत्त का केंद्र है जिसका स्थायित्व उसके सतीत्व पर निर्भर है। वह विवाहित हो या कुंवारी, जीवन की हर अवस्था में अपने सतीत्व से तिल भर भी डिगने की अपेक्षा जीवन की निडर होकर आहुति दे दे। यही अपेक्षा उन्होंने पुरुषों से भी रखी थी।

वर्तमान में स्त्री विमर्श के संदर्भ में प्रेमचंद के विचार, उनके जीवन दर्शन तथा आचरण पर चर्चा करना, उनके दृष्टिकोण को समझना इसलिए प्रासंगिक है, क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में पाश्चात्य लहर में बहते कुछ पुरोधाओं ने नारी मुक्ति के नाम पर नारी की यौन शुचिता को मजाक बनाकर रख दिया है, उनकी दृष्टि से देखें तो स्त्रियोचित समग्र नैसर्गिक गुण

बंधन हैं इसलिए मुक्ति के नाम पर घर की ईंट से ईंट बजा रहे हैं, लिव इन रिलेशन को बढ़ावा दे रहे हैं। इस बवंडर को रोकने और सही दिशा में बढ़ाने हेतु आवश्यक है कि प्रेमचंद और उन जैसे मनस्वियों की दूरदृष्टि पर एक बार फिर मनन करें और स्त्री विमर्श को सही दिशा दें।

संदर्भ—

1. भारतीय संस्कृति में नारी, डॉ. लता सिंहल
2. वृहदारण्यकोपनिषद, 2
3. नारद स्मृति असहाय, 10.30
4. मनुस्मृति, 5.155
5. वृहत्पराशर स्मृति, 6.181
6. कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श
7. साखी, कबीर
8. रामचरितमानस
9. विविध प्रसंग, भाग 3, सं. अमृतराय, लेख एक दुखी बाप, पृ. 260
10. विविध प्रसंग, भाग-3
11. वही
12. कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श, डॉ. करुणा शर्मा
13. प्रेमचंद साहित्य में सूक्ति सौष्ठव, डॉ. आर.के. पांडेय
14. डॉ. अंबेडकर का स्त्री विमर्श, डॉ. शरद सिंह एवं गुलाब चंद
15. प्रेमचंद साहित्य : गोदान, कर्मभूमि, मानसरोवर, 1, 2, 4, 5, 8, प्रतिज्ञा, प्रेम की वेदी।

622 (प्रथम तल), परमानंद कॉलोनी (पश्चिम), दिल्ली-110009

प्रेमचंद की कहानी-कला

डॉ. श्रीनिवास त्यागी

पिछले आठ वर्षों से अध्यापनरत डॉ. श्रीनिवास त्यागी की भारतेंदु पर एक पुस्तक प्रकाशित होने के साथ-साथ कई पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित हो चुके हैं। कविता और आलोचनात्मक लेखन में रुचि।

कहानी मनुष्य के विकास के साथ-साथ विकसित हुई विधा है। “कविता के क्षेत्र में गीत और गद्य में कहानी मानवीय सभ्यता के आद्य अभिव्यक्ति माध्यम कहे जा सकते हैं। ये भाषा के आरंभिक आविष्कार हैं। भाषा ने गद्य का रूप पहले कहानी में धारण किया होगा। उस युग में जीवन का अधिकतर ज्ञान-विज्ञान दादी-नानी, पंचतंत्र-हितोपदेश की कहानियों के माध्यम से संचरित होता था।”¹ मनुष्य के विकास क्रम के इतिहास को देखने से स्पष्ट होता है कि “कहानी या आख्यायिका साहित्य का एक प्रधान अंग है। आज से नहीं, आदिकाल से ही। हां, आजकल की आख्यायिका में समय की गति और रुचि से बहुत अंतर हो गया है। प्राचीन आख्यायिका कुतूहल-प्रधान होती थी, या अध्यात्म विषयक। वर्तमान आख्यायिका साहित्य के दूसरे अंगों की भांति मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और मनोरहस्य के उद्घाटन को अपना ध्येय समझती है।”² इतना ही नहीं “सभ्यता के विकास के हर चरण में कहानी नया अवतार लेती है—पशु कथा, नीति कथा, आख्यायिका और कहानी से लेकर जासूसी कहानी तथा विज्ञान कथा तक।”³ आधुनिक हिंदी कहानी के उद्भव एवं विकास में हमें देश के प्राचीन कथा साहित्य एवं भारतीय लोकजीवन में प्रचलित कथा साहित्य के साथ-साथ पाश्चात्य कथा साहित्य की भी स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है।

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य के इतिहास में प्रेमचंद का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन

प्रेमचंद के कथा साहित्य को लेकर आलोचकों के विचारों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान उन्हें उपन्यास सम्राट सिद्ध करते हैं और कुछ विद्वान उन्हें कहानी सम्राट मानते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा जैसे विद्वान भी उनको इतिहास में जगह देने की बात करते हुए अपनी आशंका व्यक्त करते हैं कि—“यदि कहानीकार प्रेमचंद और उपन्यासकार प्रेमचंद में एक को ही हिंदी साहित्य के इतिहास में जगह देने की बात हो तो शायद उपन्यासकार प्रेमचंद को ही उस जगह के लिए चुना जाएगा।”⁴ पर सच्चाई यह है कि प्रेमचंद हमारे हिंदी कथा साहित्य के ही सम्राट हैं क्योंकि अगर उन्होंने हिंदी उपन्यास को स्वाभाविक स्वरूप प्रदान किया तो हिंदी की कहानी कला को भी प्रौढ़ता दी है। मधुरेश हिंदी कहानी के उद्भव और विकास की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि—“गद्य विधाओं के विकास की दृष्टि से कहानी भारतेंदुयुग की उपज उस रूप में नहीं है जैसे उपन्यास और निबंध हैं। लेकिन तत्कालीन निबंधों और अन्य गद्य रूपों में जिन विभिन्न शैलियों का आविर्भाव हो रहा था उनमें कहानी के तत्व अवश्य सक्रिय थे, जो आगे चलकर एक जीवंत विधा के रूप में कहानी की उपस्थिति को संभव बनाते हैं।”⁵

सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ सन् 1900 ई. के आसपास जिस आधुनिक हिंदी कहानी विधा का आविर्भाव हुआ उसे साहित्यिक और कलात्मक प्रौढ़ता प्रदान करने में प्रेमचंद ने भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि प्रेमचंद हिंदी के पहले कहानीकार नहीं हैं। उनसे पहले माधव राव सप्रे की एक टोकरी भर मिट्टी (1901), भगवान दास की प्लेग की चुड़ैल (1902), आचार्य रामचंद्र शुक्ल की ग्यारह वर्ष का समय (1903), और बंगमहिला राजेंद्रबाला

घोष की दुलाई वाली (1907) इत्यादि कहानियां प्रेमचंद के हिंदी कहानी लेखन से पूर्व प्रकाशित हो चुकी थीं।

प्रेमचंद की कहानियां—प्रेमचंद ने सन् 1907 ई. से लेकर सन् 1936 ई. तक लगभग 300 कहानियां लिखी हैं, जो मानसरोवर के 8 खंडों में संकलित हैं। प्रेमचंद के जीवन में कुल नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए—सप्तसरोज, नवनिधि, प्रेम-पूर्णमा, प्रेम-पचीसी, प्रेम-प्रतिमा, प्रेम-द्वादशी, समरयात्रा, मानसरोवर भाग-1, भाग-2, और कफन। कफन उर्दू में लिखा उनका कहानी संग्रह है। सोजेवतन सन् 1907 ई. में प्रकाशित हुआ, जिसे ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया। “प्रेमचंद ने सोजेवतन से कहानी की जातीय और राष्ट्रीय सवालियों से जोड़ने की जिस परंपरा का सूत्रपात किया था, उसका ही सुविकसित रूप हमें उनकी आहुति, जुलूस, समरयात्रा और सत्याग्रह आदि कहानियों में दिखाई देता है।”⁶ प्रेमचंद द्वारा लिखित 300 कहानियों में से “लगभग पचास कहानियां ऐसी होंगी जो हिंदी में अपना अमर स्थान बना चुकी हैं।”⁷ हालांकि उनकी अधिकांश कहानियां पठनीयता की दृष्टि से रोचक हैं। पर उनकी “आरंभिक कहानियों में कला की दृष्टि से वह सफाई, खराद और कांट-छांट नहीं है जो परवर्ती कहानियों में है। आरंभिक कहानियां अधिकतर लंबी और वर्णनात्मक हैं, जबकि पीछे की कहानियां अधिक गठी हुई, संक्षिप्त तथा नाटकीय प्रभाव से संपन्न हैं।”⁸

उनकी आरंभिक कहानियों में घटना बहुलता की प्रधानता सहज दिखती है, इससे ही कहानी में आकर्षण एवं कुतूहल बना रहता है। आरंभिक कहानियों में पात्र नहीं उभर पाए हैं। इनमें कथानक की प्रधानता है। आगे चलकर उनकी कहानियों में कथानक गौण हो

गया है और पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उभार को प्रधानता मिली है। धीरे-धीरे उनकी कहानियां अपेक्षाकृत छोटी होती गई हैं। प्रेमचंद की कहानियों में यह अंतर केवल कलात्मक स्तर पर ही नहीं दिखता है, अपितु भावात्मक स्तर पर भी दिखाई पड़ता है। भाव के क्षेत्र में प्रेमचंद की आरंभिक कहानियां भावना प्रधान और आदर्शवादी हैं। वह प्रत्येक स्थिति में किसी ऊंचे आदर्श पर जाकर समाप्त होती हैं।

उनका प्रभाव भावुकतापूर्ण और उपदेशात्मक सा होता है। किंतु आगे चलकर प्रेमचंद की कहानियों में चित्रित परिस्थितियों और व्यक्त भावों के बीच अधिक गहरा सामंजस्य स्थापित हो गया है। अब उनके चित्रण अधिक मनोवैज्ञानिक तथ्यपूर्ण और अकृत्रिम होने लगे हैं।⁹ विषयवस्तु की दृष्टि से भी प्रेमचंद की कहानियों में बहुत विविधता है। “उनकी काफी कहानियां ऐसी हैं जिनमें ग्रामीण कथाओं का रस और उनकी शैली अपनाई गई है। आमतौर पर उनकी कहानियों में जो एक ठेठपन है, पाठक के हृदय में अपनी बात को उतार देने की जो ताकत है, वह उन्होंने हिंदुस्तान के अक्षय ग्रामीण कथा-भंडार से सीखी है।”¹⁰ गुल्ली-डंडा, सवा सेर गेहूं, रामलीला और दो बैलों की कथा ग्रामीण जीवन पर आधारित प्रेमचंद की महत्त्वपूर्ण कहानियां हैं। हो सकता है कि उन्होंने ग्रामीण जीवन पर आधारित लोक कथाओं से कहानी का कहना सीखा हो, पर उनकी कहानियां लोक कथाओं की नकल मात्र नहीं हैं। “उनकी शैली आमतौर से व्यंग्य प्रधान होती है, उसमें एक तरह का कसाव होता है, एक काव्य तत्व जो ग्राम कथाओं में कभी-कभी मिलता है।”¹¹ इसके साथ-साथ उनकी कहानियों को “पढ़ते समय घटना-कुतूहल कम रहता है, चरित्र चित्रण की बारीकियों में पाठक का मन ज्यादा रमता है। उनकी कहानियों में घटनाओं का वैसा महत्त्व नहीं है, जैसा चरित्र का। वह पाठक को सनसनीखेज घटनाओं से चौंका देना पसंद नहीं करते।”¹²

उनकी कहानियों की कुछ सामान्य विशेषताएं डॉ. रामचंद्र तिवारी¹³ ने ये बताई हैं—“उनकी

कहानियों का चित्रपट विशाल है। उनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण सर्वाधिक सजीव हुआ है। गांधीवादी जीवन दर्शन से लेखक सर्वाधिक प्रभावित है और समरयात्रा संग्रह की कहानियां तो प्रायः गांधीवादी आंदोलनों का जीता-जागता इतिहास बन गई हैं। प्रेमचंद की कहानियों में सांप्रदायिक मनोवृत्ति का स्पर्श भी नहीं है। उन्होंने मुसलमान पात्रों का भी उतनी ही सहृदयता से चित्रण किया है, जितनी सहानुभूति से हिंदू पात्रों का। चाहे वह मुक्ति धन कहानी का रहमान हो या ईदगाह का हामिद या उसकी बूढ़ी दादी अमीना हो। उनकी कहानियों का सबसे प्रबल आकर्षण अनुभूति की तीव्रता है। उनकी प्रत्येक कहानी जीवन का एक अनुभूति खंड है, जिसे उन्होंने हृदय की संपूर्ण निश्चलता के साथ प्रस्तुत कर दिया है।

उनका दृष्टिकोण मानवतावादी है, वे पाप से घृणा करते हैं, पापी से नहीं। वे मनुष्य के देवत्व में भरोसा करते हुए पंच-परमेश्वर और बड़े घर की बेटी जैसी कहानियां लिखते हैं। उनकी कहानियों का शिल्प विधान भले ही पाश्चात्य आधार पर हुआ हो, पर इनकी भारतीय आदर्शों से निर्मित हुई है।” इस विवेचन के आधार पर स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि प्रेमचंद की कहानियों में विषयवस्तु की बहुत ही ज्यादा विविधता पाई जाती है। हिंदी के अन्य किसी भी कहानीकार ने मानव जीवन के इतने विस्तृत और व्यापक फलक को अपनी कहानियों में नहीं समेटा और उकेरा है, जितना कि प्रेमचंद ने। “प्रेमचंद की कहानियां केवल मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं लिखी गईं। उन सभी में कोई-न-कोई सुझाव, जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण, किसी समस्या का हल जरूर मिलता है। यह उनकी खूबी है कि वह ऐसा चित्र खींचते हैं कि कहानी में उपदेशकों का रूखापन नहीं आ पाता। उनके चित्र बड़े ही सजीव होते हैं मानो घटना आंखों के सामने हो रही हो और प्रेमचंद उसे नोट करते जाते हों”¹⁴

उनकी कहानियों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—“दोनों ने अपनी मूक भाषा में सलाह की,

एक-दूसरे को कनखियों से देखा और लेट गए। जब गांव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने जोर मारकर पगहे तुड़ा और घर की तरफ चले।” (दो बैलों की कथा)।

“शाम हो गई। खंडहर के चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोंसलों में चिमटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानों दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हो।” (शतरंज के खिलाड़ी)।

प्रेमचंद की कहानियों की “भाषा में उर्दू की रवानी, व्यावहारिक जीवन का प्रवाह, ग्राम्य जीवन की अभिव्यंजना तथा स्वयं उनके व्यक्तित्व की सरलता के दर्शन एक साथ होते हैं। उनकी भाषा में हिंदी की जातीय विशिष्टता देखी जा सकती है। उसमें वर्णन की अद्भुत क्षमता है। वह दृश्यों को इतने सुंदर ढंग से मूर्त कर देती है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म-वस्तु-सौंदर्य साकार हो उठता है।”¹⁵ प्रेमचंद की कहानियों की प्रमुख शैली वर्णनात्मक है। उनकी कहानियों में संवाद-शैली का भी खूब प्रयोग हुआ है। संवाद-शैली का दो बैलों की कथा से एक उदाहरण दृष्टव्य है—“हीरा ने पूछा-तुम दोनों क्यों नहीं भाग जाते?”

एक गधे ने कहा—जो कहीं फिर पकड़ लिए जाएं।

तो क्या हरज है। अभी तो भागने का अवसर है।

हमें तो डर लगता है। हम यहीं पड़े रहेंगे।”

उनकी कुछ कहानियों में आत्मकथात्मक शैली का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। प्रेमचंद की कुछ आरंभिक कहानियों में वर्णन की सजीवता नहीं है। इनमें कुछ भाषा संबंधी दोष भी दिखाई देते हैं। लेकिन जल्दी ही ये सब छोटी-मोटी कमियां, प्रेमचंद की कहानियों से दूर हो जाती हैं। उनकी शैली निरंतर परिष्कृत और प्रौढ़ होती जाती है। “उनमें वर्णन की अद्भुत क्षमता थी। वे मनुष्य की आकृति-प्रकृति, मनोभावों के उतार-चढ़ाव, घटनाओं की पृष्ठभूमि और उनका प्रभावपूर्ण ब्यौरा, प्राकृतिक सौंदर्य की रमणीयता, ग्राम्य जीवन सरलता आदि का वर्णन बड़ी सजीव शैली में

करते हैं।¹⁶ डॉ. रामविलास शर्मा ने उनके कहानी-साहित्य को हमारे जातीय जीवन का दर्पण एकदम सही कहा है। वे प्रेमचंद की कहानियों मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि “उनके अधिकांश पात्र हास्य-प्रेमी, जिंदादिल, कठिन परिस्थितियों का धीरज से मुकाबला करने वाले, अन्याय के सामने सिर न झुकाने वाले होते हैं। प्रेमचंद ने ये सब बातें जनता में देखी थीं, इसलिए कहानियों में चित्रित कर सके थे।”¹⁷

उनकी कुछ बहुचर्चित कहानियां पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के ऐसे कटु यथार्थ को चित्रित करती हैं जो हृदय को विचलित कर मार्मिक प्रश्न उठाती हैं। ‘कफन’ प्रेमचंद की ऐसी ही सर्वाधिक बहुचर्चित कहानियों में से एक है। इसमें एक गांव के चमार पिता-पुत्र घीसू-माधव की बड़ी ही त्रासद गाथा है। माधव की पत्नी बुधिया रात भर अपनी झोपड़ी में पड़ी असहनीय प्रसव-पीड़ा से छटपटाती रहती है। घीसू-माधव खेतों से चुराकर लिए आलूओं को झोपड़ी के बाहर अलाव में भून-भून कर खाते रहते हैं। बुधिया प्रसव-पीड़ा से छटपटती हुई मर जाती है। दोनों चंदा इकट्ठा कर कफन लेने जाते समय शराब के ठेके पर पहुंच कर अमानवीयता की हदें पार कर देते हैं।

‘सद्गति’ कहानी का दुखी चमार पंडित के दरवाजे पर कुल्हाड़ी से लकड़ी फाड़ते-फाड़ते भूखा-प्यासा दम तोड़ देता है। कोई भी चमार उसकी लाश उठाने नहीं आता। “पंडितजी ने रस्सी निकाली। उसका फंदा बनाकर मुरदे के पैर में डाला और फंदे को खींचकर कस दिया। अभी कुछ-कुछ धुंधलका था। पंडितजी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गांव के बाहर घसीट ले गए। वहां से आकर तुरंत स्नान किया, दुर्गापाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का। उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवनपर्यंत की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।”

पंच-परमेश्वर, अलगयोझा, नशा, मैकू, पूस की रात इत्यादि भी उनकी कुछ बहुचर्चित

कहानियां हैं। इन सब कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद ने अपने समय का समग्र इतिहास लिख दिया है।

निष्कर्षतः ‘वैचारिकता की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियां यदि सामाजिक सोद्देश्यता, सांप्रदायिक सद्भाव, जातीय एकता और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के लिए एक उदाहरण का काम देती हैं, तो वहीं कुछ ऐसी कहानियां भी अवश्य मिल जाती हैं, जो उनके सारे प्रगतिशील चिंतन पर प्रश्नचिह्न लगा देती हैं और उनके लेखन की मूलधारा से एकदम अलग-थलग पड़ जाती हैं। उनकी ऐसी कहानियों में मूठ, नाग पूजा, और भूत आदि उनके उपन्यास कायाकल्प की ही भांति, पारलौकिकता में उनके विश्वास का संकेत छोड़ती दिखाई देती हैं।¹⁸ लेकिन ये सब लोकजीवन में चलने वाले अंधविश्वासों का चित्रण मात्र भी हो सकता है।

स्वयंप्रेमचंद इन सब पर कितना विश्वास करते थे, इस बारे में कुछ भी कहना कयास मात्र ही माना जाएगा। “हर बड़े और महत्त्वपूर्ण लेखक की तरह प्रेमचंद ने भी उतार-चढ़ाव के अनेक दौर देखे हैं। विवरण बाहुल्य और गहराई के अभाव का वास्ता देकर उनका विरोध करने वालों का अभाव कभी नहीं रहा। लेकिन देश के दो दशकों—सन् 1916 से सन् 1936 तक—के सामाजिक-राजनीतिक प्रसंगों और घटनाक्रमों, जनसंघर्ष और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा के प्रामाणिक और विश्वसनीय अंकन की दृष्टि से प्रेमचंद से बेहतर कोई दूसरा माध्यम नहीं है। यह अकारण नहीं है कि सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा रखने वाले हर पीढ़ी के लेखक उनसे जुड़कर गहरा सुख और गौरव अनुभव करते रहे हैं।¹⁹ क्योंकि देशी-विदेशी सामाजिक और राजनीतिक ताकतों के खिलाफ अकेले प्रेमचंद ने इन सबसे जितना साहित्यिक संघर्ष किया है, उतना अधिकांश कहानीकारों ने मिलकर भी नहीं किया होगा। सच यह कि वे हिंदी के एक युग प्रवर्तक कहानीकार हैं, उनकी कहानी कला भी धीरे-धीरे प्रौढ़ता और उत्कृष्टता को प्राप्त करती है। “उनकी कहानियों में एक महान रचनाकार की प्रचुरता

और विविधता है। सबसे बड़ी बात यह है कि वह अपनी बात को—किसी कथानक को—दोहराते नहीं। प्रेमचंद हिंदुस्तान के उन थोड़े से कलाकारों में हैं जो हिंदू और मुसलमान दोनों पर समान अधिकार से लिख सकते हैं।²⁰ प्रेमचंद सच्चे अर्थों में भारतीय आवाम की साहित्यिक आवाज हैं।

संदर्भ

1. हिंदी गद्य विन्यास और विकास—रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सं-1996, पृ.118.
2. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियां—ज्ञान भारती पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स इलाहाबाद, सं-2000, पृ.5.
3. हिंदी गद्य विन्यास और विकास—पृ.119.
4. प्रेमचंद और उनका युग—डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, सं-2011, पृ.109.
5. हिंदी कहानी का विकास—मधुरेश, सुमित प्रकाशन इलाहाबाद, सं-2008, पृ.11.
6. हिंदी कहानी का विकास—पृ.31.
7. प्रेमचंद और उनका युग—पृ.110.
8. प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन—नंददुलारे वाजपेयी, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, सं-1979, पृ.91.
9. प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन—पृ.91.
10. प्रेमचंद और उनका युग—पृ.110.
11. प्रेमचंद और उनका युग—पृ.111.
12. प्रेमचंद और उनका युग—पृ.112.
13. हिंदी का गद्य-साहित्य—डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं-2004, पृ.526-527.
14. प्रेमचंद और उनका युग—पृ.112.
15. हिंदी का गद्य-साहित्य—पृ.527.
16. हिंदी का गद्य-साहित्य—पृ.528.
17. प्रेमचंद और उनका युग—पृ.118.
18. हिंदी कहानी का विकास—पृ.31.
19. हिंदी कहानी का विकास—पृ.36.
20. प्रेमचंद और उनका युग—पृ.118.

सहायक प्रोफेसर, गार्गी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रेमचंद और रवींद्रनाथ ठाकुर

डॉ. रामचंद्र राय

रामचंद्र राय : कहानी, कविता, शोध प्रबंध सहित विभिन्न विषयों पर सोलह पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित रामचंद्र राय ने राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की कई संगोष्ठियों में भी हिस्सा लिया है। कई समितियों के सदस्य।

भारतीय साहित्य में मुंशी प्रेमचंद और विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर दो ऐसे स्तंभ हुए हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं से सरस्वती के अक्षय भंडार को भरने का प्रयत्न किया। दोनों की रचना प्रक्रियाएं एवं भाषाएं भिन्न होते हुए भी, जहां एक ने केवल गद्य में ही रचनाएं की, वहीं दूसरे ने गद्य, पद्य दोनों में रचनाओं से सरस्वती के रिक्त भंडार को भरने करने का प्रयास किया। आयु की हिसाब से प्रेमचंद, रवींद्रनाथ से बहुत छोटे थे। प्रेमचंद का जन्म सन् 1880 ई. और रवींद्रनाथ का जन्म सन् 1861 ई. में हुआ था। यही नहीं प्रेमचंद रवींद्रनाथ से पहले कालकवलित हो गए। प्रेमचंद का देहावसान सन् 1936 ई. में और रवींद्रनाथ का देहावसान सन् 1941 ई. में हुआ है।

रवींद्रनाथ हमेशा दूसरी भाषाओं के साहित्यकारों, कलाकारों, ज्ञानी-गुणी मनीषियों से मिलने की इच्छा रखते थे। रवींद्रनाथ की जीवितावस्था में शांतिनिकेतन ज्ञानी-गुणी मनीषियों का संगम स्थल रहा है। रवींद्रनाथ को प्रेमचंद से मिलने की बहुत इच्छा थी परंतु दोनों आपस में कभी मिल न सके। इन दोनों को आपस में मिलाने के लिए पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बहुत प्रयास किया था। परंतु अंत तक दोनों प्रयास में असफल ही रहे। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है, “श्रीयुत् प्रेमचंदजी से मिलने के लिए वे (रवींद्रनाथ ठाकुर) विशेष रूप से उत्सुक थे। कई बार शांतिनिकेतन से प्रेमचंद को निमंत्रण

भी दिया गया था पर दुर्भाग्यवश प्रेमचंदजी कभी वहां पहुंच नहीं सके।¹

प्रेमचंद और रवींद्रनाथ दोनों एक-दूसरे की रचना प्रक्रियाओं से भलीभांति परिचित थे। प्रेमचंद ने रवींद्रनाथ की रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद पढ़कर, उनके तीन उपन्यास—**बहुटकुरानीर हाट का दुलहन** (किताबीस्तान-इ-उर्दू, लाहौर), **नौकाडुबि का तूफान** (भारती पुस्तक भंडार, लाहौर) और **योगायोग का कश्मश** (राजपाल एंड संस, लाहौर) तथा उनकी **दस प्रेमपरक कहानियों** का अनुवाद **खामोश मुहब्बत और दिगर अफसाने-2** के नाम से एक संग्रह नेशनल लिटरेचर कंपनी, लाहौर से प्रकाशित हुआ था। प्रेमचंद ने प्रेमपरक कहानियों का ही अनुवाद इसलिए किया कि प्रेमचंद प्रेम और परमात्मा में कोई अंतर नहीं समझते थे। उन्होंने कहा है—“मनुष्य में तत्त्व वस्तु प्रेम है। प्रेम ही उन्हें जिलाता है। मनुष्य का जीवन आधार परमात्मा है। प्रेम और परमात्मा में कोई भेद नहीं है।”

प्रेमचंद के प्रति रवींद्रनाथ ठाकुर बहुत ही आदर का भाव रखते थे। जब सन् 1936 ई. में प्रेमचंद का देहावसान का समाचार प्राप्त हुआ तब उन्होंने दुखद समाचार सुनकर, पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी से कहा—“एक रतन मिला था तुमको, तुमने खो दिया।” साथ ही प्रेमचंद के शोक संतप्त परिवार को अपने शोक सदेश में कहा—“The literary reputation and worth of Premchandji transdended the provincial boundary and his loss is a loss to all of us.” इस प्रकार के शोक उद्गार प्रकट करने के बावजूद प्रेमचंद और रवींद्रनाथ आपस में मिल नहीं सके। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रेमचंद को

रवींद्रनाथ से मिलाने के लिए कई प्रकार के प्रयास किए। प्रेमचंद जापानी साहित्यकार योने नागुची की रचनाओं से बहुत ही प्रभावित थे। वे सन् 1935 ई. में जापान से भारत आए। उनका एक व्याख्यान कोलकाता में था। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रेमचंद को कोलकाता आने के लिए लिखा, जिससे उनकी एक साथ नागुची एवं रवींद्रनाथ ठाकुर दोनों से भेंट हो जाए। प्रेमचंद ने पत्र के उत्तर में लिखा—“आपका कार्ड मिला। धन्यवाद! काश कि मैं भी नागुची के भाषण सुन सकता, लेकिन क्या करूं, मजबूर हूं। परिवार को कैसे छोड़ूं यही समस्या है। लड़के इलाहाबाद में हैं और मैं भी चला जाऊंगा तो मेरी पत्नी कितना अकेला और असहाय महसूस करेगी। अगर मैं उसको भी अपने साथ ले आऊं तो खर्च करने के लिए अच्छी खासी रकम हाथ में होनी चाहिए इसीलिए यही इच्छा है कि मैं अपने घर में पड़ा रहूँ, पैसे की तंगी का शिकार तो न बनना पड़ेगा।”³

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत में एक प्रशस्ति पत्र भेजकर शांतिनिकेतन आने का निमंत्रण भेजा और अलग से एक पत्र में लिखा—“मान्यवर, उस दिन पंडित बनारसीदासजी के साथ गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर से मिलने गया था। बातों ही बातों में वर्तमान हिंदी साहित्य के संबंध में चर्चा चली। ऐसे अवसरों पर आपका नाम सबसे पहले आता है। उस दिन भी आपके रचे साहित्य की चर्चा बड़ी देर तक चलती रही। हम लोगों की इच्छा थी कि नव वर्ष के अवसर पर आप जैसे आदरणीय साहित्यिकों को निमंत्रण करें और गुरुदेव से परिचित कराएं। गुरुदेव ने हम लोगों के विचार का उत्साह के साथ स्वागत किया। इसलिए हम लोगों ने निश्चित किया है कि स्थानीय हिंदी समाज का वार्षिकोत्सव नव वर्ष 14 अप्रैल, 1935 को मनाया जाए। उस

दिन गुरुदेव का प्रवचन होता है। इसके पहले दिन भी जिस दिन वर्ष समाप्त होता है, उनका व्याख्यान होता है। कुछ और भी समारोह रहता है। गुरुदेव और आश्रम की ओर से निमंत्रण तो यथासमय जाएगा ही, इसके पहले ही हम हिंदी समाज की ओर से आपको निमंत्रण करते हैं। इस बार आप जरूर पधारें। हमारे आग्रहपूर्ण निमंत्रण को आप अस्वीकार न करें। आपको गुरुदेव से मिलाकर हम गर्व अनुभव करेंगे।”⁴

इसके बावजूद, प्रेमचंद रवींद्रनाथ ठाकुर से मिलने शांतिनिकेतन नहीं आए। एक दिन पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने रवींद्रनाथ को बातों ही बातों में कहा—“मैंने बहुत प्रयत्न किया कि किसी तरह प्रेमचंदजी को शांतिनिकेतन लाऊं, पर मैं असफल ही रहा। वे इतने अधिक संकोचशील हैं।”⁵ रवींद्रनाथ ठाकुर ने पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी से मुस्कराते हुए उत्तर दिया था—“कृपया यह न भूलिए कि मैं भी स्वभावतः बहुत संकोचशील हूँ, बशर्ते मुझे तमाम दुनिया की यात्रा करनी पड़ी है।”

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों के आपस में न मिलने के पीछे प्रेमचंद और रवींद्रनाथ ठाकुर के रहने का जीवन स्तर और रहन सहन ही मुख्य कारण रहा होगा। क्योंकि प्रेमचंद रवींद्रनाथ को रईस समझते थे। रवींद्रनाथ सचमुच में रईस परिवार के थे। साथ ही प्रेमचंद से रवींद्रनाथ के रहन-सहन का स्तर भी भिन्न था। रवींद्रनाथ का जन्म कोलकाता के ख्यात ठाकुर परिवार में हुआ था। जो एक समय बंगाल में धन-दौलत, विद्या-बुद्धि में ख्यात रहा है। जबकि प्रेमचंद का जन्म उत्तर प्रदेश के बनारस जिले के लमही गांव में एक खाते-पीते परिवार में हुआ था। उनके पिता मुंशी अजायब राय डाकघर के एक साधारण डाक मुंशी का काम करते थे। रवींद्रनाथ की शिक्षा का आरंभ कोलकाता के नॉर्मल स्कूल में हुआ और प्रेमचंद की शिक्षा का आरंभ गांव के ही एक मदरसे में हुआ। रवींद्रनाथ सत्रह वर्ष की आयु में ही वकालत पढ़ने के लिए लंदन भी गए और पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के आदेश पर

तीस वर्ष की आयु में जमींदारी की देखभाल करने के लिए बांग्लादेश के कुष्टिया जिले के सिलाइदह, पतिसर आदि स्थानों पर भी जाना पड़ा था। प्रेमचंद के घर की स्थिति ऐसी थी कि पिता अजायब राय की मृत्यु के बाद उन्हें गांव छोड़कर शहर आ जाना पड़ा था। शहर में आ जाने पर, ट्यूशन पढ़ाकर खुद की पढ़ाई चालू रखना और घर को भी देखना पड़ा था। उन्होंने कहा है—“संयोग से एक वकील साहब के लड़के को पढ़ाने का काम मिल गया। पांच रुपए वेतन ठहरा। मैंने दो रुपए में अपना गुजर करके तीन रुपए घर पर देने का निश्चय किया। वकील साहब के अस्तबल के ऊपर एक छोटी-सी कच्ची कोठरी थी। उसी में रहने की आज्ञा ले ली। एक टाट का टुकड़ा बिछा दिया, बाजार से एक छोटा-सा लेंप लाया और शहर में रहने लगा।”⁶

प्रेमचंद को पैसे के अभाव में कई दिनों तक बिना खाए भूखे भी रहना पड़ा था। अंत में नई गणित की कुंजी की किताब बेचने की नौबत आ गई। उन्हीं के शब्दों में—“जाड़ों के दिन थे। पास में एक कौड़ी न थी। दो दिन एक एक पैसे का चबेना खाकर काटे थे। मेरे महाजन ने उधार देने से इनकार कर दिया था या संकोचवश मैं उससे मांग न सका था। चिराग जल चुके थे। मैं एक बुकसेलर की दुकान पर एक किताब बेचने गया। चक्रवर्ती गणित की कुंजी थी। दो साल हुए खरीदी थी। अंत तक उसे बड़े जतन से रखे हुए थे। पर आज चारों ओर से निराश होकर, मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रुपए की थी, लेकिन एक पर सौदा ठीक हुआ।”⁷

प्रेमचंद की तरह रवींद्रनाथ ने देश की तत्कालीन राजनीति में सक्रिय रूप से भाग नहीं लिया। प्रेमचंद ने देश की तत्कालीन राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया। उनका संबंध राष्ट्रीय कांग्रेस के गरम दल से था। उनके ‘सोजे वतन’ कहानी संग्रह में देश की तत्कालीन स्थिति का चित्रण होने के कारण, ब्रिटिश सरकार ने उसकी सभी प्रतियां जब्त कर ली थी। यह सच है कि रवींद्रनाथ ने प्रेमचंद की भांति तत्कालीन राजनीति में सक्रिय रूप से भाग नहीं लिया किंतु जब उन्हें

मौका मिला तब उन्होंने इसका डट कर विरोध किया। ब्रिटिश सरकार के जलियांवाला बाग के नृशंस हत्याकांड से मर्माहत होकर, उन्होंने ‘नाइटहुड’ की पदवी को ठुकरा दिया था।

प्रेमचंद रवींद्रनाथ को रईस ही नहीं, उनके शांतिनिकेतन आश्रम को स्वर्ग समझते थे। जब जैनेंद्र ने उन्हें शांतिनिकेतन चलने का आग्रह किया तब उन्होंने जैनेंद्र से कहा था—“मैं तो वहां उस स्वर्ग की सैर करूँ, यहां घर के लोग तकलीफ के दिन काटें, क्या यह मेरे लिए ठीक है? और सबको ले चलो, इतना पैसा कहां है? और जैनेंद्र महाकवि रवींद्रनाथ तो अपनी रचनाओं द्वारा यहां भी हमें प्राप्त हैं। क्या वहां मैं उन्हें अधिक पाऊंगा?”⁸

इस प्रकार, उपर्युक्त कारणों से जैसा प्रतीत होता है प्रेमचंद रवींद्रनाथ से मिलने में असमर्थ रहे। अगर आपस में इन दोनों की भेंट-मुलाकात हुई होती तो आज भारतीय साहित्य एवं आने वाली पीढ़ियों को एक दिशा-निर्देश प्राप्त हुआ होता।

संदर्भ—

1. विशाल भारत, भाग-29, अंक-1, जनवरी, 1942
2. दस प्रेम परक कहानियां—खामोश-मुहब्बत (त्याग), दास्तान-इ-मुहब्बत (मध्यवर्तिनी), कैफ-इ-मुहब्बत (रविवार), एजाज-इ-मुहब्बत (शोभा), दिलदोज-इ-मुहब्बत (एकटि आषाढ़ेर गल्प), दर्द-ओ-मुहब्बत (मेघदूत), इशरात-इ-मुहब्बत, जाबात मुहब्बत (प्रतिवेशिनी), शेर-इ-मुहब्बत (क्षुधित पाषाण), तकरार-इ-मुहब्बत (मुसलमानीर गल्प)।
3. कलम का सिपाही, अमृत राय, पृ. 363
4. उपरिखत्।
5. विशाल भारत, भाग-29, अंक-1, जनवरी, 1942
6. उपरिखत्।
7. उपरिखत्।
8. उपरिखत्, पृ. 363

सचिव, शांतिनिकेतन हिंदी प्रचार सभा,
रूपांतर परिसर, रतनपल्ली नार्थ,
शांतिनिकेतन-731235, पश्चिम बंगाल

संभावनाओं और अपेक्षाओं से भरा उपन्यास है कर्मभूमि

डॉ. मंजु तंवर

डॉ. मंजु तंवर : कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. मंजु तंवर ने कई पत्र-पत्रिकाओं में लेखन के साथ-साथ कुछ पत्रिकाओं का संपादन भी किया है। इनकी एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

प्रेमचंद की औपन्यासिक कृतियों से हिंदी उपन्यास में एक नए युग की शुरुआत देखी जा सकती है। उन्होंने पहली बार माना कि उपन्यास या कोई भी साहित्य विधा का निमित्त केवल मनोरंजन करना नहीं है। लखनऊ में 1936 में एक सम्मेलन में उन्होंने इस बात पर जोर दिया था—“साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएं की गई हैं; पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा ‘जीवन की आलोचना है।’” (प्रेमचंद—‘साहित्य का उद्देश्य’, साहित्य चिंतन धारा, पृ. 90)। आगे वह यह भी कहते हैं—“जो दलित हैं, पीड़ित हैं, वंचित हैं—चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है। इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तग़ासा पेश करता है। उसकी न्याय-वृत्ति तथा सौंदर्य-वृत्ति को जाग्रत करने अपना यत्न सफल समझता है।” (वही, पृ. 92)

‘दलित’, ‘पीड़ित’, ‘वंचित’ की हिमायत और वकालत का आधार समाज को बनाकर प्रेमचंद गोदान में जिस न्याय-वृत्ति और सौंदर्य-वृत्ति को जाग्रत करने की बात 1936 में कर रहे थे, कथा-पटल पर उसका रचनात्मक उपयोग वह इससे चार वर्ष पूर्व ही 1932 में प्रकाशित अपने ‘कर्मभूमि’ उपन्यास में स्वयं कर चुके थे। “अब तसे हमें उस कला की आवश्यकता है, जिसमें कर्म का संदेश हो।” (साहित्य का उद्देश्य, पृ. 96) यह कहने

वाले प्रेमचंद ‘गोदान’ (मूल ऋण का समस्या), ‘प्रेमाश्रम’ (बेदखली और इजाफा लगान पर) के बाद भारत में बदले आर्थिक संकट, किसानों की लगानबंदी, शिक्षा, जाति, वर्ग संतुलन व नारी स्वाभिमान जैसे ज्वलंत मुद्दों वाले उपन्यास का नाम ही ‘कर्मभूमि’ रखते हैं। यह केवल संयोग मात्र नहीं है। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की—“हमारी कसौटी का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।” (साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ. 102)

‘कर्मभूमि’ स्वाधीनता आंदोलन में सविनय अवज्ञा-भंग आंदोलन के दौरान लिखा गया, लेकिन विशेष गौर करने लायक बात है कि उसमें नमक कानून तोड़ने के आंदोलन को आधार नहीं बनाया गया। क्योंकि प्रेमचंद इससे भी आगे बढ़कर संपूर्ण मानव की जिजीविषा और परिवर्तन के दौर में उसकी अस्मिता (अस्तित्व) को अपने कथा-पटल पर उतार रहे थे। इसीलिए ‘कर्मभूमि’ में सबसे ज्यादा जोर लगान कम करने, जमीन की समस्या, शिक्षा, खेतिहर मजदूरों की समस्या के साथ उन गरीबों और अछूतों की समस्या है, जो जातिगत कम बल्कि समाज के वर्ग-विभाजन की उपज ज्यादा थे। जिससे समूचा मानवीय समाज जूझ रहा था। लेकिन यह कहना भी असंगत न होगा कि प्रेमचंद इस वर्ग-विभाजित अछूत समस्या को तथाकथित संभ्रांत व शिक्षित कहे जाने वर्ग के नेतृत्व में ही सुलझाने की बात भी कर रहे हैं। उपन्यास के नायक अमरकांत एक खाते-पीते, उच्च शिक्षित व संभ्रांत परिवार के इकलौते

वारिस हैं। लेकिन अपनी सारी धन-दौलत व ऐशो-आराम को छोड़कर हिंदुस्तान में फैली गरीबी—आर्थिक व मानसिक—दोनों के उन्मूलन के सारे संघर्ष अमरकांत व उच्च शिक्षित प्रो. शांति कुमार की अगुवाई में ही क्रियान्वित होते हैं। इस तत्कालीन वस्तु स्थिति से जोड़कर भी देखा जा सकता है।

दरअसल प्रेमचंद केवल यथार्थ को ही उकेरने वाले साहित्यकार नहीं हैं, बल्कि वे अपने संपूर्ण कथा साहित्य में यथार्थ में डूबने के बाद भी उसमें कुछ ऐसे बिंदुओं की चर्चा सप्रयास या अनायास ही कर जाते हैं। ‘कर्मभूमि’ में नायक अमरकांत राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित होकर घर-बार छोड़ देते हैं, समाज-सेवा में लगते हैं, पिता और पत्नी का भी विरोध करते हैं, गांवों में जाकर सामाजिक संगठन खड़ा करते हैं, लेकिन अंत में उनके घर वाले भी उनके इस आंदोलन में शामिल हो जाते हैं और अमरकांत अपने घर वापस लौट आते हैं। इसीलिए प्रेमचंद को कुछ आलोचकों ने ‘आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी’ भी कहा है। यहां आदर्श यथार्थ का विलोम नहीं है। आदर्श का मूलाधार ही यथार्थ है। या यों कहें कि यथार्थ से निकलकर ही आदर्श सहज ही प्रसूत होता है।

प्रेमचंद का यह उपन्यास स्वाधीनता आंदोलन के उस दौर का है, जब सारे भारत में लोग अंग्रजों के अत्याचारों के विरोध में उठ खड़े हुए थे, एक राष्ट्रीय आंदोलन की तरह। भारत की तंग कही जाने वाली गलियों और गंदे मकानों में भी आजादी की हवा मानो टाट के पर्दे के भीतर से छनकर बाहर आ रही थी। हिंदू-मुसलमान, औरत-मर्द, बूढ़े-जवान, अमीर-गरीब सभी अंग्रजों की गुलामी से

मुक्ति पाने के लिए छटपटा रहे थे। इस संबंध में डॉ. रामदरश मिश्र के ये विचार उल्लिखित किए जा सकते हैं—

“प्रेमचंद ने इस संक्रमण को भली-भांति पहचाना था। वे निश्चय ही विचारों और संस्कारों से मूल भारतीय आदर्शों के पोषक थे परंतु एक यथार्थवादी कलाकार की हैसियत से समाज में व्याप्त पुराने-नए मूल्यों के संघर्षों, पुराने जर्जर मूल्यों के विघटन और नए भौतिकवादी मूल्यों की उत्तरोत्तर प्रतिष्ठा को आंख से ओझल नहीं कर सकते थे। प्रेमचंद ने बड़े ही स्पष्ट रूप से धर्माधारित मूल्यों को विघटित और अर्थवादी मूल्यों को प्रतिष्ठित होते हुए देखा। प्रेमचंद के उपन्यासों में समस्याएं तरह-तरह की हैं। तरह-तरह के वर्ग और समाज चित्रित हैं किंतु सबके मूल में मानो आर्थिक समस्या ही अंतःसलिला की भांति बहती रहती है।” (आधुनिक हिंदी उपन्यास-रामदरश मिश्र, पृ. 02)। ‘प्रेमाश्रम’ और ‘गोदान’ में किसान-जमींदार और किसान-महाजन की समस्या प्रमुख है, लेकिन ‘कर्मभूमि’ में देशभक्ति है, जो जनतंत्र पर आधारित है या इससे भी आगे बढ़कर कह सकते हैं कि समूचे मानव या मनुष्यत्व पर आधारित है। ‘कर्मभूमि’ में वह जिन पात्रों को लेकर कथा गढ़ते हैं, वे उनके जीवन के हर पहलू, हर ढंड को उकेरने का प्रयास करते हैं, हर पुरानी व सड़ी-गली प्रथाओं को तोड़कर जीवन में गति व लय कि बात करते हैं, जीवन को ग्राह्य बनाने की बात करते हैं। इसीलिए यथार्थ इनमें कूट-कूट कर भरा है। वही ‘कर्मभूमि’ की जीवनी शक्ति है, जो उसे यथार्थ के विविध धरातलों से गुजरते हुए आधुनिक भी बनाती है।

इस संबंध में डॉ. रामदरश मिश्र का ही एक और कथन उल्लिखित किया जा सकता है—

“प्रेमचंद के उपन्यासों की यथार्थ चेतना ही उनकी मूल शक्ति है। प्रेमचंद किसी भी वाद की एकांगिता से पीड़ित न होकर अपने पूरे युग और समाज को उसकी समस्त जटिल वास्तविकता के साथ पकड़ लेना चाहते थे। इसीलिए एक ओर वे सामाजिक यथार्थ को उसके विविध स्वरूपों में प्रस्तुत कर रहे थे,

दूसरी ओर विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों और संस्कारों में पले व्यक्तियों की मानसिक गहराइयों में पैठकर मन-सत्त्यों का उद्घाटन कर रहे थे। यह युग राष्ट्रीय और सामाजिक उथल-पुथल का युग था। यह संक्रांति काल था दो प्रकार की संस्कृतियों का, दो प्रकार की मूल्यों का। साथ ही साथ संघर्षकाल था साम्राज्यवाद से राष्ट्रवाद का, सामंती सभ्यता से महाजनी सभ्यता का, सामंती और महाजनी दोनों सभ्यताओं से शोषित किसानों और मजदूरों की शक्तियों का।”

उपन्यास में लेखक ने गांव और शहर के फासले ही नहीं, बल्कि एक ही शहर के गली-मौहल्लों के फासले को भी इंगित किया है। सकीना के घर की गली का जिक्र करते हुए वह लिखते हैं—“गली में बड़ी दुर्गंध थी। गंदे पानी के नाले दोनों तरफ बह रहे थे। घर प्रायः सभी कच्चे थे। गरीबों का मुहल्ला था। शहरों के बाजारों और गलियों में कितना अंतर है। एक फूल है—सुंदर, स्वच्छ, सुगंधमय; दूसरी जड़ से है—कीचड़ और दुर्गंध से भरी, टेढ़ी-मेढ़ी; लेकिन क्या फूल को मालूम है कि उसकी पहचान जड़ से है?” अपरोक्ष रूप से लेखक कहना चाहता है कि समरकांत और उसके जैसे संभ्रांत वर्ग के लोगों के वैभव और सुख का आधार इन्हीं गंदे मुहल्ले वालों के श्रम पर टिका है। लेकिन इसके साथ ही यह भी आकस्मिक नहीं है कि इन तथाकथित गंदे कहे जाने वाले लोगों और गली-मौहल्लों के जीर्णोद्धार के लिए जितने प्रयास या आंदोलन होते हैं, ये सब अमरकांत जैसे संभ्रांत और प्रो. शांतिकुमार जैसे पढ़े-लिखे लोगों के निदर्शन में ही होते हैं। इसलिए प्रो. शांति कुमार जब कहते हैं कि “दया और धर्म की बहुत दिनों परीक्षा हुई और यह दोनों हल्के पड़े। अब तो न्याय-परीक्षा का युग है।” लगता है कि मानो सारे उपन्यास का सूत्र वाक्य कह गए हों। न केवल अमरकांत बल्कि ‘कर्मभूमि’ की एक सशक्त नारी पात्र, जो अछूतों में शिक्षा का प्रसार व अन्य अछूत कहे जाने वाले समाज में फैली बुराइयों को दूर करने का बीड़ा उठाती है, वह भी ठकुराइन है, चोट खाई घायल स्त्री है। इतना ही नहीं, मुन्नी के जेल जाने के बाद इस संघर्ष को आगे बढ़ाने वाली नारी पात्र

अमरकांत की पत्नी सुखदा भी इसी वर्ग से आती है।

सकीना, जो अपनी बंद कोठरी में इसलिए वस्त्रहीन बैठी है कि उसने अपना एकमात्र जोड़ा धोकर सुखाने के लिए डाला है और जब अमरकांत दरवाजे की कुंडी खटखटाता है, तो वह उन्हीं गीले वस्त्रों को पहनकर दरवाजा खोल देती है। निराला की ‘वह तोड़ती पत्थर’ की मजदूरिन पत्थर तोड़ते-तोड़ते स्वयं का अट्टालिकाओं में आशियाना बनाने की बात भले ही न सोचती हो, लेकिन सकीना जैसी बेटी की मां अमरकांत जैसे बड़े घर के लड़के से अपनी बेटी के लिए वर ढूढ़ने को कहती है, वह जानती है कि अमरकांत की तरह उसके दोस्त भी बड़े घर के ही होंगे। अपनी बेटी को बड़े घर में ब्याहने की मां की यह चाह क्या संयोग मात्र है? इतना ही नहीं आगे बढ़ के वह यह भी कहती है—‘तो भला धनी लोग हम गरीबों की बात क्यों पूछेंगे? हालांकि नबी का हुकम है कि शादी-ब्याह में अमीर-गरीब का विचार न होना चाहिए; पर उनके हुकम को कौन मानता है। नाम के मुसलमान, नाम के हिंदू रह गए हैं। न कहीं सच्चा मुसलमान नजर आता है, न सच्चा हिंदू।’ दरअसल प्रेमचंद नौजवानों और नई पीढ़ी के लेखक थे और यथार्थ के कुशल चितरे भी। इसलिए जाने-अनजाने में आए ऐसे प्रसंग उन्हें आधुनिक भी बनाते हैं और प्रासंगिक भी।

प्रेमचंद की यथार्थ दृष्टि में वैज्ञानिक दृष्टि का भी विशेष महत्त्व है। वे न केवल देश की, बल्कि विदेशों में घटित होने वाली प्रभावी घटनाओं से भी वाकिफ थे और दोनों की परस्पर-संबद्धता को भी बखूबी पहचान रहे थे। सन् 1929-30 में मंदी का जमाना था और सोवियत संघ को छोड़कर लगभग समूचा विश्व उसकी चपेट में था। लाखों लोगों के जन-संहार के बाद भी साम्राज्यवाद का संकट हल होने की बजाय गहराया हुआ था। और इसका सबसे अधिक असर हुआ गांवों और गांवों के गरीब किसानों पर हुआ और प्रेमचंद ने ‘कर्मभूमि’ में किसानों के माध्यम से इस समस्या को कुछ यूं देखा—“लेकिन इस साल अनायास ही जिंसी का भाव गिर गया। इतना गिर गया, जितना चालीस साल पहले था।

जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बाचकर लगान देता था; लेकिन जब दो और तीन के जिंस एक में बिके, तो किसान क्या करें? कहां से लगान दे, कहां से दस्तूरियां दे, कहां से कर्ज चुकाएं! विकट समस्या आ खड़ी हुई।”

प्रेमचंद की दृष्टि केवल यहीं तक नहीं जाती। वे इससे भी आगे बढ़कर उसका समाधान भी ढूंढने की कोशिश करते हैं। अमरकांत और एक दूसरे नेता आत्मानंद इलाके में शिक्षा का प्रचार करते हैं, किसानों को उनके अधिकारों के प्रति जाग्रत करने की कोशिश करते हैं। कुछ गांवों में किसानों ने दस्तूरी देना बंद कर दिया। गंगा के किनारे आत्मानंद के नेतृत्व में एक आम सभा की जाती है। किसानों का मनोबल बढ़ाया जाता है। अमरकांत कहता है—“यह विपत्ति कुछ हमारे ही ऊपर नहीं पड़ी। सारे देश में यही हाहाकार मचा हुआ है। हमारे नेता इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्हीं के साथ हमें भी चलना है।” लेकिन अमरकांत लंबे-लंबे भाषण देता है, तो जनता उनसे ऊबने लगती है, हालांकि उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण जनता उन्हें झेलती जाती थी। लेखक लिखता है—“उसका सम्मान सभी करते थे, इसीलिए कोई अधम नहीं हुआ, कोई बमचख न मचा, पर जनता पर कोई असर न हुआ।” कहना न होगा कि अमरकांत जैसे उबाऊ भाषण देने वाले नेताओं की जरूरत आज भी नहीं है। इसके विपरीत आत्मानंद का कहना था कि महंत का घर घेर लिया जाए और जब तक वह लगान न छोड़ दे, तब तक कोई उत्सव भी मनाने न दिया जाए। इन दोनों नेताओं के मतभेद के चलते ही कोई फैसला नहीं होता और सभा बेनतीजा ही समाप्त हो जाती है। सभाएं पर सभाएं लेकिन परिणाम जीरो, आज भी क्या ऐसा ही नहीं होता है?

प्रेमचंद के यथार्थ चित्रण के गहराते संदर्भों के गर्भ में उनकी पारिवारिक जिंदगी पर पकड़ और शायद उनका निजी जीवन भी है। छोटी उम्र में मां की गोद का लाड़-दुलार और स्पर्श की ताकत से वंचित बालकों का दर्द और पीड़ा उनके साहित्य में अनेकों बार व्यक्त हुई, जो उनका निजी अनुभव भी है। ‘कर्मभूमि’

के नायक अमरकांत की मां बचपन में ही बिछुड़ गई और उनकी दुनिया सूनी हो गई। वह कहता है—“जिंदगी की वह उम्र, जब इनसान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है। वह बचपन है। उस वक्त पौधे को तरी मिल जाए जो जिंदगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं। उस वक्त खुराक न पाकर उसकी जिंदगी खुश्क हो जाती है। मेरी मां का उसी जमाने में देहांत हुआ और तब से मेरी रूह को खुराक नहीं मिली। वही भूख मेरी जिंदगी है।” एक तो अपनी जननी से बिछोह और ऊपर से दूसरी मां का साया, दोहरा गम, अमरकांत उससे भी नहीं बच पाया। लेखक ने इसे कुछ यों व्यक्त किया—“उस सात साल के बालक ने नई मां का बड़े प्रेम से स्वागत किया, लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया कि उसकी नई मां उसकी जिद और शरारतों को उस क्षमा दृष्टि से नहीं देखती, जैसी उसकी मां देखती थी। नई माताजी बात बात पर डांटती थी। यहां तक कि उसे माता से द्वेष हो गया। पिता और पुत्र में स्नेह का बंधन न रहा।” पारिवारिक जीवन के साथ ही उसका राजनीतिक जीवन भी एक दुलमुल व्यक्ति जैसा ही है। सुखदा जैसी संभ्रांत परिवार की, सुंदर, सुशील व पढ़ी-लिखी पत्नी पाकर भी वह एक अच्छा पति नहीं बन पाता। सर्वगुण संपन्न पत्नी पाकर भी उस पर अपना प्रभुत्व जमाने की दमित इच्छा या तांक-झांक कर खुद को आकर्षक और योग्य दिखाने का ढकीसला करता है। सुखदा को छोड़कर सकीना की ओर आकर्षित होना फिर मुन्नी की ओर भी आकर्षित होना उपन्यास की गांधीवादी विचारधारा में कहीं भले ही फिट बैठ जाता हो, लेकिन अक्षय पति के मानसिक द्वंद से भी अछूता रहा हो, कहना मुश्किल है। वैसे अमरकांत एक ईमानदार और स्वाभिमानी व्यक्ति है। अपनी सास से 1000 रुपए लेकर 500 रुपए खर्च करता है तो 500 रुपए वापस लौटा देता है। पिता अमरकांत द्वारा फीस के पैसे न देने पर पुनः नहीं मांगता। यहां तक कि बहन नैना के मांगकर देने पर भी लौटा देता है। सहानुभूति, परोपकार, सेवा, सादा जीवन, अन्याय का विरोध, त्याग आदि मानवतावदी गुण उसकी गांधीवादी विचारधारा के प्रभाव

कहे जा सकते हैं। वह सिल्लो जैसी दीन दुखी पात्रों की भरपूर मदद करता है, गांव के गरीबों को पढ़ाता है, जेल के कैदियों की सेवा करता है, सकीना उसे हीरा मानती है और मुन्नी एक सहारा। और अंत में त्याग और प्रेम को अपनाने वाली उसकी पत्नी भी उसके लिए श्रद्धा बन जाती है, जन-सेवी पिता के प्रति भी उसके मन में श्रद्धा उमड़ पड़ती है। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का वह विरोध करता है और सेवा-भाव और विनम्रता में ही शिक्षा की सार्थकता तलाशता है। शायद इसीलिए डॉ. रामविलास शर्मा जैसे आलोचक ने ‘कर्मभूमि’ के अमरकांत को कुछ इस प्रकार विश्लेषित किया है—

“कर्मभूमि में प्रेमचंद ने अमरकांत को क्रांति का ऐसा भक्त दिखलाया है कि उसका ओढ़ना-बिछाना, खाना-पीना सब कांतिमय हो गया है। लेकिन मौके पर वह किसान नेता आत्मानंद को गिरफ्तार कराने से नहीं झिझकता। यह इंकलाब एक बीमारी है जो लेखक के जनता से अलगाव को शब्दों की आतिशबाजी से ढकने की कोशिश करती है।” (‘प्रेमचंद और उनका युग’—रामविलास शर्मा, पृ. 13)

लेकिन इससे भी आगे बढ़कर डॉ. रामविलास शर्मा ही एक लंबे से अमरकांत के चरित्र को जिस रूप में व्याख्यायित करते हैं, वह इससे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है—“उसका मनोबल टूट नहीं है और कभी-कभी उसे जब आगे बढ़ना चाहिए, वह पीछे पैर हटाता है। प्रेमचंद ने जान-बूझकर उसकी इन कमजोरियों को चित्रित किया है। एक ही वातावरण में रहने वाले स्त्री और पुरुष का वह भेद बतलाते हैं। एक ही देश में रहने वाले धनी और गरीब स्त्री-पुरुषों के भेद पर भी प्रकाश डालते हैं। अमरकांत ‘गबन’ के रमाकांत की तरह नहीं है। वह लड़कपन से सार्वजनिक कामों में हिस्सा लेता रहा है। इसलिए उसके चरित्र में दूसरी तरह की विशेषताएं आ गई हैं। फिर भी कुछ बातों में वह रमाकांत से मिलता है जिनमें मन की दृढ़ता का न होना मुख्य है।” (‘प्रेमचंद और उनका युग’ पृ. 85-86)

स्वयं लेखक ने भी उपन्यास के आरंभ में

ही लिखा है—“वह दिन तो अभी दूर, बहुत दूर था, जब उसके चित्त की वृत्ति ही बदल जाए।” और वह दिन उपन्यास के अंत तक नहीं आता। दरअसल उपन्यास के कथ्य और तथ्य को अकेले अमरकांत के चरित्र से नहीं समझा जा सकता। उसके लिए सुखदा, सकीना, सलीम, मुन्नी, प्रो. शांतिकुमार जैसे चरित्रों से जोड़कर देखना अनिवार्य है।

एक धनी व्यापारी का पुत्र अत्यंत निर्धन मुस्लिम युवती से प्रेम करता है, मुस्लिम युवक सलीम उसका अभिन्न मित्र है, लेकिन उसमें जातीय गौरव भी है। वह नियम से सूत कातता है, सिद्धांतों की कीमत पर समझौता करने को तैयार नहीं है, फिर भी वह दुलमुल चरित्र के युवक से खुद को बचा नहीं पाता। पहले ही अध्याय में सकीना से विवाह करने में असमर्थ पत्नी सुखदा को विलासिनी, गुरु प्रो. शांतिकुमार को पाखंडी और पिता समरकांत को धनपिपासु समझकर काशी छोड़कर एक रमणीक पहाड़ी स्थल पहुंच जाता है ‘जहां सब रैदास रहते हैं।’ ‘अमरकांत वहां एक वृद्धा से कहता है—‘मैं जात-पात नहीं मानता, माताजी। जो सच्चा है वह चमार भी हो तो आदर के योग्य है, जो दगाबाज, झूठा, लंपट हो, ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नहीं।’ फिर इसी गांव बस जाता है, सलोनी काकी की झोंपड़ी में रहता है, सलोनी काकी की रसोई में एक से दूसरी थाली नहीं है, लेकिन मेहमाननवाजी का संस्कार देखिए कि खुद बाजरे की सूखी रोटी खाती है, पर अमरकांत को फुलके खिलाती है। यहीं चमारों का चौधरी गूदड़ मिलता है, गांव में अशिक्षा से पैदा समस्याएं दिखती हैं। गूदड़ के दोनों बेटों के माध्यम से क्रमशः मजदूरी और किसानों का संघर्ष सामने आता है। जमींदारों का अछूतों के प्रति वही रवैया है जो अन्य जातियों के किसानों के प्रति। जमींदार के प्यादे और कारिंदे आसामियों को लूटते हैं। इसीलिए गूदड़ अमरकांत से कहता है—“मेरे साझीदार बनकर रहो। महंतजी से कहकर दो-चार बीघे का बंदोबस्त करा दूंगा। तुम्हारी झोंपड़ी अलग बन जाएगी। खाने-पीने की कोई बात नहीं। एक भला आदमी तो गांव में हो जाएगा। नहीं कभी एक चपरासी गांव में आ गया तो सबकी

सांस तले ऊपर होने लगती है।” ग्रामीण संस्कार हैं, इसलिए खाने-पीने की व्यवस्था की कोई चिंता नहीं इसीलिए अमरकांत सलोनी काकी की झोंपड़ी में ही रहने लगता है। वहां पहले गांव की कुछ लड़कियां भी अमरकांत से पढ़ने के लिए आती हैं। न केवल पढ़ाई बल्कि साज-सफाई व अन्य व्यवहार संबंधी शिक्षा का भी प्रचार-प्रसार भी वहां किया जाता है। यद्यपि गांव-गांव जाकर कंधे पर खादी के गट्ठर लेकर अमरकांत से खादी बिकवाने वाले प्रसंग जबरन एक विचारधारा विशेष का प्रचार व कथा प्रसंग का कमजोर पक्ष भी है, जो कभी-कभी ऊबाऊ भी लगता है। प्रो. शांतिकुमार अमरकांत के पिता समरकांत के पसंद न किए जाने बावजूद अपनी नई सोच, नई प्रणाली और अटूट लगन के कारण आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के चलते उपन्यास को गति प्रदान करते नजर आते हैं।

उपन्यास में सुखदा अमरकांत की पत्नी और समरकांत की बहू के रूप में तो उभरकर सामने आई है। वह एक भारतीय नारी का आदर्श रूप है, लेकिन एक आधुनिक नारी के रूप में भी अपनी छाप छोड़ती है। वह एक अमीर घराने की पढ़ी-लिखी लड़की दिखाई देती है, जो अमर के त्याग, करुणा, दया, सेवा जैसा विचारों से मतभेद के चलते वैचारिक संघर्ष भी करती है। लेकिन यथार्थ की भूमि पर उसका दायित्व बोध भी जाग उठता है वह अपने श्वसुर समरकांत की दिन-रात सेवा करती हैं, लेकिन पति अमरकांत से उपेक्षा पाकर उसके दया-धर्म पर जीना नहीं चाहती। अमर के अनुरूप न ढलकर अपनी तर्क शक्ति से उसे अपने अनुरूप ढालने का प्रयास करती है। अपने चातुर्य से ही वह चंचल प्रकृति के अमर को पारिवारिक व्यवसाय दुकान का दायित्व संभालने पर विवश कर देती है। वह एक सजग और आधुनिक नारी है, जो आंख बंद करके पति का अनुसरण नहीं करती। कई अर्थों में सुखदा के सामने अमरकांत का चरित्र भी बौना नजर आता है।

अमरकांत और उसके साथी जब गोरों पर फतह करके लौटे, तो स्वयं सुखदा ने ही अमरकांत से उस स्त्री के बारे में पूछा, जिसके साथ गोरों ने बलात्कार किया था और बाद में

जब अमरकांत और उसके साथियों ने उसकी कोई सुध न ली, तब सुखदा ही डांटकर कहती है—“एक दिन जाकर सब कोई उसका पता क्यों नहीं लगाते, या स्पीच देकर ही अपने कर्तव्य से मुक्त हो गए।” सुखदा शायद अमरकांत की नेता बनने की चाह और दुलमुल होने वाले कमजोर मनोबल दोनों को भांप गई थी, इसीलिए यह अप्रत्याशित नहीं था कि वह स्वयं भी अमरकांत के संघर्ष में कूद पड़ी और एक मजबूत कड़ी के रूप में उभरकर सामने आई।

सार्वजनिक कार्य के अनुभव ने सुखदा को इतना चतुर बना दिया है कि व्यक्ति और समाज को आर-पार देख सकती है। गांव में चौधरियों के व्यवहार की मीमांसा करते हुए वह नैना से कहती है—“हड़ताल तो होगी, चाहे चौधरी लोग माने या न मानें। चौधरी मोटे हो गए हैं और मोटे आदमी स्वार्थी होते हैं।” शहर में हड़ताल होती है और सुखदा को गिरफ्तार कर लिया जाता है।

सुखदा के बाद क्रमशः सकीना की बूढ़ी मां, पठानिन, समरकांत, अमर की सास रेणुका देवी, डॉ. शांतिकुमार और नैना आंदोलन का नेतृत्व करते हैं। नैना को छोड़कर सब गिरफ्तार कर लिये जाते हैं। नैना संघर्ष की दिशा बदल देती है। म्युनिसिपल बोर्ड के अधिकारी सत्याग्राहियों के सामने घुटने टेक देते हैं और प्लॉट गरीबों के घरों के लिए आवंटित कर दिए जाते हैं। लेकिन इस संघर्ष में नेतृत्व कर रही नैना को उसका पति मनीराम गोली मार देता है। राजनीति और आंदोलनों में जनता के साथ-साथ परिवार की भागेदारी की महत्ता और बलिदान पर लेखक की नजर पैनी है।

उपन्यास में मुन्नी एक और ऐसा नारी पात्र है जो उसके फलक को उधेड़कर सामने रख देता है। अपमानित, कुचली और रौंदी गई नारी जब विद्रोह पर उतारू होती है, तो ज्वाला बनकर फटती है। गोरों द्वारा किए गए बलात्कार के अपमान को मुन्नी भूल नहीं पाती। वह पागल की तरह घूमा करती। घर भी लौटकर नहीं जाती, क्योंकि उसकी जाति वाले उसे ‘अपवित्र’ कहेंगे। लोकनिंदा उसके घर वापसी के रास्ते बंद करती है। लेकिन

दिल में धधकती आग का क्या करे? इसलिए अमरकांत की दुकान के सामने दो फौजियों को मार डालती है। पहले लोग हत्यारिन समझते हैं, लेकिन सच्चाई पता लगाने पर जनता की हमदर्दी मिलती है, अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाली नारी के लिए प्रेमचंद जनता की सहानुभूति की बात करते हैं, लेकिन साथ ही मुन्नी के मन में उठी उस आशंका को भी उतने ही जोरदार ढंग से उठाते हैं, जिसमें मुन्नी अपने परिवार व जाति-समाज द्वारा उसे 'कलंकित' होने पर पुनः पहले जैसा मान दिए जाने के प्रति आश्वस्त नहीं है। हां, उसके पति द्वारा उसे पुनः अपनाए जाने की बात कही अवश्य गई है, लेकिन यह भी शायद आज भी पुरुष प्रधान समाज में ओढ़ी गई छद्म शालीनता की औपचारिकता मात्र ही है? क्या आज भी समाज इससे अछूता है। दरअसल प्रेमचंद अपने समय से भी कई सौ साल आगे का भी देख रहे थे। इसीलिए वे सुखदा के मुख से कहलवाते हैं—“अगर इसको फांसी हो गई, तो मैं भी समझूंगी, संसार से न्याय उठ गया। उसने कोई अपराध नहीं किया। जिन दुष्टों ने उस पर ऐसा अत्याचार किया, उन्हें यही दंड मिलना चाहिए था। मैं अगर न्याय के पद पर होती तो, उसे बेदाग छोड़ देती। ऐसी देवी की तो प्रतिमा बनाकर पूजना चाहिए। उसने अपनी सारी बहनों का मुख उज्ज्वल कर दिया।” मुन्नी के विचार और व्यवहार को प्रेमचंद की नारी-भावना व गांधीवादी विचारधारा के अलावा भी उस समय के एक वर्ग विशेष द्वारा अपनाई जा रही तथाकथित गरमपंथ की नीतियों से जोड़कर भी देखा जा सकता है। बलात्कार जैसे जघन्य अपराध के लिए देश की आजादी के लगभग सात दशकों के बाद भी भारतीय लोकतंत्र में संसद से लेकर सड़कों तक अपराधी के लिए जिस कड़ी सजा की मांग आज जोरदार ढंग से उठाई गई है, प्रेमचंद जैसे साहित्यकार ने प्रकारांतर से उसकी रचानात्मक परिणति आजादी से भी लगभग एक दशक पूर्व प्रकाशित उपन्यास 'कर्मभूमि' में मुन्नी से गोरों द्वारा किए गए बलात्कार की घटना के माध्यम से खुले व

स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दी थी। जो प्रेमचंद को यथार्थपरक दृष्टि का ही एक मजबूत दृष्टांत माना जा सकता है।

भारतीय समाज के वर्ग-विभाजन का एक और कड़वा सच तब सामने आता है, जब लेखक लिखता है कि मुन्नी को हरिजनो के गांव में आश्रय मिलता है, जहां 'नीच' जाति के गरीब किसानों और खेत-मजदूरों में 'जाति-बंधन' नहीं है, मुन्नी वहां खुश है। लेकिन गांव में अमरकांत को देखकर उसके सोए हुए भाव फिर जाग पड़ते हैं। पति वियोग, बलात्कार, भीख मांगने और आत्महत्या तक की कोशिश कर चुकी मुन्नी फिर से जाग पड़ती है और इसका इजहार लेखक नृत्य और उमंग से कराता है। मुन्नी आत्मविभोर होकर नाचती है, अमरकांत भी मौजूद है, लेकिन मुन्नी के साथ नृत्य में एक अन्य युवक है—“युवक गठीला जवान है, चौड़ी छाती, उस पर सोने की मुहर, कछनी काछे हुए।” यहां एक ओर जहां हम जाति निम्न कहे जाने वाले वर्ग में हम समानता का भाव देखते हैं वही अमरकांत के चरित्र का एक कमजोर पक्ष भी सामने आता है कि वह मुन्नी को एक अन्य पुरुष के साथ नृत्य करते हुए देखकर मानसिक रूप से परेशान है, ईर्ष्यालु हो रहा है।

प्रेमचंद के पात्रों की संरचना के विषय में डॉ. रामदरश मिश्र का मत उल्लेखनीय है—“हिंदी में प्रेमचंद और उनकी परंपरा में आने वाले उपन्यासकारों ने अविस्मरणीय वर्गीय पात्र दिए हैं जो सामाजिक गुणों और दोषों से पूर्ण हैं जो चेतन से संचालित हैं, जो इच्छा शक्ति वाले हैं।” (रामदरश मिश्र—‘आधुनिक हिंदी उपन्यास, पृ. 6) 'कर्मभूमि' के लगभग सभी पात्र कहीं न कहीं इसी के इर्द-गिर्द घूमते नजर आते हैं।

साहित्य के संबंध में स्वयं प्रेमचंद ने एक बड़ी सुन्दर व्याख्या की है—“साहित्य उसी संरचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। और साहित्य में यह पूर्ण

रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाईयां और अनुभूतियां व्यक्त की गई हों।” (प्रेमचंद और उनका युग, पृ. 136) 'भाषा' और 'जीवन' की सच्चाई 'कर्मभूमि' का प्राणतत्व है, प्रेमचंद ने अपने संपूर्ण कथा-साहित्य में हिंदी और उर्दू दोनों की सामंती परंपराओं को तोड़ने का सार्थक प्रयास किया। प्रेमचंद हवाई सिद्धांतकारी नहीं थे, वो एक मिली-जुली भाषा-शैली ईजाद करने की कठिनाइयों से बखूबी वाकिफ थे। इसलिए उन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों में कुछ हेर-फेर के साथ लिखने की नीति अपनाई और बोलचाल की कौमी जवान हिंदुस्तानी का जबर्दस्त समर्थन किया। 'कर्मभूमि' की संपूर्ण भाषिक संरचना में इसकी अंग्रेजी भाषा की प्रभुता खलती थी। 'कर्मभूमि' की संपूर्ण भाषिक संरचना इसका जीता-जागता उदाहरण है। जहां भाषा 'हिंदुस्तानी' जरूर है, लेकिन पात्र, परिवेश और संदर्भों के हिसाब से यत्र-तत्र विभिन्न रूपों और आयामों में सहज ही अपना आकार ग्रहण करते हुए आगे बढ़ती रहती है। इसीलिए कथ्य के साथ ही भाषिक संरचना की दृष्टि से भी 'कर्मभूमि' बेजोड़ है। हां, उनकी चित्रात्मक शैली का एक सुंदर उदाहरण उद्धृत किया जा सकता है—“द्वारा एक परदे की दीवार में था। उस पर एक टाट का फटा पुराना परदा पड़ा हुआ था। द्वारा के अंदर कदम रखते ही आंगन था, जिसमें मुश्किल से दो खटोले पड़ सकते थे। सामने खपरैल का एक नीचा सायबान था और सायबान के पीछे एक कोठरी थी, जो इस वक्त अंधेरी पड़ी हुई थी। सायबान में एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और टीन और मिट्टी के दो-चार बरतन, एक घड़ा और एक मटका रखे हुए थे।” इस पूरे विवेचन के बाद हम कह सकते हैं कि अपने समय और समाज की तमाम सीवनों को उधेड़ता उघाड़ता हुआ और भविष्य के लिए वृहत्तर अपेक्षाओं और संभावनाओं से भरा उपन्यास है—'कर्मभूमि'।

एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती कॉलेज (सांध्य),
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

अनुवाद साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद का योगदान

डॉ. हरीश कुमार सेठी

डॉ. हरीश कुमार सेठी : कई पुस्तकों के लेखन के साथ-साथ लगभग बीस संपादित ग्रंथों में लेखक के रूप में सहयोग। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. हरीश कुमार सेठी ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी लेखन कार्य किया है।

महान साहित्यकार, विचारक, समाज सुधारक जैसे अनेक दायित्वों का वहन करने वाले कथा-सम्राट मुंशी प्रेमचंद बीसवीं शताब्दी के साहित्याकाश में सूर्य की भांति थे। साहित्य संसार और संस्कार में प्रेमचंद का गुरुत्व स्थान है। सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के विविध रूपों और व्यापक परिदृश्य को अभिव्यक्ति प्रदान करके अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने साहित्य को भारतीयता की सुगंध से सुवासित किया। उन्होंने उर्दू और हिंदी में अनेक उपन्यासों और कहानियों के रूप में कथा-साहित्य के अलावा नाटक और बाल साहित्य की रचना भी की। उनकी रचनाओं में हिंदी में 'विविध प्रसंग' (तीन भाग), 'चिट्ठी-पत्री' (दो भाग), 'कुछ विचार' (दो भाग) और 'साहित्य का उद्देश्य' के साथ-साथ उर्दू में 'प्रेमचंद के खतूत' लिखित विविध साहित्य भी शामिल है।

प्रेमचंद के साहित्य का फलक विस्तृत और विभिन्न आयामों को लिए हुए है। प्रेमचंद की युगीन संचेतना, जीवन-दर्शन, जीवन मूल्य, आदर्शवाद, यथार्थवादी दृष्टि, लोक तत्व, समीक्षादर्श, ग्राम जीवन, मनोविज्ञान, नारी विषयक दृष्टिकोण, मध्यम वर्ग आदि अनेकानेक पक्षों के आलोक में उनकी साहित्यिक उपलब्धियों का हिंदी आलोचना संसार में आकलन करते हुए काफी कुछ

लिखा जा चुका है। इन विभिन्न पक्षों-संदर्भों के बीच प्रेमचंद के 'स्पेक्ट्रम' का और अधिक सूक्ष्म आयाम से विवेचन की जरूरत है ताकि उनके साहित्य की अन्य प्रकाशमय किरणों को भी उभारा जा सके। ऐसा ही एक पक्ष है—अनुवाद, जिसके संदर्भ में प्रेमचंद समीक्षक विद्वानों ने बहुत कम विचार किया है। हालांकि आज स्थिति यह है कि प्रेमचंद के कृतित्व का विश्व की कमोबेश सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

अनुवाद के संदर्भ में प्रेमचंद का साहित्यिक व्यक्तित्व तीन आयाम लिए हुए नजर आता है—(1) 'साहित्यकार-अनुवादक प्रेमचंद' (वैसे तो यह 'साहित्यकार और अनुवादक' का द्योतक है किंतु यहां इसका अर्थ वह साहित्यकार प्रेमचंद जो अपनी रचनाओं के स्वयं अनुवादक भी हैं), (2) 'अनुवादक प्रेमचंद' (यहां इसका अर्थ अन्य साहित्यकारों आदि की रचनाओं का अनुवाद करने वाला प्रेमचंद); और (3) अपने समीक्षण-कर्म आदि लेखन के जरिए अनुवाद विषयक चिंतन करने वाले 'अनुवाद-चिंतक प्रेमचंद' का।

(1) 'साहित्यकार-अनुवादक प्रेमचंद'—श्रेष्ठ कथाकार होने के साथ-साथ प्रेमचंद प्रतिष्ठित अनुवादक भी थे। उन्होंने उर्दू-हिंदी, हिंदी-उर्दू और अंग्रेजी-उर्दू/हिंदी में अनुवाद भी किए। उन्होंने दूसरों के द्वारा लिखित रचनाओं के अनुवाद तो किए ही, साथ ही अपनी रचनाओं के अनुवाद भी किए। चूंकि प्रेमचंद उर्दू से हिंदी में लेखन की ओर उन्मुख हुए थे, इस कारण उन्होंने अपनी रचनाओं के उर्दू से हिंदी अनुवाद भी किए। उर्दू में लिखित अपने दूसरे

उपन्यास 'हमखुर्मा-ओ-हमसबाब' का प्रेमचंद ने 'प्रेमा' नाम से हिंदी अनुवाद किया। इसी प्रकार, प्रेमचंद ने उर्दू में 'जलवा-ए-ईसार', 'बाजार-ए-हुस्न', 'गोशा-ए-आफियत', 'चौगाने-हस्ती' आदि उपन्यास लिखे और उनके क्रमशः 'वरदान', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' शीर्षकों से हिंदी अनुवाद किए। इसके अलावा, प्रेमचंद ने हिंदी में 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' लिखे जिनके उर्दू अनुवाद क्रमशः 'पर्दा-ए-मजाज़', 'निरमला', 'गबन', 'मैदान-ए-अमल' और 'गऊदान' शीर्षक से हैं।

उर्दू और हिंदी में सैकड़ों कहानियों के रचयिता प्रेमचंद ने अपनी अनेक कहानियों के उर्दू-हिंदी-उर्दू अनुवाद भी किए। उन्होंने एक बार मौलाना मुहम्मद आकिल से कहा था—“कभी मैं उर्दू में पहले लिखता हूँ और उसका हिंदी में अनुवाद करता हूँ और कभी हिंदी में लिखता हूँ और बाद में उसका उर्दू में अनुवाद करता हूँ।”¹ इनमें से कितनी कहानियों का हिंदी में और कितनी का उर्दू में अनुवाद हुआ—गहन शोध का विषय है।

प्रेमचंद के हिंदी और उर्दू कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने पर अनुवाद की समरूपता को विशेष तौर पर रेखांकित किया जा सकता है। दोनों भाषाओं में रचित कथा साहित्य में कथानक समान होने के बावजूद, अंतर भी नजर आता है। किसी एक भाषा संस्करण में कथानक का विस्तार है तो किसी में संकुचन। उदाहरण के लिए 'ज़माना' के दिसंबर 1917 के अंक में उर्दू में प्रकाशित

‘कप्तान साहब’ कहानी का प्रारंभिक वाक्य “जगत सिंह को किताबों से नफरत थी।” जिसे ‘कप्तान’ शीर्षक हिंदी संस्करण में इस प्रकार विस्तार देते हुए लिखा गया—“जगत सिंह का स्कूल जाना कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था।” वहीं, दूसरी ओर, उर्दू में लिखी कहानी ‘जन्नत की देवी’ और उसके हिंदी संस्करण ‘स्वर्ग की देवी’ का भी उल्लेख किया जा सकता है। उर्दू की तुलना में हिंदी कहानी में अधिक विस्तार है, लेकिन उर्दू मूल में कुछ ऐसे अंश भी हैं जो हिंदी में नहीं हैं। वैसे इसके हिंदी अनुवाद में बड़ी असावधानी बरती गई है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित अंश देखिए—

“उनके सर पर राग-रंग का भूत सवार है। इधर मैं गई, उधर यह घर मिट्टी में मिला। मुफ्तखोरे पीछे पड़े ही हुए हैं। दो-चार महीने में वारा-नियारा हो जाएगा।’ (जन्नत की देवी)

××× ××× ×××

“उन पर विषय का भूत सवार हो गया। मैं क्या करूं। अगर मैं चली जाती हूं तो थोड़े ही दिनों में सारा घर मिट्टी में मिल जाएगा। और उनका वही हाल होगा जो स्वार्थी मित्रों के चंगुल में फंसे हुए नव-जवान रईसों का होता है। कोई कुलटा घर आ जाएगी और उनका सर्वनाश कर देगी।’ (स्वर्ग की देवी)

प्रेमचंद ने उर्दू में ‘बाजार-ए-हुस्न’ की रचना पहले की और फिर ‘सेवासदन’ नाम से हिंदी अनुवाद बाद में। किंतु इसका उर्दू में प्रकाशन बाद में हुआ था। डॉ. जाफर रजा ने दोनों संस्करणों के तुलनात्मक अध्ययन करते हुए अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण ‘सेवासदन’ को मौलिक उपन्यास के रूप में मान्यता पर चिंतन करने के बाद इसे अनुवाद मात्र ही सिद्ध किया है। उन्होंने² लिखा है कि—

(1) प्रेमचंद के उर्दू से अनूदित अन्य उपन्यासों के विपरीत ‘सेवासदन’ में अनेक स्थानों पर अनुवाद में मूल से अधिक प्रवाह, बल एवं स्वाभाविकता

है तथा उसमें मौलिक रचना का-सा रस मिलता है।

(2) उर्दू मूल को हिंदी रूप देने में अनेक स्थानों पर विस्तार कर दिया गया है जिससे यद्यपि रचना की मौलिक वृत्ति को हानि पहुंची है किंतु अनुवाद में मूल से अधिक रचना-शक्ति प्रतीत होती है, जैसे—

“रात हो रही थी, चूल्हे की सूरत देखकर सुमन की रूह कांप रही थी, पर तौअन-करहन उठी।”³

“रात हो रही थी, सुमन का चूल्हे के सामने जाने को जी न चाहता था। बदन में यूं ही आग लगी हुई है। आंच कैसे सही जाएगी। पर सोच-विचार कर उठी।”⁴

(3) अनेक स्थानों पर अनुवाद हास्यास्पद हो गया है, उदाहरणार्थ उर्दू में एक स्थान पर महंतजी के भ्रष्ट कारोबार को व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित किया गया है, जिसे हिंदी में ‘श्री बांके बिहारीजी’⁵ की कृपा बताने से व्यंग्य प्रभाव कम हो गया है।

लेकिन प्रेमचंद के अनुवादों से यह पता चलता है कि वे अपनी रचनाओं का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद मात्र नहीं करते थे—उसका अनुसृजन/पुनःसृजन करके उसे मौलिक-सा बना देते थे। अनूदित संस्करणों के शीर्षक तक इसी अनुसृजन का प्रमाण हैं। जैसे, ‘हमखुर्मा-ओ-हमसबाब’ का ‘प्रेमा’, ‘जलवा-ए-ईसार’ का ‘वरदान’, ‘बाजार-ए-हुस्न’ का ‘सेवासदन’, ‘गोशा-ए-आफियत’, ‘प्रेमाश्रम’ और ‘चौगाने-हस्ती’ का ‘रंगभूमि’ आदि। उनके द्वारा अपनी रचनाओं के अनुवाद के आलोक में यही कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ‘सृजनात्मक अनुवादक’ थे।

सृजनात्मक अनुवादक प्रेमचंद : अनुवाद-कर्म पर कतिपय आक्षेप—सृजनात्मक अनुवादक प्रेमचंद के अनुवाद-कर्म पर कतिपय आक्षेप भी लगाए जाते हैं जैसे—प्रेमचंद के अनुवादों के संबंध में यह कहा जाता है कि वे कभी-

कभी अपने अनुवादों में या तो दूसरों से मदद लेते थे या फिर उनसे करवाकर खुद संशोधन-परिवर्धन के पश्चात छपने के लिए भेज दिया करते थे। बनारसी दासजी को एक बार लिखा निम्नलिखित पत्र इसी बात की पुष्टि करता प्रतीत होता है—“यह एक छोटा सा ड्रामा बर्नार्ड शॉ की एक रचना का अनुवाद है। इसे बड़े परिश्रम से कराया है। रचना कितनी उच्च कोटि की है, पढ़ने से ही ज्ञात होगा। किसी नाम की बहुत जरूरत ही हो तो धनपतराय दे दें। हां, पारिश्रमिक वही दें जो आप अच्छे अनुवादक को दे सकें।”⁶ इस पत्र में प्रयुक्त ‘कराया’ शब्द विशेष ध्यानाकर्षण की मांग करता है क्योंकि अगर प्रेमचंद ने स्वयं अनुवाद किया होता तो इस शब्द का प्रयोग नहीं करते। इसी प्रकार का संकेत एक अन्य पत्र⁷ में भी मिलता है।

इस प्रकार के कतिपय साक्ष्यों के कारण प्रो. जाफर रजा जैसे समीक्षकों ने ‘कथाकार प्रेमचंद’ पुस्तक में प्रेमचंद की ‘रचनाओं का लिप्यांतर या अनुवाद’ पर विचार करते हुए यह विस्तृत टिप्पणी की है कि ‘संभव है कि कुछ रचनाओं के अनुवाद स्वयं प्रेमचंद ने हिंदी में भी किए हों, किंतु उनकी बढ़ी हुई व्यस्तता को दृष्टि में रखने पर यह मानना अधिक स्वाभाविक लगता है कि उनकी रचनाओं के अनुवाद दूसरों ने ही किए होंगे। कुछेक रचनाएं, जो हिंदी में पहले प्रकाशित होने के कारण हिंदी रचनाएं समझी जाती रही हैं, उनके विषय में भी संभव है कि जिस प्रकार अनेक उपन्यास उर्दू रचना होने के बावजूद हिंदी में उर्दू के पूर्व प्रकाशित हुए। ये रचनाएं भी उर्दू में लिखी जाने के बावजूद पहली बार हिंदी में प्रकाशित हुई हों। कहानियों के विषय में यह बात और भी विश्वास से कही जा सकती है क्योंकि हिंदी पत्र-पत्रिकाएं प्रेमचंद की कहानियों के लिए निरंतर अनुरोध करती रहती थीं, जो उन्हें उचित पारिश्रमिक भी अदा करती थीं। प्रेमचंद आर्थिक संकटों के कारण अपनी अधिक से अधिक कहानियां हिंदी में प्रकाशित करना चाहते थे, ताकि उनको अधिक से अधिक कहानियों का अधिक से

अधिक पारिश्रमिक मिल सके। संभव है कि इस भाग-दौड़ में प्रेमचंद ने यह रास्ता निकाला हो कि अपनी सुविधा के आधार पर कहानियां उर्दू में लिख लेते रहे हों, जिनको बाद में हिंदी में रूपांतरित कर दिया जाता हो।⁸ मदन गोपाल ने भी इसी प्रकार की संभावना व्यक्त की है।⁹

कतिपय समीक्षकों-आलोचकों ने यह भी इल्जाम लगाया है कि प्रेमचंद ने अंग्रेजी उपन्यासकारों की सामान्य मनोवृत्तियों को तो ग्रहण किया ही, इसके साथ-साथ वे कुछेक विशिष्ट उपन्यासों से भी प्रभावित हुए। इस प्रभाव को 'नकल' का नाम दिया जाता है। इस प्रकार का इल्जाम लगाने वाले आलोचकों में पंडित अवधनारायण उपाध्याय भी शामिल थे जैसे—उन्होंने 'कायाकल्प' उपन्यास को हालकेन की 'इटर्नल सिटी' की नकल बताया और 'रंगभूमि' को थैकरे के 'वैनिटी फेयर' की।¹⁰ इसी प्रकार, महामुनि सिंह ने लिखा है कि प्रेमचंद के "कुछ उपन्यासों में कतिपय पाश्चात्य उपन्यासों की छाया निश्चित रूप से दिखाई देती है। विशेषतः 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प', 'रंगभूमि' और 'गोदान' के संबंध में यह बात कही जा सकती है। 'रंगभूमि' 'वैनिटी फेयर' (थैकरे) से प्रभावित है। 'प्रेमाश्रम' पर 'रिजरेक्सन' (तॉलस्टॉय) का प्रभाव है। 'कायाकल्प' हालकेन के 'एटर्नलसिटी' से अनुप्रेरित है। 'गोदान' 'वार एंड पीस' (टालस्टाय) की भांति 'एपिक नावेल' की श्रेणी में आता है।¹¹ प्रेमचंद के सुपुत्र अमृतराय ने 'प्रेमचंद: कलम का सिपाही' में भी इस प्रकार के आक्षेपों का उल्लेख किया है।¹² वैसे, प्रेमचंद ने यह स्वीकार किया कि उन्होंने 1903 में विलियम मैकपीस थैकरे के 'वैनिटी फेयर' (रचना वर्ष 1848) उपन्यास को पढ़ा था, जबकि 'रंगभूमि' की रचना 1924 में हुई। उन्होंने 'साहित्य का उद्देश्य' में लिखा है कि 'रंगभूमि का बीजांकुर हमें एक अंधे से मिला जो हमारे गांव में रहता था।'¹³

डॉ. श्रीनिवास पांडेय ने 'प्रेमचंद की साहित्यिक दृष्टि और रंगभूमि' शीर्षक आलेख में गंभीर चिंतन-विवेचन करते हुए यह सिद्ध किया है कि "रंगभूमि उपन्यास सन् 1925 के आसपास की भारतीय राजनीति एवं सामाजिक घटनाओं के विविध पक्षों को प्रस्तुत करता है। इसका आयाम इतना अधिक विस्तृत एवं व्यापक है कि उसमें समग्र भारतीय जनमानस (बृहत्तर मानव समुदाय) बिंबित हो उठा है।... इसे थैकरे के 'वैनिटी फेयर' का अनुवाद मात्र कहना सरासर गलत है। यह उपन्यास सर्वथा मौलिक एवं उत्तम है। यह मूलतः भारतीय जीवन धारा एवं चिंतन पद्धति की देन है, किसी विदेशी कृति की नकल अथवा अनुवाद मात्र नहीं है।"¹⁴

उपन्यासों की भांति कतिपय कहानियों पर भी नकल जैसे आक्षेप लगाए जाते रहे हैं। उदाहरण के लिए, बाबू ब्रजरत्नदास जैसे आलोचकों ने प्रेमचंद की कहानी के कथानक को थॉमस हार्डी से लेने का जिक्र किया है। प्रेमचंद ने कथानक की समानता को 'विविध प्रसंग' में स्वीकार किया, किंतु उसका उन्होंने बड़ी निपुणता से मुंहतोड़ जवाब भी दिया है।¹⁵ शिलीमुखी ने भी प्रेमचंद की 'विश्वास' कहानी को हालकेन की 'इटर्नल सिटी' की नकल सिद्ध किया। प्रेमचंद ने इसका उत्तर दिया, जो शिलीमुख के लेख के अंत में प्रकाशित हुआ—“इटर्नल सिटी’ प्रसिद्ध पुस्तक है। हिंदी में उसका अनुवाद हो चुका है। अनुवाद हो चुकने के बाद मैंने कहानी लिखी है। श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल ने ही मुझसे इस पुस्तक की प्रशंसा की थी। अपना अनुवाद भी सुनाया था। उन्हीं से पुस्तक मांगकर मैं लाया था। ऐसी दशा में मोटी बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है कि मैं विज्ञ संसार को धोखा देना नहीं चाहता था। जिस हद तक मैं ऋणी हूं, उस हद तक मैं लिख चुका। कौन ऐसा आदमी होगा, जो हिंदी में छपी हुई किताब से मिलती-जुलती कहानी लिखे और यह समझे कि वह मौलिक समझी जाएगी। फिर भी मेरी कहानी में बहुत कुछ अंश मेरा है, चाहे वह रेशम में टाट का जोड़ ही क्यों न हो।”¹⁶

वास्तविकता यह है कि कोई भी संवेदनशील साहित्यकार जहां भी मानवता पर अन्याय, अनाचार-अत्याचार, हिंसा देखता है, वह वहीं मर्माहत हो जाता है और वह 'स्व' की दुनिया से बाहर निकलकर भावनात्मक स्तर पर 'पर' से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। फिर चाहे वह देशी लेखक हो या विदेशी, हिंदी भाषा का लेखक हो या फिर पंजाबी, मराठी, गुजराती, बांग्ला, तमिल आदि का। अगर भावनात्मक स्तर पर ऐसा तादात्म्य न हुआ होता तो आदिकवि वाल्मीकि क्रौंच वध देखकर उद्वेलित-आहत न होते और उनके मुख से यह कविता न फूट पड़ती कि "वधिक! न पाए कभी प्रतिष्ठा और न पाएगा तू प्यार।/प्रेमलीन क्रौंचों के जोड़े में से दिया एक मार।"—

“मा निषाद प्रतिष्ठाम् त्वम् गमः शाश्वती समा।
यत्क्रौंचमिथुनात् एकमवधी काममोहितम्।”

स्वाभाविक है कि वाल्मीकि ने उक्त श्लोक की रचना (या सृजन) करके जो कर्म किया है उससे उनकी न ही कोई भौतिक आवश्यकता की पूर्ति हुई और न ही उस सृजन से वाल्मीकि की कोई स्वार्थ-सिद्धि हुई। वस्तुतः उनकी चेतना और मन उदार एवं मानवीय बना और कविता एक साधन सिद्ध हुई, जिसकी परिणति 'रामायण' के रूप में नजर आती है। उनके बाद राम-कथा के आधार पर देश की विभिन्न भाषाओं में कई रामायण रचे गए। क्या वे सभी नकल मात्र ही हैं? वास्तव में किसी भी साहित्यकार द्वारा किसी भी मनोवृत्ति को ग्रहण करने या रचना से प्रभावित होने, सामान्य मानवीय तत्वों के कारण मर्माहत होने के कारण विषय-वस्तु आदि के स्तर पर उसकी रचना में दूसरे का प्रभाव नजर आ सकता है। इसी आधार पर ही कहानियों आदि की विषय-वस्तु और थीम एक-दूसरे साहित्यकार की कहानियों आदि से मेल खा जाएं। लेकिन, इसके बावजूद, यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक साहित्यकार की अपनी निजी विशिष्टता भी होती है जो

उसे दूसरे साहित्यकारों से अलग और विशिष्ट दर्जा प्रदान करती है।

(2) 'अनुवादक प्रेमचंद'—प्रेमचंद विभिन्न साहित्यिक व्यक्तित्वों और आंदोलनों आदि से अनुप्राणित हुए। वे रवींद्रनाथ टैगोर, बंकिमचंद्र चटर्जी, लियो तॉलस्तॉय, रतननाथ सरशार, रोमा रोलां, महात्मा गांधी, मैक्सिम गोर्की, कार्ल मार्क्स आदि से प्रभावित थे। इसके अलावा, वे रूसी क्रांति और आर्य समाज के साथ-साथ निष्काम कर्मयोग आदि भारतीय नैतिक सिद्धांतों से भी प्रभावित थे। किंतु, इन सबके बावजूद वे निरंतर प्रगतिशील रहे और उन्होंने अपना मौलिक मार्ग चुना। पुस्तकें पढ़ने के शौकीन प्रेमचंद ने न केवल अपनी रचनाओं का एक भाषा से दूसरी भाषा में ही अनुवाद किया, बल्कि अन्य साहित्यिक व्यक्तित्वों की रचनाओं के भी हिंदी या उर्दू अनुवाद किए।

प्रेमचंद ने सन् 1923 में अनातोले फ्रांस कृत 'थायस' का 'अहंकार' शीर्षक से हिंदी अनुवाद किया। इसी वर्ष ही उन्होंने जॉर्ज इलियट कृत सायलस मैरीनर का 'सुखदास' शीर्षक से हिंदी अनुवाद भी किया। उन्होंने रतननाथ सरशार के बृहद् ग्रंथ 'फिशन-ए-आज़ाद' का दो भागों में 'आज़ाद कथा' नाम से अनुवाद किया। प्रेमचंद ने गॉल्सवर्दी के 'जस्टिस' का 'न्याय' शीर्षक से, 'सिल्वर बॉक्स' का 'चांदी की डिब्बिया' शीर्षक से और 'स्ट्राइक' का 'हड़ताल' शीर्षक से अनुवाद भी किया। ये तीनों अनुवाद हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हुए। इनके अनुवाद में प्रेमचंद को बार-बार कोश देखने और इसी प्रकार की अन्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा था। अपने पत्रों में उन्होंने इसका जिक्र किया है। जैसे, 28 फरवरी 1929 के पत्र में उन्होंने लिखा—“हां, 'जस्टिस' मैंने शुरू कर दिया। 16-17 सफ़हात कर भी डाले। अभी उसका हिंदी का तर्जुमा तो आया नहीं। इसलिए वह सब मुश्किलात, जो पहले डिक्शनरियों या मशविरों से हल की थीं, फिर आ रही हैं। इसलिए जब तक हिंदी तर्जुमा न

आ जावे, उस वक़्त तक के फिर मुलतवी करता हूं।”¹⁷

आचार्य नरेंद्रदेव के सुझाव पर प्रेमचंद ने पं. जवाहरलाल नेहरू की प्रसिद्ध पुस्तक 'लेटर्स फ्रॉम ए फादर टू हिज़ डॉटर' का 'पिता का पत्र पुत्री के नाम' से हिंदी अनुवाद भी किया। उन्होंने मैटरलिक के 'साइटलैस का 'शबेतार' नाम से उर्दू अनुवाद किया, जो 'जमाना' में धारावाहिक रूप में छपा। बाद में यह हंस प्रकाशन से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ। स्वामी विवेकानंद की एक पुस्तक का उर्दू रूपांतर 'रहनुमायने हिंद' शीर्षक से धारावाहिक रूप में छपा। प्रेमचंद ने जॉर्ज बर्नार्ड शॉ कृत 'बैक टू मैथ्यूसेला' का 'सृष्टि का आरंभ' नाम से संक्षिप्त हिंदी अनुवाद किया, जिसे उनके निधन के पश्चात श्रीपत राय ने प्रकाशित किया। इसके अलावा, उन्होंने ऑस्कर वाइल्ड के 'घोस्ट ऑफ कैटरविल्स' का अनुवाद भी किया, जो अप्रकाशित है। उन्होंने हिंदुस्तानी एकेडमी के लिए रायबहादुर महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा दिए गए व्याख्यान (जिसका शीर्षक था—'इंडियन कल्चर इयूरिंग दि मिडिल एजेंस') का अनुवाद भी किया।

प्रेमचंद ने अनेक कहानियों के अनुवाद भी किए। अपनी साहित्य सेवा के शुरुआती दौर में उन्होंने तॉलस्तॉय की कुछ कहानियों के हिंदी अनुवाद किए, जो बाद में आगे चलकर सन् 1923 में 'प्रेम-प्रभाकर' नाम से प्रकाशित हुईं। रवींद्रनाथ टैगोर की कुछ कहानियों का सन् 1907 में 'रूठी रानी' नामक हिंदी अनुवाद से उर्दू में किया जो 'जमाना' पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। प्रेमचंद ने अपना आत्म-कथ्य प्रस्तुत करने वाले एक छोटे से लेख 'जीवन-सार' में कुछेक कहानियों के अनुवाद के बारे में लिखा है। अपनी आरंभिक कहानियों के अनुवाद के विषय में उनका स्वयं यह कहना है कि “पहले-पहल 1907 ई. में मैंने कहानियां लिखना प्रारंभ किया। डॉ. रवींद्रनाथ की कहानियां मैंने

अंग्रेजी में पढ़ी थीं, उनमें से कुछ का अनुवाद किया। मेरी पहली कहानी का नाम था, 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', वह 1907 ई. में मासिक 'जमाना' में प्रकाशित हुई।”¹⁸

उन्होंने चार्ल्स डिंकेंस की 'स्टोरी ऑफ रिचर्ड डबलडिक' का 'अशके नदामत' नाम से उर्दू अनुवाद किया। एक अन्य कहानी का शीर्षक था—'आबेहयात'। 'अदीब' पत्रिका में प्रकाशित 'सिगे लली' भी अनुवाद ही थी। वस्तुतः 'अदीब' में प्रेमचंद के अनुवाद निरंतर छपते रहते थे।

(3) 'अनुवाद-चिंतक प्रेमचंद'—प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के स्वयं अनुवाद किए तथा अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक व्यक्तित्वों की रचनाओं के भी अनुवाद किए। इसके अलावा, उन्होंने अनुवाद के संबंध में अपने कतिपय विचार भी व्यक्त किए हैं, जो उन्हें अनुवाद-चिंतक सिद्ध करते हैं। हालांकि यह सही है कि प्रेमचंद आज के संदर्भ में अलेक्जेंडर फ्रेज़र टिटलर, यूजीन ए. नाइडा, जे.सी. कैटफर्ड, वाल्टर बेंजामिन, एज़रा पाउंड, ब्लादीमीर नोबाकोव, सूसन बेसनेट, आंद्रे लेफेवेयर और लॉरेंस वेनुटी जैसे पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांत चिंतक या फिर आर. रघुनाथ राव, प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. नगेंद्र, डॉ. पूरनचंद टंडन, प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी, डॉ. गार्गी गुप्त, डॉ. भोलानाथ तिवारी आदि भारतीय अनुवाद सिद्धांत चिंतकों की तरह के अनुवाद चिंतक नहीं हैं। किंतु, इतना तो अवश्य ही है कि प्रेमचंद के अनुवाद संबंधी विचार विभिन्न पत्रों और अनूदित रचनाओं की समीक्षाओं आदि के संदर्भ में देखे जा सकते हैं। प्रेमचंद की कई समीक्षाएं आलेखों से भी बड़ी हैं। उदाहरण के लिए, कालिदास के 'ऋतुसंहार' का श्री शकीर की सहायता से सुरूर द्वारा किए गए उर्दू अनुवाद की समीक्षा 'कालिदास की कविता' विशेष तौर पर उल्लेख किया जा सकता है।

प्रेमचंद का अनुवाद के संदर्भ में व्यावहारिक दृष्टिकोण था। प्रेमचंद अनुवाद के महत्त्व से भली-भांति परिचित थे। उन्हें यह स्पष्ट

आभास था कि अनुवाद विभिन्न देशों, समाजों, समुदायों, संस्कृतियों और साहित्यों के बीच सेतु का काम करता है। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश के संदर्भ में तो उन्हें अनुवाद की महत्ता का स्पष्ट बोध तो था किंतु उन्होंने मौलिक सृजन की तुलना में इसे अत्यधिक महत्त्व नहीं दिया। प्रेमचंद ने अपने लेखन में उन्होंने 'अनुवाद', 'तर्जुमा' और 'टीका' शब्द को पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया।

प्रेमचंद ने हिंदी भाषा को समृद्ध एवं संपन्न करने में अनुवाद को एक साधन के रूप में स्वीकार किया। इसका अर्थ यह है कि देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं से हिंदी में अनुवाद हो ताकि इसमें ज्ञान-विज्ञान आए और इसका विकास हो। प्रेमचंद और उनका युग, उन साहित्यकारों का था जो अनुवाद को इसी दृष्टि से देख रहे थे। उनके पूर्ववर्ती साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान' में सन् 1877 में ही यह कह दिया था कि—

“बिबिध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु भाषा माहिं प्रचार।।”

××× ××× ×××

“सब विद्या की कहूं होइ जु पै अनुवाद।”
“निज भाषा महं तो सबै याको लहै संवाद।।”

हिंदी का परिष्कार-संस्कार करने वाले तदुद्योगी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में कमोबेश समस्त भारतीय भाषाओं और विशेष तौर पर हिंदी का उत्थान करने के संदर्भ में 'ग्रंथकारों से निवेदन' के रूप में अनुवादकों से यह आग्रह किया था कि—

“इंगलिश का ग्रंथ-समूह बहुत भारी है,
अति विस्मृति जलधि समान देहधारी है।
संस्कृत भी इसके लिए सौख्यकारी है,
उसका भी ज्ञानागार हृदयकारी है।
इन दोनों में से अर्थरत्न ले लीजै,
हिंदी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै।”

हिंदी की समृद्धि में अनुवाद को साधन बनाने की प्रेमचंद की दृष्टि केवल भारतीय भाषाओं तक ही सीमित-संकुचित नहीं थी। उन्होंने 'साहित्य की प्रगति' शीर्षक अपने निबंध में उर्दू के रतननाथ सरशाह, बांग्ला के शरतचंद्र जैसे भारतीय साहित्यकारों के साथ-साथ मैक्सिम गोर्की, अनातोल फ्रांस, रोमा रोलां और एच.जी. वेल्स जैसे यूरोपीय लेखकों की रचनाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य की रुचि में बदलाव को स्वीकार किया। उनका विचार था कि यह रुचि-परिष्कार अनुवाद के जरिए ही संभव है। इस रुचि-परिष्कार के साथ-साथ अनुवाद साहित्यिक आदान-प्रदान का सशक्त माध्यम भी बन जाता है। वैसे, प्रेमचंद ने अनुवाद को केवल माध्यम ही माना और मौलिक सृजन को अधिक महत्त्व दिया क्योंकि केवल अनुवाद से ही भाषा नहीं बनती—इसके लिए मौलिक सृजन भी जरूरी है।

प्रेमचंद ने अनुवाद को सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सशक्त साधन स्वीकार किया है। अगर यह आदान-प्रदान सार्थक तरीके से हो तो सांप्रदायिकता जैसी समस्या ही न रहे। सांस्कृतिक एकता के सूत्रों की तलाश करते हुए प्रेमचंद ने अनुवाद को इस आदान-प्रदान के लिए आवश्यक समझा। इसके लिए उन्होंने आज से एक शताब्दी-पूर्व ही 'जमाना' में सन् 1908 में यह लिख दिया था कि “मगर यह अभियोग कुछ मुसलमानों के ही सर नहीं है कि उन्होंने हिंदी ज्ञान विज्ञान और साहित्य से लाभ नहीं उठाया। हिंदुओं पर भी यही इल्जाम पूरी तरह से लागू होता है। मुसलमानों के जमाने में तो खैर, संस्कृत की धार्मिक और साहित्यिक पुस्तकों के अनुवाद भी हुए मगर हिंदुओं ने तो शायद फारसी और अरबी साहित्य की किसी एक कृति को भी भाषा या संस्कृत का जामा नहीं पहनाया।... इस तरह दोनों कौमों सदियों से एक जगह रहने के बावजूद एक-दूसरे के ज्ञान-विज्ञान और साहित्यों से अपरिचित हैं।”¹⁹

प्रेमचंद किसी भी कविता का काव्य-रूप में ही

अनुवाद के पक्षधर थे। शीर्षकों के अनुवाद के संदर्भ में भी उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं था। उन्होंने अपनी उर्दू रचनाओं के हिंदी में जहां 'कर्मभूमि' का उर्दू शब्दानुवाद 'मैदान-ए-अमल' किया, वहीं भाव को ग्रहण करते हुए 'हमखुर्मा-ओ-हमसबाब' का 'प्रेमा', 'बाजार-ए-हुस्न' का 'सेवासदन' और 'गोशा-ए-आफियत' का 'प्रेमाश्रम' शीर्षक रखा।

अनुवाद सिद्धांत चिंतन में 'पारिभाषिक शब्दावली' एक प्रमुख विषय है, खास तौर पर उन देशों-समाजों के लिए जो अन्य देशों-समाजों के ज्ञान-विज्ञान को अपनाते हैं और अपनी भाषा में लाते हैं। ऐसे गृहीता देशों-समाजों को पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए नियोजित ढंग से विकास प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। किसी भी प्रकार के ज्ञानात्मक साहित्य में पारिभाषिक शब्दों की अनिवार्य उपस्थिति देखी जा सकती है। विशिष्ट अर्थ का संवहन करने वाले ये शब्द स्वयं में असामान्य तथा परिभाष्य होते हैं। विषय-विशेष में इनका विशिष्ट और सूक्ष्म-रूढ़ अर्थ होता है। इनके प्रयोग से भाषा में तकनीकी शैली का विकास होता है। इनके निर्माण के संदर्भ में अन्य भाषा के पारिभाषिक शब्द को यथावत ग्रहण करने, अनुकूलित करने, उनके स्थान पर नए शब्द गढ़ने या फिर उनके अनुवाद को आधार बनाया जाता है। वैसे, इतना तो अवश्य ही है कि पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में एकरूपता से शब्दावली का मानकीकरण संभव हो पाता है। इसलिए कोशिश तो यही होनी चाहिए कि प्रत्येक पारिभाषिक शब्द के लिए केवल एक ही तकनीकी शब्द निर्धारित किया जाए ताकि भाषा में मानकता स्थापित हो। आज सरकारी स्तर पर इस प्रकार की शब्दावली निर्माण का कार्य सन् 1961 में स्थापित 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' को सौंपा हुआ है, किंतु प्रेमचंद ने तो आयोग की स्थापना से दशकों पूर्व ही पारिभाषिक शब्दावली के विभिन्न आयामों पर गंभीर मंथन कर लिया था। इसीलिए उन्होंने पारिभाषिक शब्दावली

के बारे में भी अपने विचार स्पष्ट रूप से रखे। उनका यह मानना रहा कि “जरूरत तो यह है कि एक ही शब्द लिया जाए, चाहे वह संस्कृत से लिया जाए या फारसी से, या दोनों को मिलाकर कोई नया शब्द गढ़ लिया जाए।”²⁰

आजकल अनुवाद चिंतन में विदेशी रचनाओं के ‘विदेशीपन’ बने रहने की बात भी की जाती है, जबकि कतिपय विद्वानों का यह मत रहा है कि अच्छा अनुवाद वही है जो अनुवाद न लगे। इसका अर्थ यह है कि अनूदित पाठ में स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पाठ के बीच कोई अंतर न हो। लॉरेंस वेनुटी जैसे आज के अनुवाद-चिंतक जब ‘विदेशीकरण’ की बात करते हैं तो इसका अर्थ यह है कि विदेशी रचनाओं का विदेशीपन बना रहे। यहां हमें यह स्वीकार करना होगा कि वेनुटी जैसे विचारकों से दशकों पूर्व ही प्रेमचंद अनूदित पाठ में ‘विदेशीपन’ जैसी धारणा के पक्ष में विचार व्यक्त कर चुके थे।

प्रेमचंद अनुवाद में विदेशीकरण के पक्षधर थे। इस संदर्भ में प्रेमचंद द्वारा की गई ‘पेरिस का कुबड़ा’ शीर्षक अनूदित रचना की समीक्षा का उल्लेख किया जा सकता है। यह अनुवाद समीक्षा विक्टर ह्यूगो के ‘नोत्र दोम’ उपन्यास के अंग्रेजी से दुर्गादत्त सिंह द्वारा हिंदी में किए गए अनुवाद से संबंधित थी। मूल शीर्षक के आधार पर हिंदी अनुवाद ‘नोत्र दाम का कुबड़ा’ होना चाहिए था, किंतु अनुवादक ने इसके स्थान पर ‘पेरिस का कुबड़ा’ किया, जोकि हिंदीभाषी पाठक वर्ग को अधिक बोधगम्य है। किंतु अनुवादक ने फ्रांसीसी जगहों के नामों के स्थान पर भारतीय अथवा हिंदी नाम नहीं रखे थे।

प्रेमचंद को यह देखकर खुशी हुई कि अनुवादक दुर्गादत्त सिंह ने फ्रांसीसी जगहों के नामों के स्थान पर भारतीय अथवा हिंदी नाम नहीं रखे थे। इस संदर्भ में प्रेमचंद ने लिखा—“हमें यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ, कि यहां नामों और स्थानों को ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। भारतीय बनाने का प्रयास नहीं किया गया है। इस तरह का प्रयास जब कभी

किया गया है, असफल हुआ है। केवल नाम बदल देने से देशीयता या जातीयता नहीं बदल जाती। उसकी जड़ें इससे ज्यादा गहरी होती हैं। फिर हरेक वस्तु को भारतीय बनाने का प्रयास ही क्यों किया जाए। इसका अर्थ तो यही होता है, कि भारतीय पाठकों को संसार की और किसी जाति की कथाओं में कोई आनंद ही नहीं आता। हम इतने संकीर्ण बुद्धि हैं, कि हमारा ऐसा अनुमान नहीं। हम विदेशी फिल्मों को कितने चाव से देखते हैं। यहां तक कि शिक्षित समाज तो देशी फिल्मों के नाम से ही चिढ़ता है।... हम उस अनुवाद-शैली को रोकना चाहते हैं, जो हरेक मास्टरपीस को भारतीय बनाने के प्रयास में सारहीन बना देती है।”²¹

स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने अनुवाद में निरर्थक देशीकरण को स्वीकार नहीं किया। इस संदर्भ में प्रो. अवधेश कुमार सिंह की मूल्यांकनपरक टिप्पणी विशेष तौर पर उल्लेखनीय है कि “प्रेमचंद विदेशी तत्वों को अनुवाद में भी बनाए रखने के पक्षधर थे ताकि अनूदित पाठ में स्रोत पाठ का सांस्कृतिक वैशिष्ट्य बना रहे।”²² वस्तुतः इस प्रकार की समीक्षा करके प्रेमचंद ने हिंदी में अनुवाद-समालोचना की संस्कृति के विकास में दशकों पूर्व ही अपना अतुलनीय योगदान दे दिया था।

वस्तुस्थिति यह रही है कि प्रेमचंद ने ‘अनुवाद-समीक्षा/समालोचना’ को सही मायनों में दिशा दी, जबकि लंबे समय तक इसे साहित्यालोचना का सहायक माना जाता रहा है। अभी हाल ही में इसने गति प्राप्त की है। यहां प्रश्न यह भी उभरता है कि क्या अनुवाद-समालोचना जरूरी है? इसके उत्तर की तलाश करें तो हमें निष्पक्ष भाव से यही प्रश्न साहित्यालोचना के संदर्भ में भी करना चाहिए। अगर साहित्यालोचना जरूरी है तो अनुवाद-समालोचना भी। इस बारे में अनुवाद-समालोचना की महत्ता को रेखांकित करने वाला प्रो. अवधेश कुमार सिंह का यह कथन विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि “अनुवादहीनता की तुलना में खराब अनुवाद

बेहतर होता है। सौभाग्य से प्रेशम का सिद्धांत “खराब मुद्रा अच्छी मुद्रा को बाजार से बाहर फेंक देती है” (बैड मनी ड्राइव्स गुड मनी आउट ऑफ मार्केट) साहित्य-जगत और अनुवाद पर लागू नहीं होता। अनुवाद-समालोचना, खराब अनुवाद और उसे प्रकाशित किए जाने को कभी रोक नहीं सकती। लेकिन आलोचना का यह दायित्व होता है कि खराब अनुवाद, अच्छे अनुवाद की भांति स्थापित न हो जाए।”²³ इस दृष्टि से प्रेमचंद की अनुवाद समालोचना विशेष उल्लेख की अधिकारी है। प्रेमचंद का ‘नीर-क्षीर’ शीर्षक ‘विविध प्रसंग’ का भाग-3 ‘समीक्षा’ केंद्रित है। इसमें शामिल अनूदित पुस्तकों की समीक्षाओं में अनुवाद के लिए पाठ चयन, अनुवाद की स्वीकृति और अनुवाद की स्वतंत्रता आदि जैसे अनुवाद गतिविधियों पर प्रेमचंद के सिद्धांतपरक विचार मिलते हैं। उन विचारों के आलोक से जहां ‘अनुवाद चिंतक प्रेमचंद’ से साक्षात् होता है, वहीं अनुवाद समालोचना की संस्कृति का परिचय मिलता है, उसका पोषण-परिष्कार होता है। इसके अलावा, अनुवाद समालोचना से अनूदित पाठों के शिक्षण में भी सहायता मिलती है। वस्तुतः आज अनुवाद समालोचना को अनुवाद अध्ययन विधा के अभिन्न अंग के रूप में गंभीरता से लेने की जरूरत है जिसमें प्रेमचंद की अनुवाद-समालोचना विशिष्ट स्थान की अधिकारी सिद्ध होगी, दिशा-निर्देशक का काम करेगी।

निष्कर्षतः समर्थ एवं सशक्त कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित-सम्मानित और हिंदी-उर्दू भाषाओं में बराबर लेखनी चलाकर विशिष्ट ख्याति प्राप्त करने वाले साहित्यकार प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं का स्वयं अनुवाद करके अपने ‘साहित्यकार-अनुवादक’ रूप से साक्षात् कराया। अपने अनुवादों में ‘सृजनात्मकता को बनाए रखने वाले प्रेमचंद ‘सृजनात्मक अनुवादक’ सिद्ध होते हैं। उनके हिंदी और उर्दू कथा साहित्य में अनुवाद की समरूपता विशेष रूप से रेखांकित की जा सकती है। इन दोनों भाषाओं पर समान अधिकार के कारण अगर वे पहले हिंदी में लिख लेते तो

फिर उसका उर्दू अनुवाद कर देते या किसी अन्य की सहायता लेते और उर्दू में पहले लिखने पर उसका हिंदी अनुवाद कर देते समय किसी अन्य की सहायता लेते। लेकिन यह कहना कठिन है कि यह सहायता किस सीमा तक होती थी, किंतु उनके पत्रों में स्वयं उनके द्वारा उर्दू और हिंदी अनुवाद करने के प्रमाण भी मौजूद हैं। वैसे इतना तो अवश्य ही है कि उनका व्यापक रचना-संसार इस दिशा में गहन-गंभीर अध्ययन विवेचन की अपेक्षा करता है ताकि उनकी मौलिक और अनूदित रचनाओं का सुनिश्चयन हो सके।

प्रेमचंद ने अन्य साहित्यकारों द्वारा लिखित रचनाओं का अनुवाद करके भी अपनी 'अनुवादक' की भूमिका से भी परिचित करवाया है। इसके साथ-साथ अपने अनुवाद समीक्षण कर्म के जरिए वे सुधी पाठक जगत के समक्ष अपने 'अनुवाद चिंतक' रूप को भी प्रस्तुत करते हैं। अनुवाद के प्रति उनका व्यावहारिक दृष्टिकोण अनुवाद की महत्ता और हिंदी को समृद्ध-सम्पन्न करने में इसे एक साधन के रूप में तो स्वीकार करता है, किंतु इसे अतिशय महत्त्व नहीं देता। वे अनुवाद को साहित्यिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सशक्त माध्यम तो मानते हैं किंतु स्रोत भाषा के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को बनाए रखने के भी पक्षधर हैं। अनुवाद समालोचना की संस्कृति के पोषण-परिष्कार में प्रेमचंद का अवदान विशेष उल्लेख का अधिकारी है। आज 'अनुवाद चिंतक प्रेमचंद' के विचारों को अच्छी तरह से मथकर उनकी अनुवाद धारणाओं रूपी नवनीत को निकालने की

भी आवश्यकता है ताकि अनुवाद जगत उनके अनुवादकीय चिंतन से भली प्रकार से परिचित हो सके, अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में उनका अवदान रेखांकित किया जा सके और वे अनुवाद के संदर्भ में भी हमारी मूल्यवान निधि सिद्ध हो सकें।

संदर्भ—

- 1 स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद 'हंस' स्मृति अंक, 1937 (कथाकार प्रेमचंद, जाफ़र रज़ा, पृ.95 से उद्धृत)
- 2 कथाकार प्रेमचंद, जाफ़र रज़ा, पृ.192-193
- 3 बाज़ार-ए-हुस्न, प्रेमचंद, भाग 1, पृ.27
- 4 सेवासदन, प्रेमचंद, पृ. 24
- 5 सेवासदन, प्रेमचंद, पृ. 5
- 6 प्रेमचंद विश्वकोश, भाग 2, संपा. डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृ. 428-429
- 7 चिट्ठी-पत्री, भाग 1, प्रेमचंद, पृ.50
- 8 कथाकार प्रेमचंद, जाफ़र रज़ा, पृ.99
- 9 "ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचंद कभी-कभी अपने अनुवादों में दूसरों से या तो मदद लिया करते थे या उनसे करवा कर खुद संशोधन-परिवर्धन करने के बाद प्रकाशनार्थ भेजा करते थे।" —मदन गोपाल ('मुंशी प्रेमचंद के अनुवादों की कुछ झलकियाँ'), 'अनुवाद' पत्रिका, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, अंक 45, दिसंबर 1985, पृ. 50
- 10 सरस्वती, जुलाई-दिसंबर 1926
- 11 प्रेमचंद साहित्य-संदर्भ, संपा. डॉ. लक्ष्मीकांत पांडेय ('प्रेमचंद और पाश्चात्य प्रभाव'—महामुनि सिंह), ग्रंथम, रामबाग, कानुपर, वर्ष 1981, पृ. 547
- 12 "चारों तरफ से बौछारें पड़ रही थीं— 'रंगभूमि', 'वेनिटी फेयर' की नकल है, 'प्रेमाश्रम' 'रिज़ेक्शन' की नकल है, 'कायाकल्प' 'इटर्नल सिटी' की नकल है, 'विश्वास' नाम की कहानी

'इटर्नल सिटी' की छाया है, 'आभूषण' नाम की कहानी हार्डी की एक कहानी की नकल है, 'हंसी' नाम का लेख जो 'जमाना' में मुंशी जी के नाम से छपा था, मराठी के एक लेख का अनुवाद है।" —प्रेमचंद : कलम का सिपाही, अमृतराय, पृ.384

- 13 साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ. 66
- 14 प्रज्ञा : प्रेमचंद स्मृति अंक ('प्रेमचंद की साहित्यिक दृष्टि और रंगभूमि'—डॉ. श्रीनिवास पांडेय), काशी हिंदू विश्वविद्यालय की पत्रिका, अंक 27-28, संयुक्तांक, वर्ष 1982, पृ.299
- 15 विविध प्रसंग, भाग 3, प्रेमचंद, पृ. 72
- 16 सुधा, प्रेमचंद, आश्विनी 305, तुलसी संवत् (कथाकार प्रेमचंद, जाफ़र रज़ा, पृ.219 से उद्धृत)
- 17 चिट्ठी-पत्री, भाग 1, प्रेमचंद, पृ. 171
- 18 'हंस' पत्रिका (जीवन-सार, प्रेमचंद), फरवरी 1932
- 19 प्रज्ञा : प्रेमचंद स्मृति अंक ('प्रेमचंद की विचारधारा और रचना-दृष्टि'—डॉ. परमानंद श्रीवास्तव), काशी हिंदू विश्वविद्यालय की पत्रिका, अंक 27-28, संयुक्तांक, वर्ष 1982, पृ.11 से उद्धृत
- 20 साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ.196
- 21 विविध प्रसंग, भाग 3, प्रेमचंद, पृ.345
- 22 'अनुवाद' पत्रिका ('अनूदित पाठों का शिक्षण : मुद्दे और दृष्टिकोण, प्रो. अवधेश कुमार सिंह, अनुवादक—डॉ. हरीश कुमार सेठी), 'अनुवाद' पत्रिका, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, अंक 157, अक्टूबर-दिसंबर 2013, पृ. 65
- 23 वही, पृ. 66

असिस्टेंट प्रोफेसर,
अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ,
ब्लॉक 15-सी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068

प्रेमचंद और चार्ल्स डिकेंस—यथार्थवाद के महापंडित

डॉ. वेद मित्र शुक्ल

डॉ. वेद मित्र शुक्ल : देश-विदेश में कई शोधपत्र प्रस्तुत करने के साथ ही विभिन्न पत्रिकाओं में आलेखों का प्रकाशन।

विश्व-साहित्य में अपने समय के समाज और मुख्य रूप से उनसे जुड़ी समस्याओं को जैसा देखा वैसा ही रचनात्मकता के साथ प्रस्तुत करने वाले यथार्थवादी रचनाकारों की परंपरा में अंग्रेजी साहित्य में चार्ल्स डिकेंस (1812-1870) और भारतीय साहित्य में प्रेमचंद (1880-1936) निर्विवाद रूप से उच्चकोटि के उपन्यासकार माने जाते हैं। अपने-अपने देश, काल व परिस्थितियों के अनुसार उन्होंने साहित्य के माध्यम से जो प्रस्तुत किया, वह आज भी लगभग सभी वर्ग के पाठकों पर अमिट छाप छोड़ने में सक्षम है। दूसरे शब्दों में कहें, तो कालजयी हैं। एक ही परंपरा के वाहक होने के बावजूद दोनों लेखक अपने-अपने स्थान पर बेजोड़ हैं, इसलिए तुलनात्मक चर्चा करना शायद न्यायसंगत न हो। पर, वैश्वीकरण के युग में एक का नाम आते ही दूसरे के स्मरण से बच पाना भी संभव नहीं है।

डिकेंस अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में 19वीं शताब्दी में रानी विक्टोरिया के नाम से प्रसिद्ध विक्टोरियन युग के प्रतिनिधि रचनाकारों में से एक रहे, तो वहीं दूसरी ओर प्रेमचंद बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दौर में आधुनिक हिंदी साहित्य में यथार्थवाद का सूत्रपात करने वाले पहले उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। जब इंग्लैंड लगभग हर क्षेत्र में समृद्धि और संपन्नता के शीर्ष पर माना जा रहा था, उस समय डिकेंस ने अपने औपन्यासिक चरित्रों

के माध्यम से वहां के नागरतापूर्ण जीवन और विशेष रूप से लंदन के परिवेश में व्याप्त सामाजिक समस्याओं और कुरीतियों का यथार्थवादी चित्रण अपने साहित्य के माध्यम से किया। प्रेमचंद ने भी राजा-रानी, परियों व देवी-देवताओं से जुड़े विषयवस्तुओं से परे होकर भारतीय साहित्य को सीधे समाज से जोड़ा। एक विद्वान के अनुसार, “भारतीय साहित्य के माध्यम से भारतीय यथार्थ को पहचानना है तो प्रथमतः प्रेमचंद का अध्ययन अनिवार्य है (अरविंदाक्षन, पृ. 7)।” अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज के ठेकेदारों की परवाह न करते हुए भारत की सामाजिक दशा और समस्याओं का बड़ा ही सटीक यथार्थ प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में *वरदान* (1912), *सेवासदन* (1918), *प्रेमाश्रम* (1922), *रंगभूमि* (1925), *कायाकल्प* (1926), *निर्मला* (1927), *प्रतिज्ञा* (1929), *गबन* (1931), *कर्मभूमि* (1932), *गोदान* (1936) आदि उपन्यास प्रमुख हैं। उन्होंने कहानियां और नाटक भी लिखे।

प्रेमचंद एक अच्छे लेखक होने के साथ-साथ गंभीर अध्येता भी थे। उन्होंने उर्दू और हिंदी साहित्य के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य का भी गहन अध्ययन किया था, जिसमें रूसी, फ्रेंच और अंग्रेजी साहित्यकारों की कृतियां शामिल थीं। जहां तक रूसी और फ्रेंच भाषा के साहित्य को पढ़ने की बात थी, तो उन्होंने उनका अंग्रेजी, उर्दू अथवा हिंदी में अनूदित साहित्य पढ़ा था। अंग्रेजी साहित्य में मुख्य रूप से उन्होंने चार्ल्स डिकेंस, विलियम मैकपीस थैकरे, जार्ज इलियट, टामस हार्डी तथा गाल्सवर्दी को पढ़ा। यथार्थवादी साहित्यकारों

में डिकेंस उन्हें अत्यधिक प्रिय रहे। इसकी चर्चा उन्होंने अपने लेखों में की है। इस संबंध में प्रेमचंद की साहित्यिक जीवनी लिखते हुए मदनगोपाल कई स्थानों पर डिकेंस से उनके विशेष जुड़ाव का उल्लेख करते हैं। अपने समय के साहित्यकारों के बीच में डिकेंस के उपन्यासों के चरित्रों, कथावस्तुओं आदि के विशेषज्ञ के रूप में प्रसिद्ध होने के साथ-साथ वे प्रायः ही तत्कालीन हिंदी एवं उर्दू के उपन्यासकारों को अन्य साहित्यकारों के अतिरिक्त डिकेंस को विशेष रूप से पढ़ने की सलाह देते थे (पृ. 43, 86, 133)। उन्होंने डिकेंस की एक कहानी “द स्टोरी ऑफ रिचर्ड डबलडिक” का उर्दू में अनुवाद भी किया था। जो “अश्क-ए-नदामत” शीर्षक से सन् 1920 में *कहकशां* पत्रिका के जनवरी अंक में प्रकाशित हुई थी (पृ. 134)।

दोनों ही लेखकों ने अपने-अपने समाज के निचले वर्गों से जुड़ी समस्याओं को बहुत करीब से देखा और अनुभव किया था। एक दर्जन से भी अधिक उपन्यासों के लेखक रहे डिकेंस द्वारा यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ लिखी गई प्रमुख कृतियों में *पिकविक पेपर्स* (1836-37), *ऑलिवर ट्विस्ट* (1837-39), *निकॉलस निकिलबाई* (1838-39), *दि ओल्ड क्यूरीआसिटी शॉप* (1840-41), *मार्टिन च्वैजिलेविट* (1843-44), *द क्रिसमस बुक्स* (1843-48), *डॉम्बे एंड सॉन्* (1846-48), *डेविड कॉपरफील्ड* (1849-50), *ब्लीक हाउस* (1852-53), *हार्ड टाइम्स* (1854), *लिटिल डैरिड* (1855-57), *ग्रेट एक्सपेक्टेशंस* (1860-61), *अव्वर म्यूचुअल फ्रेंड* (1864-65) आदि उल्लेखनीय हैं।

अधिकांश रचनाओं में अपने बचपन से जुड़ी स्मृतियों के माध्यम से डिकेंस इंग्लैंड की सामाजिक व आर्थिक दशा के साथ-साथ उस समय के बच्चों की दयनीय दशा को भी दर्शाते हैं। *ब्लिक हाउस, लिटिल डैरिट, डेविड कॉपरफील्ड, डॉम्बे एंड सॉन्*, आदि उपन्यासों में उनके खुद के बचपन की झलक आत्मकथात्मक शैली में मिलती है। उदाहरण के लिए *डेविड कॉपरफील्ड* में अपने पिता की दयनीय स्थिति को याद करते हुए वे मि. माइकॉबेर व मि. डिक जैसे चरित्र रचते हैं। जिनके द्वारा कर्ज न चुका पाने के कारण जेल जाना तथा उपन्यास में दिखाए गए तत्कालीन सामाजिक मूल्यों के साथ सामंजस्य न रख पाना बिल्कुल ही उनके पिता से जुड़ी घटनाओं से मेल खाता है। बचपन में वॉरेंस ब्लैकिंग फैक्टरी में अपने मजदूरी के दिनों को याद करते हुए वे इसी उपन्यास में डेविड द्वारा मॅरडस्टॉन व ग्रिनबाइ के मालगोदामों में मजदूरी किए जाने के यातनापूर्ण जीवन का यथार्थवादी एवं करुणाजनक चित्र प्रस्तुत करते हैं। अन्य कृतियों जैसे *ऑलिवर ट्विस्ट, ग्रेट एक्सपेक्टेशंस* आदि में भी उनके जीवन से जुड़ी कई घटनाएं अप्रत्यक्ष रूप से देखी जा सकती हैं। ज्ञात हो कि डिकेंस का बचपन अभावों में बीता था। अपने परिवार की खराब आर्थिक स्थिति के कारण उन्हें स्कूल छोड़ना पड़ा और कारखानों आदि में मजदूरी जैसे कार्य करने पड़े। इसी प्रकार प्रेमचंद ने भी अपनी शिक्षा-दीक्षा प्रतिकूल परिस्थितियों में पूरी की थी। बचपन में ही माता और युवा होते-होते पिता की मृत्यु के साथ-साथ उन्हें अनेक तरह की पारिवारिक समस्याओं से भी दो-चार होना पड़ा। उस समय के उच्च व निम्न वर्ग के बीच के सामाजिक संघर्षों का उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया था। इसका उदाहरण उनके *गोदान* में मजदूर-किसान और महाजनों के मध्य के अति कटु संबंधों के मार्मिक वर्णन में मिलता है। प्रेमचंद के अनुभवजन्य लेखन के विषय में डा. रामविलास शर्मा द्वारा *गोदान* पर की गई टिप्पणी भी उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं—

“प्रेमचंद ने जब ‘गोदान’ लिखा था, तब वह खुद भी कर्ज के बोझ से दबे हुए थे। ‘गोदान’ की मूल समस्या ऋण की समस्या है। इस उपन्यास में किसानों के साथ मानो वह आपबीती भी कह रहे थे।” (पृ. 96)।

निश्चित रूप से किसी भी साहित्यकार के प्रारंभिक जीवन का प्रभाव उसके साहित्य पर सरलता से देखा व समझा जा सकता है। दोनों ही अपने जीवन से जुड़े और भोगे गए सामाजिक संघर्ष, आर्थिक विपन्नता, विभिन्न स्तरों पर असमानता, शोषण आदि समस्याओं और उनके प्रति अपने यथार्थवादी समझ को लेकर जहां एक ओर अपनी कृतियों में विषय और दृष्टिकोण के धरातल पर समान हैं। तो वहीं अपने-अपने औपन्यासिक संसार के चरित्रों और घटनाओं से जुड़े परिवेश, परिस्थिति आदि के चित्रण और वर्णन के स्तर पर सर्वथा भिन्न हैं, जिसका कारण उनके अपने पृथक-पृथक देशों की सामाजिक संरचनाएं एवं परिवेश ही हैं। एक ओर लंदन के शहरी परिवेश में पले-बढ़े डिकेंस की कृतियां नगरीय जीवन को अपने विषय और दृष्टिकोण को व्यक्त करने का आधार बनाती हैं। तो दूसरी तरफ भारतीय ग्राम्य जीवन में रचे-बसे प्रेमचंद का साहित्य उद्योग-धंधों से भरपूर लंदन की तुलना में लगभग बिल्कुल ही शहरी कोलाहल से दूर गांवों-कस्बों का जन-जीवन प्रस्तुत करता है। पर, एक तुलनात्मक अध्ययन में, जो कि एक जर्मन विद्वान जोगेफ्रोद ए. शुल्स द्वारा *गोदान* और *हार्ड टाइम्स* के बीच में किया गया, ये कहना कि प्रेमचंद ने ‘घटनाएं और पात्र, यहां तक कि पात्रों के समूह, भी उससे लिए और उन्हें पलटकर बड़ी कुशलता से भारतीय दृश्यावली के अनुकूल बना लिया (2006, पृ. 267)।” इस कथन के समर्थन में शुल्स द्वारा *हार्ड टाइम्स* में उद्योग-बहुल इंग्लैंड में नगरीय दुरावस्था का शिकार कोकटाउन और *गोदान* में देहाती दुरावस्था का उदाहरण बेलारी गांव तथा इसी तरह पात्रों के स्तर पर ग्रैडग्राइंड की बेटे लूइसा और होरी की बेटे रूपा, सेसिलिया और सिलिया आदि उदाहरणों में कई बातों

को लेकर समानताओं की विस्तार से चर्चा करके प्रेमचंद पर डिकेंस के प्रभाव को पुष्ट करने का प्रयास करते हैं (पृ. 267-68)।

यह भी उल्लेखनीय है कि “डिकेंस एक स्वतंत्र देश के साहित्यकार थे और प्रेमचंद उस स्वतंत्र देश द्वारा शासित (एक सीमा तक शोषित भी) परतंत्र देश के साहित्यकार थे (पांडेय, पृ. 94)।” यदि डिकेंस के उपन्यासों में यथार्थवादी चेतना तत्कालीन इंग्लैंड में अति समृद्धि और संपन्नता के साथ-साथ औद्योगीकरण आदि से उत्पन्न आर्थिक असमानता, मानवीय व सामाजिक मूल्यों का हास, कमजोर वर्ग के शोषण आदि के विभीषिका के दंश की देन थी। वहीं प्रेमचंद के साहित्यिक संसार में सामाजिक यथार्थवाद, अंग्रेजों के साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के साथ-साथ भारत के ही एक वर्ग के सामंतवाद के कारण उत्पन्न शोषण का परिणाम था। पर, दोनों ही अपने-अपने स्थानों से शोषित वर्ग की आवाज बन कर उनके अधिकारों के लिए अपने यथार्थवादी साहित्य के माध्यम से संघर्षशील रहे। डिकेंस की मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण आवाज निर्धनों को राहत देने हेतु बने अपर्याप्त व असंवेदनशील कानूनों के खिलाफ *ऑलिवर ट्विस्ट* में, मानवीयता रहित निर्दयी यॉर्कशाइर विद्यालयों को लेकर *निकॉलस निकिलबाई* में, सरकारी लालफीताशाही व भाई-भतीजावाद के विषय पर *लिटिल डैरिट* में, अतिभौतिकवादी समाज की निंदा करते हुए *हार्ड टाइम्स* सहित लगभग सभी कृतियों में सुनी जा सकती है। प्रेमचंद भी *प्रेमाश्रम* में जुल्मी जमींदारों, *सेवासदन* में वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने वाले, *गोदान* में किसानों का शोषण करने वाले महाजन, *कर्मभूमि* में अस्पृश्यता को बढ़ावा देने वाले उत्पीड़नकारी शोषक समाज के विरोध में शोषित भारतीय किसानों, स्त्रियों, निर्धन और वंचितों के लिए प्रतिवाद करने में कहीं से भी पीछे नहीं रहते हैं।

डिकेंस के सफल यथार्थवादी उपन्यासों के पीछे उनकी वर्णनात्मक शैली का बहुत बड़ा योगदान माना जाता है। इसकी वजह से आलोचकों ने उनके कुछ उपन्यासों के कथानकों में जटिलताएं भी पाई। पर, घटनाओं व चरित्रों का विस्तृत रूप से किया गया वर्णन तत्कालीन अंग्रेजी समाज से जुड़ी घिनौनी वास्तविकताओं को साहित्यिक पृष्ठों पर आज भी जीवंत कर देते हैं। इस संदर्भ में उनका उपन्यास *ब्लैक हाउस* उल्लेखनीय है, जो उपकथानकों व चरित्रों की अधिकता के बावजूद सामाजिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण पाठकों के समक्ष रचनात्मकता के साथ प्रस्तुत करता है। पूरे पैतालीस अध्यायों वाला एक अन्य उपन्यास *ए टेल ऑव टू सिटीज* है, जिसमें डिकेंस पेरिस और लंदन में घटी घटनाओं का एक साथ विस्तार से वर्णन करते हुए कहीं भी विषयांतर अथवा जटिल रचना विधान की समस्या से दो-चार नहीं होते हैं। वर्णनात्मक शैली के साथ रचना विधान में इसी सिद्धहस्तता के प्रभाव को शुल्स प्रेमचंद के *गोदान* में पाते हैं (2006, पृ. 266)। जहां विभिन्न अध्यायों में गांव और शहर के भिन्न-भिन्न परिवेशों का विस्तार से वर्णन होने के बावजूद रचना विधान में उचित संतुलन देखने को मिलता है।

प्रेमचंद और डिकेंस दोनों के ही उपन्यासों में व्यंग्य के पुट उनके शैलीगत विशेषताओं में से एक है। जैसे किसी यंत्र के ठीक ढंग से कार्य करने में चिकनाई हेतु तेल आदि का उपयोग है, उसी प्रकार उन दोनों की व्यंग्यात्मक शैली रचनाओं को लोकप्रिय बनाने के साथ-साथ उनके सुधारवादी दृष्टि का भी द्योतक है। *ऑलिवर ट्विस्ट* के दूसरे अध्याय में बड़े ही व्यंग्यात्मक लहजे में तत्कालीन इंग्लैंड में गरीबों एवं अनाथों के लिए चल रहे कल्याणकारी योजनाओं और दानादि को लेकर सामाजिक व्यवहार पर डिकेंस अपना विरोध दर्ज करते हैं। आठ वर्ष के अनाथ बालक ऑलिवर को चर्च से हटा करके जिस मुहताजखाने में भेजा गया है उसके यथार्थवादी चित्रण के माध्यम से

अपने समय के मुहताजखानों और दीनागारों के लिए बने सरकारी नियमों पर कटाक्ष करते हुए वे लिखते हैं—

“... खुरदुरे और कड़े बिस्तर पर वह सिसकते हुए खुद ही सो गया। इस प्यारे देश के संवेदनशील कानून का एक महान उदाहरण! वे निर्धनों को सोने को दे रहे हैं! ...क्या महान उदाहरण उन्होंने नियम बनाए कि सभी गरीब लोगों के पास विकल्प खुले हैं (क्योंकि वे किसी को मजबूर नहीं करेंगे) कि वो भूख से मुहताजखानों में धीरे-धीरे मरे अथवा इसके बाहर तेजी के साथ। इस नजरिये के साथ उन्होंने जलकल के साथ असीमित पानी के लिए और अनाज व्यापारियों को समयबद्ध तरीके से कम मात्रा में जई की आटे के आपूर्ति का अनुबंध किया और एक दिन में तीन समय पतला दलिया, साथ में सप्ताह में दो बार एक पूरा प्याज और रविवार को घुमा के लपेटी हुई आधी रोटी दिया। उन्होंने और अन्य महान अक्लमंदी वाले मानवीय कानून बनाए (पृ.24-25)।”

इस यथार्थवादी विवरण में ‘प्यारे देश’, ‘संवेदनशील कानून’ आदि प्रशंसा करने वाले शब्दों के द्वारा व्यंग्यात्मक ताने के पुट हैं। साथ ही साथ असंवेदनशील एवं निर्दयी कानूनी व्यवस्थाओं के कारण यातनापूर्ण जीवन जीने को विवश अनाथ और निर्धन अंग्रेजी समुदाय के प्रति पाठकों में सहानुभूति का भाव भी जाग्रत करने की शक्ति है। इसी प्रकार यथार्थ के धरातल पर ही अन्य व्यंग्यात्मक टिप्पणियों के माध्यम से डिकेंस ने निर्धनों से संबंधित तत्कालीन अपर्याप्त कानूनों, जिसमें यहां तक था कि मुहताजखाने में दर्ज नामों और वहां रहने वालों को ही सरकारी अथवा सामाजिक मदद मिल सकेगी, की सख्त मजम्मत की।

डिकेंस के समान प्रेमचंद ने भी यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए अपनी रचनाओं में आम जनमानस की विवशताओं को व्यंग्यात्मक शैली में उकेरने का सफल प्रयास किया। इस संदर्भ में *गोदान* के होरी का यह प्रसिद्ध कथन उल्लेखनीय है—“यह इसी

मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि जान बची हुई है। नहीं, कहीं पता न लगता कि किधर गए। गांव में इतने आदमी तो हैं किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आयी। जब दूसरों के पांवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पांवों को सहलाने में ही कुशलता है।” (पृ. 5)।

शोषितों के प्रति संवेदना के स्तर पर कहीं भी समझौता न करते हुए उस समय के शोषक समाज पर व्यंग्यात्मक शैली में धारदार भाषा का प्रयोग प्रेमचंद की कहानियों ‘*दो बैलों की कथा*’, ‘*पूस की रात*’, ‘*कफन*’ आदि में भी देखा जा सकता है। रामविलास शर्मा ने ‘*दो बैलों की कथा*’ से एक प्रसंग का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा व्यंग्यात्मकता के साथ भाषा-शैली के सुंदर प्रयोग की बानगी देते हुए लिखा है—“‘दो बैलों की कथा’ का पहला पैरा गधे के गुणों का वर्णन करता है। दूसरे पैरे में बैल और गधे के गुणों का तुलनात्मक अध्ययन है और फिर लेखक अपना निष्कर्ष प्रकट करता है—“कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफों में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे, मगर हमारा विचार ऐसा नहीं है। बैल कभी-कभी मारता भी है, कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आ जाता है। और भी कई रीतियों से वह अपना असंतोष प्रकट कर देता है, अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।” यहां पर प्रेमचंद ने शैली में प्रसार और वर्णन में शब्द-चयन की सुघराई के साथ-साथ समाज में एक प्रचलित दृष्टिकोण पर असंतोष को प्रकट न करके चुपचाप अन्याय सहने के दृष्टिकोण पर—व्यंग्य भी किया है।” (पृ. 111-12)।

दोनों के द्वारा ही अपनी रचनाओं में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग उनके सुधारवादी दृष्टिकोण को बल प्रदान करता है। जहां तक डिकेंस की व्यंग्यात्मक शैली का प्रेमचंद की कृतियों पर प्रभाव पड़ने का विषय है तो ये ध्यातव्य है कि प्रेमचंद अंग्रेजी साहित्य से अधिक उर्दू साहित्य से परिचित थे। उन्हें उर्दू के साहित्यकार सरशार के ‘मखौल का कीड़ा’ की व्यंग्यात्मक शैली पसंद थी। वे

इस से इतना प्रभावित थे कि सन् 1906 में 'शरर और सरशार' पर लिखते हुए अपने एक लेख में जो लिखा था उसका **कलम के सिपाही** में कुछ इस तरह से जिक्र किया गया है—“बुद्धिमान जानते हैं कि बुराइयों की रोकथाम के लिए कोई औजार इतना कारगर और असरदार नहीं है जितना कि मखौल का कोड़ा और सरशार ने बड़ी बेरहमी से ऐसे कोड़े लगाये हैं—डिकेंस ने भी सर्जेंट बजफज के पर्दे में वकीलों की खूब खबर ली है। मगर सरशार की बेधड़क ठिठोली डिकेंस के गंभीर व्यंग्य से अधिक प्रभावशाली है।” (पृ. 402)।

निःसंदेह, उन्होंने डिकेंस को पढ़ा और समझा था। उनके व्यंग्य की भी पड़ताल की थी। पर जहां तक उनके साहित्य पर व्यंग्यात्मक शैली के सीधे प्रभाव की बात है। वहां उर्दू साहित्य के सरशार आदि रचनाकारों का प्रभाव उन पर अत्यधिक ही माना जाना चाहिए। (पांडेय, पृ. 95)।

अधिकांश आलोचक भारतीयता से ओत-प्रोत आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के लेखक प्रेमचंद पर डिकेंस का प्रत्यक्ष प्रभाव तो नहीं मानते हैं, पर, दोनों के विषय और दृष्टिकोण में समानताओं की चर्चा जरूर करते हैं। किंतु, जर्मन विद्वान शुल्स ने प्रेमचंद को अन्य पश्चिमी साहित्यकारों की अपेक्षा डिकेंस से अत्यधिक प्रभावित माना है। अपने इस मत के समर्थन में वे कहते हैं—“दिसंबर 1934 के पिछले दिनों में, ठीक उस समय जब 'गोदान' प्रकाशित होने के लिए दिया गया था, एक प्रश्न के उत्तर में प्रेमचंद ने लिखा था कि जिन लेखकों का मुझ पर प्रभाव पड़ा है वे लियो

टालस्टाय, विक्टर ह्यूगो, रोमा रोला, मैक्सिम गोर्की और रवींद्रनाथ ठाकुर हैं (मदान, पृ. 163)। उन्होंने उन अंग्रेजी लेखकों में से किसी का नाम नहीं लिया, जिनका हाईस्कूल में उन्हें पसीना बहाकर अध्ययन करना पड़ा था और जिनकी कुछ कृतियों का हिंदी अनुवाद भी उन्होंने किया था, उदाहरणार्थ, चार्ल्स डिकेंस, जार्ज इलियट, गाल्सवर्दी आदि। प्रतीत होता है कि जिस समय प्रेमचंद ने यह पत्र लिखा था, वह अंग्रेजी लेखकों का स्पष्ट नाम लेने के लिए उपयुक्त नहीं था। टालस्टाय की तथा उन अन्य लेखकों की रचनाएं, जिनका नाम प्रेमचंद ने लिया था, उस समय आदर्श के रूप में अधिक आकर्षक मानी जाती थी।” (2006, पृ. 264-65)।

शुल्स अपने शोध लेख “प्रेमचंद्स नॉवेल गोदान: ईकोज ऑव चार्ल्स डिकेंस इन एन इंडियन सैटिंग” (1972) में बाकायदा **गोदान** पर डिकेंस के विभिन्न कृतियों के प्रभाव के विषय पर विस्तार से चर्चा करते हैं। एक अन्य आलोचक कृष्णचंद्र पांडेय ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए अपने शोधग्रंथ **प्रेमचंद के जीवन-दर्शन के विधायक-तत्व** में लिखा है कि समानताएं भी दोनों की अपने युग की समान परिस्थितियों और समान रुचि के कारण हो सकती हैं, जिसे एक संयोग मानना चाहिए न कि प्रभाव। उत्तर औपनिवेशिक विमर्शों के दौर में प्रेमचंद पर डिकेंस के सीधे प्रभाव के प्रश्न पर चर्चा-परिचर्चा और भी संभव है। पर, इतना तय है कि डिकेंस और प्रेमचंद के साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर विचारोपरांत लगभग सभी आलोचक व विद्वान एकमत से विश्व साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद के

महान साधकों की अग्रिम पंक्ति में दोनों को ही पाते हैं।

संदर्भ—

1. अमृतराय, प्रेमचंद : कलम का सिपाही, इलाहाबाद: हंस प्रकाशन, 1962.
2. अरविंदाक्षन, ए., प्रेमचंद के आयाम, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2006.
3. गोपाल, मदन, मुंशी प्रेमचंद: अ लिटरेरी बायोग्राफी, बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1964.
4. डिकेंस, चार्ल्स, ऑलिवर ट्विस्ट, न्यूयार्क: साइमन एंड शूस्टर, 2007.
5. पांडेय, कृष्णचंद्र, प्रेमचंद के जीवन दर्शन के विधायक तत्व, इलाहाबाद: रचना प्रकाशन, 1970.
6. प्रेमचंद, गोदान, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2007.
7. मदान, आई.एन., प्रेमचंद: एन इंटरप्रिटेशन, लाहौर: मिनर्वा बुकशॉप, 1946.
8. शुल्स, जोगेप्रोद ए., “पश्चिमी मूल्यांकन दृष्टि, “प्रेमचंद: विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता” (संपा. एम.एम.पी. सिंह व रेखा अवस्थी), नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2006. पृ. 259-74.
9. ... “प्रेमचंद्स नॉवेल गोदान: ईकोज ऑव चार्ल्स डिकेंस इन एन इंडियन सैटिंग”, “स्टडीज़ इन आनर ऑव टेयियाना फोटिख, वाशिंगटन: कैथोलिक यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972. पृ. 341-66
10. शर्मा, रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग (पांचवां संस्करण), नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1989.

अंग्रेजी विभाग, राजधानी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110015

कथाकार प्रेमचंद का आलोचना पक्ष

डॉ. रमा

डॉ. रमा : 'विशिष्ट हिंदी पत्रकारिता शिक्षिका पुरस्कार' से सम्मानित डॉ. रमा की चार संपादित पुस्तकें और एक पुस्तक लेखक के रूप में आ चुकी हैं। कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में भागीदारी।

साहित्य की अलग-अलग विधा होने के बावजूद भी रचना और आलोचना एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों ही एक दूसरे के विकास में सहायक भी हैं। रचना जहां हृदय की उपस्थिति है वहीं आलोचना बुद्धि का पर्याय है। ऐसा कम ही हुआ है कि हिंदी साहित्य में आलोचक और रचनाकार दोनों गुणों से संपन्न साहित्यकार पैदा हुए हों। रचना-आलोचना एक साथ करना असंभव नहीं परंतु कठिन तो है। हजारीप्रसाद द्विवेदी, मुक्तिबोध जैसे कुछ विरल व्यक्तित्व ही पूरे हिंदी परिदृश्य पर दिखते हैं जिन्होंने रचना के साथ गंभीर आलोचना भी की।

कई आलोचक ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी की शुरुआत कवि रूप में की जो बाद में आलोचना के क्षेत्र में उतरे, उतरे तो फिर कविता नहीं कर सके। प्रेमचंद पूर्ण रूप से ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य के कथा साहित्य को न केवल विकसित किया है बल्कि परिष्कृत भी किया। हिंदी साहित्य में उनके कथा साहित्य का विशाल कलेवर गंभीर भी है और सुरुचिपूर्ण भी।

प्रेमचंद आलोचक के रूप में कभी सक्रिय नहीं रहे लेकिन संपादक के रूप में उनका व्यक्तित्व विराट है। उन्होंने घोषित रूप से कभी आलोचना नहीं की परंतु समय-समय पर साहित्य, कला, संस्कृति के विभिन्न

पक्षों पर अपनी टिप्पणियां देते रहे हैं, जो हिंदी साहित्य की तमाम विधाओं के विषय-वस्तु और भाषायी परिदृश्य को समझने में सहायता करती है। उनकी टिप्पणी वर्तमान साहित्य और समाज के लिए प्रेरणादायक और विचारणीय है।

साहित्य का मुख्य उद्देश्य सही मायनों में किसी भी व्यक्ति को मानवता का पाठ पढ़ाना है। जब हम किसी भी इंसान को मानव बनाने की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य होता है कि उस व्यक्ति में सभी मानवीय गुण उपलब्ध कराए जाएं जो मानवीयता के आधार हैं। साहित्य वो विवेक पैदा करता है जो इंसान को सही-गलत की पहचान करवाता है। कथनी व करनी में समानता स्थापित करने के साथ ही उसे बनाए रखने की प्रेरणा भी साहित्य देता है। किसी भी व्यक्ति में इन गुणों को उपलब्ध करवाने की क्षमता रखने वाला साहित्य ही उत्कृष्ट साहित्य की कोटि में आता है।

साहित्य अनुभवों की अभिव्यक्ति है और ये विचार, भावनाएं अनुभव सब परिवेश व समाज से प्राप्त किए हुए होते हैं। चूंकि सृजन को भी प्रेरणा का सहारा तो लेना ही पड़ता है। प्रश्न उठता है कि क्या किसी भी व्यक्ति के जीवनानुभव साहित्य की श्रेणी में जाएंगे? इस पर आचार्य नंददुलारे बाजपेयी साहित्य की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए कहते हैं—“साहित्य से हमारा आशय उन विशिष्ट और प्रतिनिधि रचनाओं से हैं जो समाज और सामाजिक जीवन को भली या बुरी दशा में ले जाने का सामर्थ्य रखती है।”¹ निःसंदेह कह

सकते हैं साहित्य एक सीमा तक समाज को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होता है।

प्रेमचंद साहित्य में सोद्देश्यता के सवाल को बेहद गंभीरता से उठाते हैं। प्रेमचंद का शुरुआती लेखन सुधारवादी दृष्टि का कहा जाता है लेकिन ज्यों-ज्यों प्रेमचंद समकालीन को ज़ब्त करते जाते हैं त्यों-त्यों उनका सुधारवादी दृष्टिकोण यथार्थोन्मुखी होता जाता है। उनके शुरुआती लेखन को किसी भी दृष्टि से पूर्णतया आदर्शवाद या सुधारवाद कहकर नकारा नहीं जा सकता। चूंकि प्रेमचंद ने जब लिखना शुरू किया वो समय भूत-प्रेत, तिल्लसमाती, जादू-एय्यारी का था। लोग इन विषयों से प्रेरणा लेकर लिख रहे थे और इसी से संबंधित विषयों पर कहानियां बड़े चाव से पढ़ी जाती थी।

प्रेमचंद बार-बार उस प्रश्न को उठाते हैं कि साहित्य अंततः करता क्या है? एक गुलाम या आजाद देश के साहित्य का स्वरूप क्या होना चाहिए? वहां का अनपढ़, मजदूर किसान अपने सरोकारों को साहित्य के सरोकारों से कैसे जोड़ सकता है? इसी संदर्भ में वे एक महत्वपूर्ण बात कहते हैं जिससे न सिर्फ भारतीय साहित्य बल्कि दुनिया के किसी भी देश के साहित्य का मूल्यांकन किया जा सकता है। वे कहते हैं—“साहित्य जीवन की आलोचना है।” और जहां साहित्य जैसे ही जीवन से जुड़ता है वहां तुरंत प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

प्रेमचंद के विषय में आसानी से कह दिया

जाता है कि सन् 1930 तक का उनका समस्त लेखन आदर्शवादी एवं सुधारवादी है, अतः उसकी आलोचना की कोई आवश्यकता नहीं। उनका समस्त क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील लेखन तो सन् 1930 के बाद शुरू होता है। ऐसा वे लोग ही कह सकते हैं, जिनकी आस्था महज, परिणाम में है प्रक्रिया में नहीं। ऐसे लोगों के लिए बहुत संभव है कि प्रेमचंद जैसे अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण लेखक के लिए एक दौर के साहित्य को गैर यथार्थवादी और रूमानी कहकर उससे पल्ला छुड़ा लिया जाए, लेकिन जब हम प्रेमचंद के गद्य से मुखातिब होते हैं तो पाते हैं कि प्रेमचंद का यह तथाकथित आदर्शवाद भी यथार्थवादी का ही एक रूप है। यह तो भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का समकालीन यथार्थ है। सन् 1930 के बाद यह यथार्थ भी तेजी से बदलता है और प्रेमचंद के लेखन में भी एक गुणात्मक उछाल नजर आता है।

‘साहित्य का उद्देश्य’ अपने लेख में प्रेमचंद साहित्यिक रुचि में बदलाव को इंगित करते हुए कहते हैं—“अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, अपितु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, उन्हें हल करता है। अब वह स्फूर्ति या प्रेरणा के लिए अद्भुत आश्चर्यजनक घटनाएं नहीं ढूँढता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किंतु उसे उन प्रश्नों से दिलचस्पी है जिनसे समाज या व्यक्ति गहरे प्रभावित होते हैं।”² प्रेमचंद यहां इस बदलाव को बताकर साहित्य के प्रमुख उद्देश्य को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। यहां वे साहित्य से जुड़े समाज व उससे पैदा होने वाले प्रभाव को अहम मानते हैं। साहित्य का उद्देश्य हमेशा रहा है परंतु समय के चलते उसमें बदलाव की जरूरत भी महसूस हुई और वह आवश्यक भी थी, इसी बदलाव की बात यहां प्रेमचंद कर रहे हैं। बिना उद्देश्य लेखन की कोई सार्थकता नहीं है और

बिना सार्थकता कोई महत्ता नहीं है।

साहित्य में साहित्यकार का उतना ही महत्त्व है जितना साहित्य में उद्देश्य का। साहित्यकार वह द्रष्टा होता है जो अपने बीते कल, आज और आने वाले कल की स्पष्ट व्याख्या कर पाता है। यों भी कह सकते हैं कि वह काल का सृष्टा होता है। समय की सही व्याख्या एक सच्चा साहित्यकार ही कर सकता है। साहित्यकार का महत्त्व प्रेमचंद बताते हैं कि—“इसमें शक नहीं कि साहित्यकार पैदा होता है, बनाया नहीं जाता पर यदि हम शिक्षा और जिज्ञासा से प्रकृति की इस देन को बढ़ा सकें, तो निश्चय ही हम साहित्य की अधिक सेवा कर सकेंगे।”³ प्रेमचंद साहित्यकार और समाज के जुड़ाव की बात पर जोर देते हैं। उनके अनुसार समाज से साहित्यकार का जुड़ाव जितना अधिक होगा उतना ही उसका लेखन विश्वसनीय होगा।

प्रेमचंद उपन्यास के क्षेत्र में भी बखूबी उतरे। उन्होंने उपन्यास लिखे ही नहीं वरन् उपन्यास विषय पर लेख भी लिखे। उन्होंने अनेक उपन्यास लिखे यथा—गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि, प्रेमाश्रम आदि तथा सफल भी हुए। प्रेमचंद हर चीज तरीके से करने के शौकीन थे और वही सोच उनकी लेखन शैली में भी दिखती है। अपने लेख ‘उपन्यास का विषय’ में प्रेमचंद उपन्यासकार के संदर्भ में कहते हैं—“उपन्यासकार का प्रधान गुण उसकी सृजन-शक्ति है। अगर उसमें इसका अभाव है, तो वह अपने काम में कभी सफल नहीं हो सकता। उसमें और चाहे जितने अभाव हो पर कल्पना-शक्ति की प्रखरता अनिवार्य है। अगर उसमें यह शक्ति मौजूद है तो वह ऐसे ही दृश्यों, दशाओं और मनोभावों का चित्रण कर सकता है, जिसका उसे प्रत्यक्ष अनुभव नहीं अगर उसमें भक्ति की कमी है तो चाहे उसने कितना ही देशाटन क्यों न किया हो, वह कितना ही विद्वान क्यों न हो, उसके अनुभव का क्षेत्र कितना ही विस्तृत क्यों न हो, उसकी रचना में सरसता नहीं आ सकती।”⁴ प्रेमचंद की रचनाओं के जटिल यथार्थ को

उनके वैचारिक गद्य की रोशनी में और अधिक स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है। प्रेमचंद का समस्त लेखन भारतीय साम्राज्यवाद से संघर्षरत आम भारतीय मनुष्य का इतिहास है। इससे अलग कर न तो इसे समझा जा सकता है और न ही इसकी कोई सार्थक व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है।

प्रेमचंद गांधीजी से बहुत हद तक प्रभावित थे और यही कारण है कि उनके साहित्य में सभी वर्गों के पात्र आजादी की लड़ाई में भाग लेते हुए दिखाई देते हैं। महात्मा गांधी द्वारा सन् 1919 में शुरू किए गए सत्याग्रह आंदोलन और फिर आगे चलकर सन् 1930 में शुरू किए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन में समाज के लगभग सभी वर्गों ने हिस्सा लिया और यह भागीदारी निरंतर व्यापक होती चली गई। गांधीजी ने समाज के सभी वर्गों से इसमें भाग लेने की अपील की थी। सविनय अवज्ञा आंदोलन की घोषणा के बाद उन्होंने आह्वान किया कि—“हर गांव गैर-कानूनी नमक तैयार करे या ले आए, स्त्रियां शराब की दुकानों, अफीम के अड्डों और विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना दें। बूढ़े और बच्चे सभी चरखा कातें। विदेशी वस्त्र जलाए जाएं। हिंदू अस्पृश्यता का त्याग करें। छात्र सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ना छोड़ दें और सरकारी कर्मचारी नौकरियों से इस्तीफा दे दें। हम देखेंगे कि पूर्ण स्वराज हमारे दरवाजे पर दस्तक देता हुआ पहुंच जाएगा।”⁵ आरंभ में छात्र, वकील, किसान आदि ने तो आंदोलन में जमकर हिस्सा लिया ही बाद में बहुत से सरकारी कर्मचारी भी इस आंदोलन में भाग लेने लगे। इस आंदोलन में सबसे प्रमुख बात थी स्त्रियों और दलितों की भागीदारी।

प्रेमचंद के पात्र भी हर क्षेत्र में बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। उनके पात्र उनके विचारों के वाहक हैं। ‘गोदान’ उपन्यास में मेहता ‘उनके विचारों के वाहक’ माने जाते हैं। होरी और मेहता को यदि मिला दिया जाए तो वह व्यक्ति प्रेमचंद ही होगा। प्रेमचंद भाषा के प्रति भी बेहद सजग हैं। वे प्रौढ़ और परिमार्जित

भाषा को साहित्य के लिए उपयोगी मानते हैं। वे अपने लेख 'साहित्य का उद्देश्य' में लिखते हैं—“साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो।”⁶ ऐसी ही भाषा का प्रयोग प्रेमचंद अपने यहां करते हैं।

प्रेमचंद की 125वीं जयंती के अवसर पर मूल्यांकन परिसंवाद का आयोजन किया गया। इसी परिसंवाद में प्रेमचंद के संदर्भ में कई बातें उभरकर सामने आईं।

वरिष्ठ पत्रकार राजकिशोर ने कहा—वैसे ही आदर्शवाद की मांग प्रेमचंद की कहानियों में है जैसे आदर्शवाद की आज जरूरत है। व्यक्तिहीन चरित्र और चरित्रहीन व्यक्तित्व के सवाल पर उन्होंने कहा—“चरित्रहीनता ही व्यक्तित्व का विस्तार है। वस्तुतः चरित्र निर्माण भी प्रेमचंद का एक उद्देश्य था। जैसे क्रांति की जड़ें विषमता में होती हैं, वैसे ही आदर्श की जड़ें यथार्थवाद में हैं।”⁷ ‘बड़े घर की बेटा’ और ‘गोदान’ सरीखी कृतियों का उदाहरण देते हुए विवाह संस्था की अनुपयोगिता का जिक्र किया। राजकिशोर का कहना था कि मनुष्य की मूल समस्याएं ये कालजयी समस्याएं हैं। इनका समाधान खोजने की कोशिश जो लेखक करता है, वही कालजयी लेखक हो सकता है। उन्होंने कहा—प्रेमचंद की ऐसी सैकड़ों कहानियां गिनाई जा सकती हैं जिनमें आदर्शवाद है और यह आदर्शवाद उनकी रचनाओं की रीढ़ है।

प्रोफेसर गोपेश्वर सिंह ने निराला की पंक्तियों को याद करते हुए कहा—‘आज मन पावन हुआ है, जेठ में सावन हुआ है’ की तर्ज पर जुलाई के अलावा नवंबर में प्रेमचंद को याद करना सुखद अनुभव से गुजरना है। कहते हैं—‘प्रेमचंद का पूरा साहित्य आदर्शवाद से मुठभेड़ का साहित्य है, साथ ही यथार्थवाद की तरफ लौटने का।’⁸ प्रो. गोपेश्वर सिंह ने प्रेमचंद के साहित्य में यथार्थवाद का स्थान

बताया।

‘आधुनिकता की कार्यसूची’ पर बोलते हुए उत्तर-आधुनिक व्याख्याकार और मीडिया लेखक प्रो. ‘सुधीश पचौरी’ ने प्रेमचंद के मिथकीय ढांचे को तोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने कहा—प्रेमचंद की रचनाओं में भयानक किस्म की सरलता है, जो उन्हें लोकप्रिय भी बनाती है। यह उनकी कठिनाई भी हो सकती है। आधुनिकता और विकास के संदर्भ में उन्होंने ‘ईदगाह’ कहानी में हामिद के चिमटे को विकास बताया जो पश्चिमी विकास का विरोध है। वह अन्य बच्चों के खिलौने पर हावी रहता है। क्योंकि प्रेमचंद के लिए विकास का तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे उनमें दृढ़ता और कर्मशक्ति उत्पन्न हो, जिससे उनमें अपनी दुखावस्था की अनुभूति हो। हम देखे कि किन अंतर्बाह्य कारणों से हम इस निर्जीवता और हास की अवस्था को पहुंच गए और दूर करने की कोशिश करें। जैसा हामिद ने किया। उससे दादी का दुख देखा नहीं गया, उसने दुख दूर करने का प्रयास किया। हामिद का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा—जिन बच्चों के माता-पिता नहीं होते वे वक्त से पहले परिपक्व हो जाते हैं। साथ ही प्रेमचंद अपनी रचनाओं में ‘इमोशन’ और ‘करुणा’ का इतने जबरदस्त ढंग से प्रयोग करते हैं कि पाठक ‘नैरेशन’ की असंगति पर सोच ही नहीं पाता। वह बहता चला जाता है, जहां लेखक उसे ले जाना चाहे। प्रेमचंद के यहां आधुनिकता का केवल एक ही अर्थ समझ आता है ‘गरीबी दूर हो।’ गोदान की चर्चा करते हुए सुधीश पचौरी ने कहा—“भारतीय किसान की अर्थव्यवस्था का अटूट संबंध गाय से है। उपन्यास की एकाधिक कथाओं को जोड़ने का कार्य भी गाय ही करती है। होरी, किसान से मजदूर होकर मरता है और मजदूरी से सिर्फ इतने पैसे मिल जाते हैं जिनसे अंतिम क्षण में उसे ‘गोदान’ दिया जाता है।”⁹

यही वह दृष्टि है जो प्रेमचंद को अपनी सदी के सर्वाधिक आधुनिक दृष्टि संपन्न लेखकों की फेहरिस्त में शुमार करती है। बदलते हुए समय

और समाज को समझे बगैर कोई भी लेखक महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता और न ही वह कोई महत्त्वपूर्ण कृति रच सकता है। कहना न होगा कि प्रेमचंद इस यथार्थ से बखूबी वाकिफ थे। प्रेमचंद के निबंधों में जनता के प्रशिक्षण का भाव मौजूद है। लेकिन यहां प्रशिक्षण किसी बड़बोलेपन की तरह नहीं बल्कि सच्ची राष्ट्रीय भावना के तहत है। प्रेमचंद जनता के लेखक थे और इसलिए जनता के प्रति एक कर्तव्यबोध उनके लेखन में देखा जा सकता है। किसानों के स्वभाव से वे परिचित थे। वे जानते थे कि शिक्षा का अभाव उनके जीवन में व्याप्त शोषण को मजबूत कर रहा है। उनके सामने शोषण मुक्त और समृद्ध हो रहे रूसी किसानों का उदाहरण है। वे जानते थे कि किसानों की मुक्ति का युद्ध बिना किसानों को प्रशिक्षित किए नहीं लड़ा जा सकता और यही वह वजह है कि किसानों के लिए, आमजन के लिए प्रेमचंद के साहित्य में सीखने लायक बहुत कुछ है। वहां अच्छे बुरे के पारंपरिक भेद पर बल देने की बजाय वर्तमान स्थिति में अच्छे और बुरे की पहचान पर जोर है।

राष्ट्रीय चेतना प्रेमचंद के लेखन में शुरू से ही मौजूद थी। हां यह जरूर है कि जैसे-जैसे प्रेमचंद का लेखन परिपक्व होता गया और दृष्टि साफ होती गई उनकी राष्ट्रीय चेतना साम्राज्यवाद विरोधी चेतना में रूपांतरित होती गई। इसलिए प्रेमचंद के लेखन के परवर्ती दौर में स्वतंत्रता का सीधा अर्थ किसानों-मजदूरों की स्वतंत्रता से है। वे अपने लेखन में जब भी भारत की मुक्ति का प्रश्न उठाते हैं तो वह दरअसल किसानों और मजदूरों की मुक्ति का ही प्रश्न होता है। ‘गोदान’ में मजदूरों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—“मजदूरों की हड़ताल जारी है, मगर अब उससे मिल मालिकों की कोई विशेष हानि नहीं है। नए आदमी कम वेतन पर मिल गए हैं और जी तोड़कर काम करते हैं क्योंकि उनमें सभी ऐसे हैं जिन्होंने बेकारी के कष्ट भोग लिए हैं और अपना बस चलते ऐसा कोई काम करना नहीं चाहते जिससे उनकी जीविका में बाधा पड़े। चाहे जितना काम लो

चाहे जितनी छुट्टियां दो उन्हें कोई शिकायत नहीं, सिर झुकाए बैलों की तरह काम में लगे रहते हैं।¹⁰ जीवित रहने के लिए भारतीय मजदूर और किसान जिस आत्मनिर्वासन की स्थिति में चले गए है, प्रेमचंद का साहित्य उन्हें उस दशा से बाहर लाता है, वह उनमें ग्लानि बोध पैदा करता है ताकि वे संघर्ष के लिए एकजुट हो सके। अगर संघर्ष के लिए अहिंसा का मार्ग असफल हो रहा है तो वे नए मार्ग की तलाश करें। नए मार्ग की खोज संभव है जब दुश्मन का वास्तविक चेहरा सामने आए। प्रेमचंद का साहित्य यही करता है।

‘हंस’ पत्रिका के संपादक, कहानीकार राजेंद्र यादव ‘प्रेमचंद और दलित’ विषय पर कहते हैं—‘प्रेमचंद की विरासत तभी प्रासंगिक हो सकती है जब तक उस दृष्टि और चेतना का उपयोग अपने समय की जरूरतों और संदर्भों में करें।’¹¹ उनका मानना है कि प्रेमचंद द्वारा छोड़ी गई विरासत मां-बाप द्वारा छोड़ी गई विरासत नहीं है कि जो पुराना, टूटा-फूटा घर वे छोड़ गए, वो स्वीकारना ही है बल्कि प्रेमचंद की विरासत में से हमें चुनना है, क्योंकि वे रचनात्मकता के अंतिम मानक नहीं हैं। हमें उनके अधूरे कार्य को पूरा करना होगा क्योंकि वहां सब कुछ ‘परफेक्ट’ ही हो ऐसा नहीं है।

परवर्ती दौर में साहित्य एवं साहित्यकार दोनों को राजनीति से जोड़कर देखने का आग्रह प्रेमचंद दौर के लेखन में अधिक प्रबल हो

जाता है। ब्रेख्त ने कहा था मार्क्सवादी हुए बगैर कोई लेखक नहीं हो सकता। प्रेमचंद कहते हैं—“प्रगतिशील लेखक संघ यह नाम ही मेरे विचार से गलत है। साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है।”¹² सन् 1930 के दशक में साहित्य एवं साहित्यकार के संबंध में प्रेमचंद जहां तक पहुंच जाते हैं, भविष्य के साहित्य का रास्ता वहीं से निकलता है। यही प्रेमचंद के साहित्यिक चिंतन की मूल चेतना है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने कथा साहित्य के अतिरिक्त प्रचुर मात्रा में वैचारिक एवं आलोचनात्मक गद्य लिखा। इन लेखों में उन्होंने समाज, राजनीति, साहित्य संस्कृति एवं दिन-प्रतिदिन की समस्याओं पर गंभीरता से विचार किया है। शुरू में लिखे गए उनके अधिकांश लेख उर्दू पत्र ‘जमाना’ में छपे। इन लेखों का मुख्य विषय साहित्य और संस्कृति है। साहित्य-संस्कृति के मूल्यांकन में प्रेमचंद ‘उपयोगितावाद’ को विशेष महत्त्व देते हैं। प्रेमचंद का समय राष्ट्रीय संघर्ष का समय है। राष्ट्रीय संघर्ष में बार-बार प्रासंगिकता का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो उठता है। प्रेमचंद भी इस प्रश्न को बार-बार उठाते हैं। वे साहित्य की प्रासंगिकता, जीवन की प्रासंगिकता, समाज की प्रासंगिकता और समय की प्रासंगिकता आदि मूलभूत प्रश्नों को आधुनिकता के संदर्भ में सामने रखते हैं।

संदर्भ—

1. प्रेमचंद कथा साहित्य : समीक्षा और मूल्यांकन; धर्मध्वज त्रिपाठी, पृ.-59
2. प्रेमचंद : समाज, संस्कृति और राजनीति; अच्युतानंद मिश्र (संपादन), लोकमित्र प्रकाशन, पृ.-49
3. प्रेमचंद : समाज, संस्कृति और राजनीति; अच्युतानंद मिश्र (संपादन), लोकमित्र प्रकाशन, पृ.-57
4. वही, पृ-67
5. समसामयिक सृजन, त्रैमासिक पत्रिका, सं. महेंद्र प्रजापति, अप्रैल-जून 2013, पृ.-62
6. प्रेमचंद : समाज, संस्कृति और राजनीति; अच्युतानंद मिश्र (संपादन), लोकमित्र प्रकाशन, पृ.-48
7. समय सरोकार, मासिक पत्रिका, सं. डॉ. राजबीर सोलंकी, सितंबर-अक्टूबर 2005, पृ.121
8. वही, पृ.-121
9. वही, पृ.-122
10. प्रेमचंद : समाज, संस्कृति और राजनीति; अच्युतानंद मिश्र (संपादन), लोकमित्र प्रकाशन, पृ.-14
11. समय सरोकार, मासिक पत्रिका, सं. डॉ. राजबीर सोलंकी, सितंबर-अक्टूबर 2005, पृ.-122
12. प्रेमचंद : समाज, संस्कृति और राजनीति; अच्युतानंद मिश्र (संपादन), लोकमित्र प्रकाशन, पृ.-15

एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

संवेदनशील मनुष्य को रचता प्रेमचंद का बाल साहित्य

कविता भाटिया

वरिष्ठ लेखिका कविता भाटिया की दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता लेखन के लिए हिंदी अकादमी से दो बार पुरस्कृत।

बाल साहित्य का अर्थ उस साहित्य से है, जो बालकों और किशोरों के मानसिक स्तर के अनुरूप उनकी जरूरतों को ध्यान में रखकर उन्हें समाज और परिवेश के बारे में सजग करने के उद्देश्य से लिखा गया हो। श्रेष्ठ बाल साहित्य बालकों का केवल मनोरंजन ही नहीं करता वरन् वह उन्हें एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में विकसित होने की स्थितियां भी देता है। 'सुंदर' और 'असुंदर' को समझने की सीख देता है। अतः आवश्यक है कि बाल साहित्य सैद्धांतिक विचारधारा से हटकर बाल मनोविज्ञान पर आधारित हो। बाल साहित्य की सर्जना के समय अक्सर यह दुविधा बनी रहती है कि उसमें कितना यथार्थ हो और वह कितना कल्पना से भरा हुआ हो। तभी तो बच्चों के लिए लिखना केवल एक कला नहीं चुनौती भी है।

हिंदी बाल साहित्य लेखन की ऐतिहासिक परंपरा पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि पंचतंत्र की कथाएं बाल साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इसके साथ हितोपदेश, अमर कथाएं व अकबर बीरबल के किस्से बच्चों के साहित्य में सम्मिलित हैं। विष्णु शर्मा ने पंचतंत्र की कहानियों के माध्यम से शरारती राजकुमारों को अल्प समय में संस्कारित करने के लिए पशु-पक्षियों को माध्यम बनाकर उन्हें शिक्षाप्रद प्रेरणा दी। अरस्तू ने भी माना है—बच्चों की शैतानियों को सीमित और नियंत्रित करने के लिए उन्हें रोचक कहानियां

सुनानी चाहिए। यों देखा जाए तो भारतेंदु युग के पश्चात द्विवेदी युग में बाल साहित्य की रचना नियमित रूप से आरंभ हो चुकी थी। आज बाल साहित्य में जो कुछ भी उपलब्ध दिखता है उसकी आधारशिला उसी युग में रखी जा चुकी थी। उसी युग में स्वयं प्रेमचंद ने बाल मनोविज्ञान को केंद्र में रखकर बाल कहानियों की रचना की। ऐतिहासिक दृष्टि से यह समय भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के अंतर्गत पश्चिमी संस्कृति के विरोध और स्वदेशी की भावना से प्रेरित था। हिंदी के साथ-साथ विभिन्न भाषाओं के रचनाकार भी बड़ों के साथ बच्चों में भी राष्ट्रीय भावना, स्वदेशी चेतना व सामाजिक-नैतिक मूल्यों के विकास के लिए रचनारत थे। प्रेमचंद ने सन् 1930 में 'हंस' के संपादकीय 'बच्चों को स्वाधीन बनाओ' शीर्षक के अंतर्गत लिखा था—“बालक को प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हर एक काम के गुण-दोष को भीतर से देखें...।” स्वयं की इसी कसौटी पर प्रेमचंद की कहानियां बच्चों को मानवीय संवेदनाओं के साथ साथ सामाजिक आचार-विचार, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित का संदेश देती हैं।

बच्चों के साहित्य में ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह होता है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को जितना सहज व उतना आश्चर्यजनक बनाकर कैसे प्रस्तुत किया जाए। इस सहजता व आश्चर्य के सहारे ही हम उन्हें समाज, राष्ट्र, विचारधारा से जोड़ सकते हैं। प्रेमचंद द्वारा रचित आरंभिक कृतियों में **महात्मा**

शेखसादी तथा **रामचर्चा** की गणना की जाती है। **रामचर्चा** नामक पुस्तक में उन्होंने भगवान श्रीराम की कथा को सीधे-साधे शब्दों में लिखकर उनके जीवन और आदर्श से बालकों का परिचय करवाया है। **जंगल की कहानियां** संकलन में बच्चों के लिए 12 कहानियां हैं। जिनमें शेर और लड़का, पागल हाथी, मिट्टू, पालतू भालू, मगर का शिकार तथा जुड़वां भाई आदि कहानियां प्रमुख हैं। **दुर्गादास** नामक ऐतिहासिक उपन्यास वीर दुर्गादास राठौड़ के जीवन की संघर्षपूर्ण वीरगाथा है, जो अपनी मातृभूमि के लिए अपने बलिदान हेतु कृतसंकल्प था। वीर दुर्गादास के जीवन और आदर्शों के वर्णन द्वारा बालकों में देशप्रेम की भावना जागृत करना लेखक का उद्देश्य रहा। इसकी भूमिका में उन्होंने माना है कि—“बालकों के लिए राष्ट्र के सपूतों के चरित्र से बढ़कर उपयोगी साहित्य का कोई दूसरा अंग नहीं है। इनसे उनका चरित्र ही बलवान नहीं होता, उनमें राष्ट्रप्रेम और साहस का संचार भी होता है।” **कलम, तलवार और त्याग**—दो भागों में प्रकाशित इस रचना में लेखक ने राणा प्रताप, रणजीत सिंह, अकबर महान, विवेकानंद, गोपालकृष्ण गोखले, सर सैयद अहमद खां आदि देश के विभिन्न महापुरुषों के प्रेरणादायक और उद्बोधक शब्दचित्र अंकित किए हैं। इन सभी ऐतिहासिक और राजनीतिक नेताओं के चरित्रों के माध्यम से लेखक बच्चों में वीर, उत्साह और देश प्रेम के भाव के साथ सच्ची लगन और अदम्य साहस का बीजवपन भी करना चाहता है जो केवल तत्कालीन समय ही नहीं वरन् आज के भी समय की भी आवश्यकता है। इसके

अतिरिक्त ईदगाह, बड़े भाईसाहब, गुल्ली-डंडा, दो बैलों की कथा, परीक्षा, कजाकी, मंत्र आदि कहानियां भी सम्मिलित की जाती हैं। इस रचना संसार में गांव-कस्बा, शहर, जाति-पाति, हर वर्ग व मानसिक स्तर के भिन्न-भिन्न पात्र हैं जो किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। वस्तुतः प्रेमचंद कथा कहते नहीं रचते हैं। प्रेमचंद की कई बाल कहानियां बाल पाठकों ने अपनी पाठ्य पुस्तकों में पढ़ी हैं, जिससे उनमें साहित्य की पठन रुचि की अभिवृद्धि हुई। लेखक की यह सभी कहानियां हमारे आस-पास के बाह्य जगत के साथ हमारे अंतर्मन की भी अद्भुत सैर करवाती हैं। इनमें पशु-पक्षी, स्थावर-जंगम भी मनुष्य रूप में व्यवहार और बातें करते, अपना निर्णय व्यक्त करते दिखाए गए हैं। चाहे वो **मिट्टू** कहानी का बंदर हो या **पागल हाथी** का मोती हाथी अथवा **दो बैलों की कथा** के हीरा-मोती बैल जैसे यादगार चरित्र।

कुत्ते की कहानी बाल/किशोर उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया अपने कथ्य व शिल्प में अनूठा उपन्यास है जिसे प्रेमचंद ने अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले ही लिखा था। 14 जुलाई सन् 1936 को इसकी भूमिका में बच्चों से बात करते हुए उन्होंने लिखा—“प्यारे बच्चों, तुम जिस संसार में रहते हो वहां कुत्ते बिल्ली ही नहीं, पेड़-पत्ते और ईंट-पत्थर तक बोलते हैं, बिल्कुल उसी तरह जैसे तुम बोलते हो और तुम उन सबकी बातें सुनते हो और बड़े ध्यान से कान लगाकर सुनते हो, उन बातों में तुम्हें कितना आनंद आता है। तुम्हारा संसार सजीवों का संसार है उसमें सभी एक जैसे जीव बसते हैं। उन सबों में प्रेम है, भाईचारा है, दोस्ती है जो सरलता साधु-संतों को बरसों के चिंतन और साधना से प्राप्त नहीं होती... तुम देखोगे कि यह कुत्ता बाहर से कुत्ता होकर भी भीतर से तुम्हारे ही जैसे बालक है। वही प्रेम और सेवा तथा साहस और सच्चाई है, जो तुम्हें इतनी प्रिय है...।”

मानव समाज की विसंगतियों पर सटीक व्यंग्य करता यह बाल उपन्यास केवल मनोरंजन

कथा ही नहीं है बल्कि बच्चों के हृदय में जीव-जंतुओं के प्रति करुणा, सम्मान का भाव जागृत करना भी इसका उद्देश्य है। जीव-जंतुओं का यह जगत लेखक के ग्रामीण परिवेश का ही अटूट हिस्सा है। यह सच है पशु-पक्षियों का संसार बच्चों का प्रिय संसार है। इसलिए ऐसे पात्रों से बच्चे ज्यादा लगाव महसूस करते हैं। इस उपन्यास का नायक ‘कल्लू’ कुत्ता बच्चों में सहयता व संवेदनशीलता का बीजवपन करने में पूरी तरह समर्थ है। यहां लेखक समाज की विद्रूपताओं और भ्रष्ट व्यवस्था की पोल खोलता हुआ बताता है—‘चौधरी बोले—अजी पुलिस का ढकोसला बहुत बुरा होता है, वे भी आकर कुछ न कुछ चूसते ही हैं। मैंने तो इतनी उम्र में सैकड़ों बार इतलाएं की, मगर चोरी गई हुई चीज कभी न मिली।’ यह संवाद बताता है कि देश की पुलिस का चरित्र इतने बरस बीतने पर भी नहीं बदला। तुलसीदास तो बहुत पहले ही कह आए थे ‘पेट की आगि’ सबसे बड़ी है। प्रेमचंद यहां इसे कुछ और स्पष्ट करते हुए कहते हैं—“पेट भी क्या चीज है, इसके लिए लोग अपने पराए को भूल जाते हैं, नहीं तो अपनी सगी माता और अपना सगा भाई क्यों दुश्मन हो जाते।” पेट की इस विवशता के चलते लेखक बच्चों के हृदय में नैतिक मूल्यों, मानवीयता व संवेदनशीलता का स्रोत भी प्रवाहित करना चाहता है।

श्रेष्ठ बाल साहित्य के बारे में धारणा है कि वह बच्चों को गुदगुदाए, उनका मनोरंजन करे। साथ ही उनकी समस्याओं और जिज्ञासाओं का समाधान उपदेश या यथार्थ से हटकर दें। दो अलग-अलग तरह के बाल-मनोविज्ञान को प्रस्तुत करती ‘बड़े भाईसाहब’ कहानी शिक्षण व्यवस्था पर व्यंग्य कर तोता रटंत प्रणाली और परीक्षा पद्धति पर प्रश्नचिह्न अंकित करती है। कहानी को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने छोटे भाई को चुना है। यहां बड़ा भाई परंपरावादी और सिद्धांतवादी है जबकि छोटा भाई समय व परिस्थिति के हिसाब से पढ़ता है और पास होता जाता है। अंत में बड़े भाई साहब लकीर

का फकीर, किताबी कीड़ा और खोखली परंपरा की दीवारों को लांघकर छोटे भाई की कलाई थामे अपनी उमंगों और आकांक्षाओं के आसमान की ओर दौड़ने की ठानते हैं। यहां बड़े भाई की डांट व उपदेश तथा छोटे भाई की शरारतें और उसका भय पूरी तरह से बाल मनोविज्ञान को उजागर करता है—“मैं फटकार और घुड़कियां खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता था”। ‘**दो बैलों की कथा**’ में मोती बदला लेना चाहता है, उस मालिक से जो उसे झूरी के यहां से जबरदस्ती ले आया है, लेकिन उसके मन में तुरंत ख्याल आता है, इससे तो वो बालिका अनाथ हो जाएगी, जो उसे रोटी खिलाती है। यहां हीरा-मोती बैलों के जरिए लेखक अपने मालिक के प्रति वफादारी, आजादी की प्रतिध्वनि, मानवीयता और करुणा को सामने लाते हैं। इस कहानी में जीवों में निकृष्ट, मूर्ख, सीधा कहे जाने वाले गधे की प्रवृत्ति और मनोदशा का वर्णन करते हुए लेखक अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों में सद्गुणों के प्रति आदर भाव को विकसित करना चाहता है—“उसके चेहरे पर विषाद स्थायी रूप से छाया रहता है। सुख-दुख, हानि-लाभ किसी भी दशा में उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वे सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुंच गए हैं पर आदमी उसे बेवकूफ कहता है, सद्गुणों का इतना अनादर”। प्रेमचंद बाल कहानियों की रचना करते समय सदा सजग रहते हैं कि बाल साहित्य सैद्धांतिक विचारभूमि से हटकर सरल सहज बाल मनोविज्ञान पर आधारित हो। स्वयं उन्हीं के शब्दों में—“तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले हो जाए, मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुंदर भावों को जागृत करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं...।”

‘ईदगाह’ के चिरस्मरणीय पात्र हामिद के चरित्र को पढ़कर यह सवाल उठता है इतनी छोटी उम्र का बच्चा यकायक अपनी उम्र से अधिक बड़ा होकर अपनी दादी के प्रति आखिर इतना संवेदनशील कैसे हो गया?

बाल स्वभाव तो चंचल, बेपरवाह और मस्तमौला होता है। मेले में जहाँ अन्य बच्चे अपने लिए खिलौने, मिठाईयाँ लेकर, झूला झूलकर आनंद लेते हैं वहीं हमिद लोहे का चिमटा कैसे ले सकता है? लेकिन यह कहानी मानवीय मूल्यों और बाल मन में जगाती संवेदनाओं की कहानी है। यहाँ बच्चे का अपनी बूढ़ी-निराश्रित दादी के प्रति अगाध प्रेम भी है जो उसे असमय ही परिपक्व बना देता है। यह कहानी बच्चों को एक सीधा सरल संदेश यह भी देती है कि हमें अपनी खुशियों, आनंद और स्वार्थ के साथ-साथ दूसरों के कष्टों और उनकी खुशियों की चिंता भी करनी चाहिए चाहे वे 'फौलादी हथियार' चिमटे के प्रति आकर्षित होते मित्रगण हों या रोटी बनाते समय दादी के जलते हाथों की। इसी तरह 'कजाकी' कहानी एक डाकिए और बालक के निश्चल प्रेम की कथा है। काम में देरी होने पर पिता द्वारा उसे काम से निकाले जाने पर भावुक बच्चे का अहं और मासूम सोच संवेदनशीलता और बाल मनोविज्ञान की एक नई परिभाषा गढ़ती है—“उस वक्त मेरा जी चाहता था कि मेरे पास सोने की लंका होती तो कजाकी को दे देता और बाबूजी को दिखा देता कि आपके निकाल देने से कजाकी का बाल भी बांका नहीं हुआ” या “कजाकी को रोज बुलाने के लिए मेरे पास कोहिनूर

हीरा भी होता जो उसको भेंट करने में मुझे पसोपेश न होता”।

अन्य कहानियों में 'नादान दोस्त' केशव और श्यामा नामक भाई-बहन की कहानी है जो चिड़ियों के अंडों (बच्चों) के लिए खाने-पीने और देखभाल की व्यवस्था करते हैं पर जो अनजाने में ही 'रक्षा में हत्या' का कारण बनती है। बालमन में व्याप्त पक्षी प्रेम सहानुभूति, परोपकार और बाल-नादानी की यह कथा अत्यंत रोचक है।

मित्रता के सरल भाव, उत्साह, अनुशासन तथा जाति वर्ग भेद से परे सख्य प्रेम को दर्शाती 'गुल्ली-डंडा' कहानी लोक प्रचलित पारंपरिक खेल गुल्ली-डंडे को भी स्थापित करती है। परीक्षा नामक कहानी 'जानकीनाथ' के माध्यम से ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, आत्मबल और धीरता की सीख देती है। इसी तरह 'मंत्र' कहानी गरीब फटे-हाल बूढ़े वैद्य भगत के माध्यम से सज्जनता, उदारता, दया और मानवीयता का संदेश देने में पूरी तरह समर्थ है। यह सभी कहानियाँ बच्चों को एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में विकसित होने की स्थितियाँ देती हैं साथ ही उनकी कल्पना शक्ति को भी उर्वर बनाती हैं तथा सामाजिक नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक भी करती हैं।

इन कहानियों की चित्रात्मकता हृदयग्राही

है। सरल भाषा-शैली और संक्षिप्त रोचक सहज संवाद बालमन और ज्ञान के अनुरूप जिज्ञासा का शमन करने वाले हैं। सजीवता, गतिशीलता व नाटकीय तत्व से भरपूर इन कहानियों के संवाद चरित्रों की पूरी छाप छोड़ने में सक्षम है।

आज के बच्चे कंप्यूटर गेम्स और महंगे मोबाइल के छद्म जाल की गिरफ्त में कैद होते जा रहे हैं, जिससे उनमें संयम, धैर्य, उदारता, सौहार्द, मानवीयता, सम्मान जैसे नैतिक मूल्यों का क्षय हो रहा है। वे सकारात्मकता की प्रवृत्ति छोड़ नकारात्मकता की ओर बढ़ रहे हैं। आज हमारा समाज विभिन्न विसंगतियों, वैषम्यों, विद्रूपताओं और विकृतियों से जूझता हुआ नैतिक अवमूल्यन के दौर में गुजर रहा है जहाँ मानवीय संबंध तार-तार हो रहे हैं। जाति, वर्ग, धर्म की छद्म अस्मिताएं अपने ध्वज फहरा रही हैं और सामाजिक संबंधों का ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो रहा है। ऐसे समय में प्रेमचंद के बाल साहित्य की आवश्यकता और बढ़ गई है जो आज के संदर्भ में एक बार फिर बच्चों को दिशा बोध देकर एक अच्छा नागरिक बनने की प्रेरणा दे सकता है, उनमें सकारात्मक मूल्यों का विकास कर सकता है।

हिंदी विभाग, मिरांडा हाउस,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007

प्रेमचंद और फकीर मोहन सेनापति के कथा साहित्य में व्यक्त कृषक जीवन

डॉ. एनी राय

डॉ. एनी राय की अनुवाद पर दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। ओड़िया से हिंदी भाषा के अनुवाद में विशेष रूप से सक्रिय। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

हिंदी कथा-साहित्य में प्रेमचंद और ओड़िया कथा साहित्य में फकीर मोहन सेनापति ऐसे युग-प्रवर्तक रचनाकार हैं जिन्होंने अपने कथा-साहित्य में भारतीय कृषकों की व्यापक तस्वीर पेश की है। दोनों रचनाकारों ने उन परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन अपने साहित्य में किया है, जिनमें भारतीय कृषक संघर्ष करता हुआ, टूटता हुआ, परिस्थितियों से समझौता करता हुआ और अंत में दम तोड़ने को मजबूर होता है।

ओड़िशा प्रदेश के बालेश्वर जिले के मल्लिकाक्षपुर गांव में जनवरी 1843 ई. मकर संक्रांति के दिन फकीर मोहन सेनापति का जन्म हुआ था। ओड़िया भाषा को एक स्वतंत्र पहचान दिलाने में फकीर मोहन सेनापति का योगदान अविस्मरणीय है। ओड़िया भाषा में गद्य साहित्य की शुरुआत फकीर मोहन से मानी जाती है। फकीर मोहन के युग में ओड़िया भाषा में पाठ्य-पुस्तकों का प्रचलन नहीं था। ज्यादातर बंगाली पाठ्य-पुस्तकों का प्रचलन था। इसी कारण वे ओड़िया भाषा में पाठ्य-पुस्तकें लिखने की ओर उन्मुख हुए। 1864 ई. तक उनके जिले में कोई प्रेस नहीं थी। पहली बार उन्होंने अनेक कठिनाइयां झेलते हुए प्रेस की स्थापना की। प्रेस की स्थापना के बाद 'बोधदायिनी' तथा 'बालेश्वर संवादवाहिका' नामक दो पत्रिकाएं शुरू की।

अपने लंबे प्रशासनिक कार्य से सेवानिवृत्त होने के बाद जीवन के उत्तरार्द्ध में फकीर मोहन ने काव्य, कविता, कहानी, उपन्यास आदि की रचना कर अपनी सृजनशील प्रतिभा का परिचय दिया था। उनका पहला उपन्यास 'छः माण आठ गुंठ' न केवल ओड़िया साहित्य की बल्कि भारतीय साहित्य की अनमोल कृति है। इसका प्रारंभ 1897 ई. में किया था और इसका प्रकाशन उत्कल साहित्य पत्रिका में 1899 ई. में हुआ। 1902 ई. में इस उपन्यास का प्रकाशन पुस्तकाकार के रूप में हुआ। इसके अतिरिक्त उनकी दूसरी औपन्यासिक कृतियां 'लछमा' 1913 ई. में और 'मॉमु' 1916 ई. में प्रकाशित हुई। 'प्रायश्चित' फकीर मोहन का अंतिम उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1915 ई. में हुआ।

फकीर मोहन के चार उपन्यास—'लछमा', 'छः माण आठ गुंठ', 'मॉमु' और 'प्रायश्चित' ओड़िशा के लगभग दो सौ वर्षों के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास पर आधारित रचनाएं हैं। 1751 ई. में मराठाओं के ओड़िशा का शासन भार ग्रहण करने के पूर्ववर्ती समय से बीसवीं सदी के प्रथम चरण तक यह सीमा निर्धारित की जा सकती है। ओड़िया साहित्य के जाने-माने समालोचक डॉ. नटवर सामंतराय का मानना है कि, "सेनापति जी के चार उपन्यास ओड़िया सामाजिक जीवन के दो सौ वर्षों का लंबा इतिहास है। इन सभी का स्वतंत्र रूप दिखाई देने पर भी इनमें अंतर्निहित चिंताधारा के भीतर घनिष्ठ ऐक्य के चलते इनको एक बृहत उपन्यास के चार स्वतंत्र विभाग के रूप में ग्रहण करने का मन होता है। ओड़िशा का

सामाजिक जीवन दो सौ वर्षों से जिस उत्थान-पतन के रास्ते पर चल रहा है, उसका सुस्पष्ट चित्र हमें इन उपन्यासों में देखने को मिलता है।" इन चार उपन्यासों के अतिरिक्त फकीर मोहन ने बीस के करीब कहानियां भी लिखी हैं।

प्रेमचंद और फकीर मोहन सेनापति असाधारण व्यक्तित्व संपन्न महान साधक थे, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय जन-जीवन, संस्कृति तथा चेतना को रूपायित करते हुए उन्हें सारी दुनिया के सामने उपस्थित किया, साथ ही भारतीय समाज में फैली रूढ़िवादिता एवं अंधविश्वास को दूर करके यथार्थ मानव मूल्यों की स्थापना भी की है।

प्रेमचंद और फकीर मोहन अलग-अलग समय में लेकिन एक ही युग में पैदा हुए। अपने युग का राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव दोनों रचनाकारों पर समान रूप से पड़ा है। प्रेमचंद के उपन्यासों में खासकर 'गोदान' में और फकीर मोहन सेनापति के 'छः माण आठ गुंठ' में पराधीन भारत में कृषकों की जिन समस्याओं और मुद्दों का चित्रण किया है उन्हीं समस्याओं पर फकीर मोहन ने 'छः माण आठ गुंठ' पर प्रकाश डाला है। दोनों में अंतर यह है कि प्रेमचंद ने जहां अपने कथ्य-साहित्य में पीड़ित जनता की पीड़ा को अधिक गहराई और विस्तृत रूप में व्यक्त किया है वहीं फकीर मोहन की रचनाओं में गहराई होने पर भी विस्तृत वर्णन नहीं है। इसका कारण यह है कि दोनों रचनाकारों के भौगोलिक तथा सामाजिक परिवेश में काफी अंतर है।

प्रेमचंद के साहित्य के क्षेत्र में आगमन तथा भारत में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार और राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप परंपरागत सामाजिक मान्यताओं में अनेक परिवर्तन आने लगे थे। जिसके फलस्वरूप ग्राम्य जीवन की आत्मनिर्भरता में परिवर्तन आने लगा। ग्रामीण समाज शहराभिमुखी हो रहा था और संयुक्त परिवार की संरचना धीरे-धीरे टूटने लगी थी। औद्योगीकरण के कारण घरेलू उद्योग धंधे नष्ट होने के साथ-साथ पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव स्वरूप नए शिक्षित मध्यवर्ग का उदय होने लगा था।

राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप नारी की दशा में अनेक सुधार आने लगे। केंद्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, इंडियन वीमेंस एसोसिएशन, 1913 ई. में गवर्नमेंट रिवोल्यूशन ऑन एजुकेशनल पॉलिसी, 1919 ई. में अनिवार्य शिक्षा विधेयक के प्रचलन से नारी की शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया जाने लगा था, बावजूद इसके समाज में दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, धर्म पर अडिग आस्था, अंधविश्वास, रूढ़ियों का जोरदार प्रचलन था। शहरी बदलाव की बयार से गांव तब भी अछूता था।

ब्रिटिश शासन काल से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर निर्भर थी किंतु बाद में औद्योगीकरण के प्रचलन से लोगों की जीविका के साधन में भी परिवर्तन आने लगा था। लोग अपनी पारंपरिक वृत्ति को छोड़ कर नए व्यवसाय अपनाने लगे थे। नई कृषि नीति के प्रचलन, लगान की व्यवस्था, किसानों पर जमींदारों तथा साहूकारों के अत्याचार से देश की बड़ी आबादी जो कृषि पर निर्भर थी अपनी पारंपरिक वृत्ति को छोड़कर नई वृत्ति अपनाने को मजबूर थी। देश की इस आर्थिक व्यवस्था का प्रत्यक्ष प्रभाव समाज पर पड़ना स्वाभाविक था। प्रेमचंद ने पहली बार अपनी रचनाओं में समाज की इन आर्थिक और सामाजिक विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया है। उनके रचे कृतित्व उत्तर भारत के समूचे समाज का वास्तविक दस्तावेज हैं।

प्रेमचंद और फकीर मोहन सेनापति के जन्मकाल में तीस साल से अधिक समय सीमा का अंतर होने पर भी दोनों ने अपने समकालीन पराधीन भारत का जो यथार्थ चित्रण किया है उनमें कोई खास अंतर नहीं है। जिस प्रकार कथाकार प्रेमचंद की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए उनकी अंतिम रचना 'गोदान' ही काफी है, उसी तरह 'छः माण आठ गुंठ' उपन्यास ही फकीर मोहन को अमर बनाने के लिए पर्याप्त है।

'गोदान' और 'छः माण आठ गुंठ' भारतीय ग्रामीण जीवन की कथाएं हैं, जिनमें से एक में अवध के तथा दूसरे में ओड़िशा के किसानों के सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

गांव के वातावरण में पलने और बढ़ने के कारण ग्रामीण समस्याओं से दोनों अच्छी तरह परिचित थे। इसीलिए जो उन्होंने अपने समय में देखा था, भोगा था, उसे ही अपनी रचनाओं में रूपायित किया है। जहां एक ओर उनके कथा-साहित्य में किसानों का दुःखपूर्ण सरल, आडंबरहीन जीवन है वहीं दूसरी ओर इन किसानों का शोषण करने वाले जमींदारों तथा साहूकारों के विलासमय, वासनायुक्त, अन्यायपूर्ण षड्यंत्र से भरे जीवन का भी चित्रण किया है।

इस संदर्भ में एक बात द्रष्टव्य है कि प्रेमचंद के साहित्य में अवध की और फकीर मोहन के साहित्य में ओड़िशा के कृषकों का यथार्थ चित्रण किया गया है। उस युग में औपनिवेशिक शासन काल के दौरान भारत में इस्तमरारी और रैयतवारी दो अलग-अलग भूमि व्यवस्थाएं विद्यमान थीं। उनमें कुछ क्षेत्रीय भिन्नताएं थीं। इस्तमरारी व्यवस्था के अंदर जीवन व्यतीत कर रहे कृषकों का वर्णन प्रेमचंद की रचनाओं में है और रैयतवारी भूमि व्यवस्था के अंदर जीवन व्यतीत कर रहे कृषकों का वर्णन फकीर मोहन की रचनाओं में है।

प्रेमचंद की रचनाओं में अपने समय में दिखाई देने वाले तीन तरह के कृषकों का यथार्थ चित्रण है। जैसे कुछ कृषक ऐसे थे, जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार होने पर भी वे स्वयं खेती नहीं करते थे। 'गोदान' के पंडित दातादीन ऐसे ही कृषक थे। ये खेती के अलावा यजमानी और लेन-देन का धंधा भी करते थे। दूसरा वर्ग उन कृषकों का रहा है जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार नहीं होता। आर्थिक दबाव के चलते ये दूसरों के खेतों में मजदूरी का काम करते हैं। 'पूस की रात' कहानी का हरखू और 'गोदान' उपन्यास का होरी अंत में दूसरों के खेत में मजदूर बनने को मजबूर होते हैं। इसके अलावा कई कृषक ऐसे हैं जिनको अपनी खुद जोतने का अधिकार होता है और वे लगान भी देते हैं। प्रेमचंद के कथा साहित्य में चित्रित होरी, कादिर, मनोहर, गिरधारी, झिंगुर आदि पात्र ऐसे कृषक हैं जो अपनी जमीन को बचाने की खातिर जी-तोड़ मेहनत करते हैं।

प्रेमचंद के विपरीत फकीर मोहन ने ऐसे कृषकों का चित्रण किया है जिनकी अपनी जमीन जमींदारों द्वारा लूट ली जाती है। फकीर मोहन ने अपने कथा साहित्य में कृषकों के बदले उनको लूटने वाले जमींदारों का यथार्थ चित्रण किया है। 'छः माण आठ गुंठ' का भगिआ, शाम गोछायत ऐसे पीड़ित कृषक हैं जो रामचंद्र मंगराज जैसे शोषक जमींदार के हाथों सर्वस्व लूट लिए जाते हैं।

'गोदान' और 'छः माण आठ गुंठ' दोनों ही उपन्यास चरित्र प्रधान हैं। दोनों उपन्यासों के ज्यादातर पात्र यथार्थ जीवन से लिए गए हैं। इसीलिए दोनों उपन्यासों के चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता के साथ-साथ सरसता भी पाई जाती है। दोनों उपन्यासों की मूल कथा तथा चरित्र गांव के हैं। होरी के चरित्र का विकास बेलारी गांव में होता है और भगिआ का गोविंदपुर शासन में होता है। दोनों के चरित्र पर शहरी प्रभाव नहीं पड़ता। इसीलिए परंपरागत संस्कारों तथा रूढ़िवादिता का प्रभाव दोनों में परिलक्षित होता है। दोनों ही

पात्र अनपढ़, धर्मभीरू इनसान हैं। धर्म की भ्रम धारणा से दोनों ही ठगे जाते हैं। 'छः माण आठ गुंठ' में चित्रित चंपा देवी माता की पूजा से संतान प्राप्ति की लालसा दिखाकर, सारिआ और भगिआ को ठगने में मंगराज की सहायता करती है तो दातादीन धर्म की दुहाई देकर होरी को ठगता है।

होरी और भगिआ दोनों ही किसान सरल स्वभाव के हैं। गोबर का कहना है, "उधर गोई खो बैठे, उधर डेढ़ सौ रुपए डांड के भरे। यह है गऊ होने का फल।" भगिआ के बारे में फकीर मोहन का कहना "उसे साग कहो हां, दाम कहो, हां।"²

जहां तक प्रेमचंद और फकीर मोहन के कथा साहित्य में चित्रित किसान जीवन का प्रश्न है पहली बार हिंदी साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद और ओड़िया साहित्य के क्षेत्र में फकीर मोहन की दृष्टि समाज के इस अवहेलित वर्ग की ओर पड़ी। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद और ओड़िया साहित्य के क्षेत्र में फकीर मोहन के बाद या उससे पहले ऐसा साहित्यकार पैदा नहीं हुआ, जिसने किसानों की पूरी समस्या, उनके जीवन से संबंधित छोटी-सी-छोटी घटनाओं और जीवनानुभवों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया हो।

'गोदान' उपन्यास में जैसे होरी संपूर्ण उत्तर भारत के किसानों का प्रतिनिधित्व करता है, वैसे ही 'छः माण आठ गुंठ' में चित्रित भगिआ संपूर्ण ओड़िशा के किसानों का प्रतिनिधित्व करता है। जैसे होरी की एक ही अभिलाषा थी कि उसके द्वार पर पछाई गाय बंधी दिखे, जो एक किसान की मर्यादा की प्रतीक थी और उसी अधूरे सपने के चलते जमींदार से लेकर गांव के महाजन तक सभी ने कभी धर्म के नाम पर तो कभी बिरादरी के नाम पर उसका आजीवन शोषण किया, वैसे ही भगिआ और सारिआ नामक निःसंतान जुलाह दंपति की संतान प्राप्ति की लालसा को अस्त्र बनाकर धर्म के नाम पर, अंधविश्वास के चलते जमींदार मंगराज और उसकी रखैल चंपा भगिआ की छः माण आठ गुंठ जमीन हड़ने

में सफल हुए। सारिआ की मौत अपनी गाय नेत से बिछुड़ने के कारण हुई थी। दरअसल सारिआ की स्वाभाविक मौत नहीं हुई थी। जमींदार मंगराज ने पीट-पीट कर उसकी हत्या की थी। 'गोदान' में चित्रित जमींदार राय अमरपाल सिंह से 'छः माण आठ गुंठ' में चित्रित रामचंद्र मंगराज अधिक क्रूर और प्रजा शोषक थे।

प्रेमचंद और फकीर मोहन दोनों ने जमींदारों और महाजनों द्वारा किसानों के आर्थिक और सामाजिक शोषण का यथार्थांकन किया है। जिस प्रकार प्रेमचंद ने 'सेवासदन' उपन्यास में सामंतवादी और औपनिवेशिक समाज में जमींदारों की प्रकृति में भिन्नता पर प्रकाश डाला है, उसी प्रकार फकीर मोहन के 'छः माण आठ गुंठ' का बाघ सिंह, 'मॉमु' का उत्तरराय और 'प्रायश्चित' का वैष्णव चरण उन सामंतवादी जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो काफी हद तक अपनी आसामियों के प्रति संवेदनशील थे। इसके विपरीत 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर और 'गोदान' के राय अमरपाल सिंह की तरह 'छः माण आठ गुंठ' का रामचंद्र मंगराज, 'मॉमु' का नटवर दास और 'प्रायश्चित' का संकर्षण महाति उन औपनिवेशिक जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो दूसरों की जमींदारी को किसी प्रकार खरीदकर अथवा हथिया कर जमींदार बने थे। ये नए वर्ग के जमींदार अधिक प्रजा शोषक और अर्थलोलुप इनसान थे जो अपने स्वार्थ की खातिर किसी भी हद तक नीचे गिर सकते हैं।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास में मनोहर ने पुराने और नए जमींदारों में अंतर बताते हुए कहा है, "भैया, तब की बातें जाने दो। तब साल-साल की देन बाकी पड़ जाती थी। मुदा मालिक कभी कुड़की बेदखली नहीं करते थे। जब कोई कामकाज पड़ता था, तब हमको नेवता मिलता था। लड़कियों के ब्याह के लिए उनके यहां से लकड़ी, चारा, और 25 रुपए बंधा हुआ था। यह सब जानते हो कि नहीं, जब वह अपने लड़कों की तरह हमें पालते थे तो रैयत

भी हंसी-खुशी उनकी बेगार करती थी। अब ये बातें तो गई, बस एक न एक पच्चड़ लगा रहता है।"³

फकीर मोहन सेनापति ने रामचंद्र मंगराज के जरिए तत्कालीन जमींदारों की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि, "उनसे दूसरों का करुण क्रंदन न देखा जाता। इसीलिए अनाज, रुपया आदि उधार देते थे, इनसे उनका अपना कोई फायदा नहीं होता। सिर्फ देते समय सूखे धान ब्याज में देते थे और लेते समय नए कच्चे धान लेते थे।"⁴

दूसरों का खेत हड़पना जमींदारों के शोषण की मूल प्रवृत्ति थी। इस बारे में फकीर मोहन ने व्यंग्य शैली में कहा है, "मंगराज के मौसेरे भाई श्यामलाल मल्ल शहर गए थे। वहां वे प्याज से बनी गोभी की सब्जी खाने के कारण जात जाने का अभियोग में दंडित हुए। इस अभियोग से मुक्त होने के लिए समाजपति के धर्म विचार में श्याममल्ल अपने पैतृक संपत्ति से पंद्रह एकड़ जमीन बेचने को मजबूर हुए। धर्मपुरुष मंगराज ने 5 रुपए एकड़ की दर से सारी संपत्ति अपने नाम करते हुए उसके सामने अपनी शेखी बघारी कि कोई दूसरा श्याम मल्ल के ऊपर ऐसी करुणा नहीं करता। सिर्फ अपनी धार्मिकता तथा भातृ वत्सलता के कारण मंगराज ने ऐसा दयावंत काम किया।"⁵ कहा जाता है कि मंगराज ने चारों ओर के चौकोसी में किसी के पास गोपद भर भी धरती नहीं रहने दी।"⁶

बीसवीं शताब्दी में फैलने वाली सूदखोरी प्रथा में सर्वाधिक शोषण किसानों का हुआ, जिसका यथार्थांकन प्रेमचंद के कथा साहित्य में हुआ है। 'गोदान' में जमींदार एक है पर महाजन कई—दुलारी साहुआइन, मगरूशाह, दातादीन पंडित और झिंगुरी सिंह। होरी की हालत उपन्यास में झिंगुरी सिंह के आगमन के बाद ही बिगड़ती है। होरी खुद अनाज ढो-ढो कर झिंगुरी सिंह की चौपाल में रखता है, अपने घर को अस्सी रुपए पर झिंगुरी सिंह के यहां गिरवी रखता है। ऊख की तौल शुरू होते ही झिंगुरी मिल के फाटक पर आसन जमा

लेता है। होरी को ऊख के जो एक सौ बीस रुपए मिलते हैं, उनमें से झिंगुरी सिंह अपने पूरे रुपए सूद समेत काट लेते हैं। होरी एक कर्ज चुकाए बिना दूसरा कर्ज लेने पर विवश है। “इस फसल में सब कुछ खलिहान में तौल देने पर अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज था जिस पर कोई सौ रुपए सूद के बढ़ते जाते थे। मगरू सा से आज पांच साल हुए बैल के लिए साठ रुपए लिए थे, उसमें साठ दे चुका था पर वह साठ रुपए त्यों बने हुए थे। दातादीन पंडित से तीस रुपए लेकर आलू बोए थे। आलू तो चोर खोद कर ले गए और उस तीस के तीन बरसों में सौ हो गए थे।”⁷

मंगराज अपने आसामियों को उनके खेत, खलिहान और घरों से वंचित करता था यहां तक कि वह आसामियों के खेत में रोपे हुए धान के बिरवों तक को नहीं छोड़ता था। ‘छः माण आठ गुंठ’ में फकीर मोहन ने क्रूर जमींदार मंगराज के शोषण का यथार्थ चित्रण व्यंग्य शैली में इस प्रकार किया है। “श्याम गोछायत नीच जाति का किसान था। उसका खेत गांव के निचले हिस्से में था। खेत की बुआई हो चुकी थी। श्याम अपने खेत पर मेंड बांध रहा था, मालिक उसके पास खड़े हुए। धीमी आवाज में बोले—‘क्यों रे श्याम!’ श्याम मालिक को देखकर चौंक गया। हाथों से कुदाल दूर फेंक कर झट से कीचड़ में लोट कर प्रणाम किया। अरे उठ-उठ! मालिक ने स्नेह भरा संबोधन किया। श्याम उठा और हाथ जोड़कर दस हाथ परे दूर खड़ा रहा।... इसी बीच अकस्मात् मालिक की नजर श्याम के खेत पर पड़ी। वह चौंक गए। सरपरस्ती जताते हुए बोले, ‘अरे श्याम!’ यह क्या कर डाला? तू तो निरा उल्लू निकला रे! खेती-बाड़ी के बारे में तुझे तो कुछ पता नहीं। अरे इतना घना रोपने से क्या अनाज उगेगा। पौधों को सांस लेने तक की जगह नहीं छोड़ी, उखाड़-उखाड़, आधे से ज्यादा उखाड़ डाल। गोविंद अच्छी तरह देख-परख कर मालिक की हां में हां मिलाता था। श्याम थर-थर कांपते हुए हाथ जोड़कर बोला, ‘जी, मैं तो हर साल इसी तरह रोपता हूं। सभी इसी तरह रोपते हैं। मालिक

चिढ़कर बोले, ‘अरे उल्लू कहीं का! भला कहे तो सुनता नहीं और मुड़ कर गोविंद से कहने लगे, ‘अरे गोविंद, दिखा तो दे इसे।’ इनके मुंह से बात निकले कि नहीं गोविंद और पांडिया जुट पड़े और दोनों क्यारियों से आधे से ज्यादा अनाज छांट कर उखाड़ फेंका। श्याम चीख मार कर रोता हुआ मालिक के चरणों में पड़ा रहा।”⁸

‘सेवासदन’ से लेकर ‘गोदान’ तक प्रेमचंद ने जितने भी किसानों का चित्रण किया है उनमें होरी को छोड़कर ज्यादातर किसानों में विद्रोह भाव देखने को मिलता है। लेकिन फकीर मोहन के किसानों में विद्रोह की भावना उतनी नहीं है। इसका कारण है कि फकीर मोहन के कथा साहित्य में चित्रित किसान बहुत पहले के हैं। प्रेमचंद ने जब अपने कथा साहित्य में किसानों का चरित्रांकन किया था, तब अवध में किसान आंदोलन बड़े जोर-शोर से था। फकीर मोहन के समय ओड़िशा में वैसे किसी आंदोलन का सूत्रपात नहीं हुआ था और निरीह किसान अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं थे। लेकिन फकीर मोहन की इतनी दूरदृष्टि थी कि उन्होंने अपने निरीह, शोषित किसान पात्रों में विद्रोह का भाव जगाया है। ‘छः माण आठ गुंठ’ का भगिआ भी जमींदार से विद्रोह करता है। सारिआ भी मौन रूप से जमींदार का विरोध करती है। फकीर मोहन कृत ‘मॉमु’ उपन्यास में चित्रित हरिबोल बरिक् भी शोषक नटवर दास के विरुद्ध खड़ा होता है।

प्रेमचंद और फकीर मोहन दोनों उपन्यासकारों ने धर्म की आड़ में किसानों का शोषण करने वाले जमींदारों, महाजनों, साधु-संन्यासियों की बखिया उधेड़ी है। ‘सेवासदन’ के रामदास और ‘कर्मभूमि’ के महंत आशाराम गिरि, ‘छः माण आठ गुंठ’ के रामचंद्र मंगराज इसी वर्ग में आते हैं। मंगराज ने धर्म की आड़ में संतान प्राप्ति की लालसा दिखाकर सारिआ से उसकी छः माण आठ गुंठ की जमीन हड़प ली। भगिआ और सारिआ की जमीन हड़पने के लिए मंगराज की रखैल चंपा ने संतान प्राप्ति

की लालसा दिखाकर और विधवा होने का भय दिखाकर सारिआ को माता का मंदिर बनवाने हेतु राजी किया। पहले सारिआ जमीन बेचने के लिए राजी नहीं होती थी। चंपा के जमीन गिरवी रखने को बाध्य करने पर सारिआ कहती है—“मैं क्या करूंगी? लोग कहते हैं, एक बार मालिक जमीन लिखवा लेने पर नहीं लौटाते।”⁹ सारिआ के इस कथन में अपनी जमीन छीन लेने के डर से आतंकित एक नारी की अंतर्व्यथा है जिसमें अपने समकालीन समाज की अंतर्वेदना प्रतिध्वनित होती है। मंदिर बनवाने के लिए भगिआ और सारिआ की छः माण आठ गुंठ जमीन मंगराज के पास बंधक रखी गई। छः महीने की मियाद पूरे होते ही मंगराज ने उनकी जमीन अपने कब्जे में ले ली और नीलामी में उनका घर हथिया लिया। यही नहीं सारिआ को अपने प्राणों से प्यारी नेत गाय से भी हाथ धोना पड़ा।

किसानों का शोषण करने वालों में जमींदारों के अलावा महाजन भी अन्यतम हैं। प्रेमचंद तथा फकीर मोहन दोनों ने इनकी शोषण पद्धति को अच्छी तरह दिखाया है। प्रेमचंद ने ‘गोदान’, ‘मंगलसूत्र’ उपन्यास तथा ‘सवा सेर गेहूं’, ‘पूस की रात’ आदि कहानी में और फकीर मोहन ने ‘छः माण आठ गुंठ’, ‘मॉमु’ उपन्यास तथा ‘अधर्मवित्त’ कहानी में महाजन नामक शोषक वर्ग का यथार्थ चित्रण किया है। ‘छः माण आठ गुंठ’ का रामचंद्र मंगराज जमींदार के साथ-साथ एक महाजन भी है। ‘अधर्मवित्त’ कहानी में फकीर मोहन ने कुबेर साहू चरित्र के माध्यम से महाजन की पोल खोली है। लेकिन फकीर मोहन के द्वारा चित्रित इन महाजनों के प्रति किसानों में असंतोष का भाव होने पर भी विद्रोह का भाव देखने को नहीं मिलता। इसके विपरीत प्रेमचंद के ‘कर्मभूमि’ उपन्यास और ‘महाजनी सभ्यता’ लेख में किसान आंदोलन के प्रभाव से किसानों में दिखाई दे रहे महाजनों के प्रति विद्रोह की भावना का उल्लेख है।

प्रेमचंद और फकीर मोहन दोनों कथाकारों ने किसानों के शोषण करने वाले जमींदार

तथा महाजनों के अलावा पुलिस, वकील, कारिंदा, चपरासी, पटवारी आदि सभी सरकारी कर्मचारियों का यथार्थ चित्रण किया है। इन दोनों कथाकारों के चित्रण में ज्यादातर समानताएं देखने को मिलती हैं जैसे कि प्रेमचंद के कथा साहित्य में कारिंदा गौस खां और फैजुल्लाह हैं जो सामंती शोषकों का प्रतिनिधित्व करते हैं, चपरासी जो कारिंदों के हुक्म पर किसानों की मुश्कें बांधते और उनके घर जलाते हैं, गांव का बनिया जो किसानों को फंसाने के लिये पुलिस का गवाह बनकर झूठी गवाही देता है, तहसीलदार जो किसानों को उनके घर से खींचकर जबरन बेगार लेता है, पुलिस के सिपाही जो बेगार से इनकार करने वाले किसानों को जूते और लाठियों से पीटते हैं, पुलिस का कारिंदा दयाशंकर जो कारिंदे के साथ मिल कर किसानों को झूठे मुकदमों में फंसाता है और उनसे रिश्वत वसूलता है, बैरिस्टर इरफान अली जो दौलत के लालच के कारण निर्दोष किसानों के मुकदमे में कोई दिलचस्पी नहीं लेता, डॉक्टर प्रियनाथ जो पुलिस के दबाव में जमींदार का पक्ष लेकर लाश के पोस्टमार्टम की झूठी रिपोर्ट देता है आदि पात्रों की भरमार है जो किसानों का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से शोषण करते हैं।

प्रेमचंद के कथा साहित्य की तरह फकीर मोहन के कथा साहित्य में भी समाज में फैलने वाले इन पाखंडों का चित्रण किया गया है जैसे कि 'छः माण आठ गुंठ' में चित्रित वकील रामलाला के जरिए फकीर मोहन ने तत्कालीन समाज में दिखने वाले धोखेबाज, पाखंडी वकील का चित्रण किया है। रामलाला बड़ी चालाकी से जमींदार मंगराज का केस लड़ने के लिए उसे उसकी जमींदारी अपने नाम लिखवाने के लिए मजबूर करता है— "सुनो मंगराज, ये मामला बहुत ही पेचीदा है। चपरासी से लेकर हाकिम तक सबका मुंह बंद करना होगा। ऐसे संगीन मामले में कोई दूसरा वकील होता तो दस हजार में भी नहीं मानता। वो तो मैं हूँ जो इसमें दिमाग लड़ाने को राजी हूँ। आपने जब मुझे बाप जैसा मान है

तो मैं थोड़े ही आपको डूबने दूंगा। इस मामले में जो खर्च होगा, मैं करूंगा। दस हजार रुपए से कम खर्च न होगा। आप अपनी जमींदारी मेरे नाम पर दें। ऐसा तो नहीं कि सारे रुपए कोर्ट-कचहरी में खर्च हो जाएंगे। आपके रिहा होते ही मैं कौड़ी-कौड़ी का हिसाब आपको समझा दूंगा।"¹⁰

प्रेमचंद और फकीर मोहन दोनों कथाकार भाग्यवादी हैं, लेकिन जीवनकाल के उत्तरार्द्ध में प्रेमचंद में विसंगतियों के प्रति विद्रोह की भावना दिखाई देने लगी थी जिसका उदाहरण 'गोदान' में चित्रित आने वाली पीढ़ी का प्रतीक गोबर है। प्रेमचंद के विपरीत फकीर मोहन का मानना है कि पाप का घड़ा जरूर फूटता है। पापी को अवश्य प्रायश्चित्त करना पड़ता है, ईश्वर उसे जरूर दंड देते हैं। 'छः माण आठ गुंठ' के रामचंद्र मंगराज, 'मोमु' के नटवर दास से लेकर 'अधर्मवित्त' कहानी के कुबेर साहू का अंत इसका उदाहरण है।

प्रेमचंद और फकीर मोहन दोनों कथाकारों के कथा साहित्य में चित्रित किसान धर्मभीरू हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 'गोदान' के होरी और 'छः माण आठ गुंठ' के चरित्रों के माध्यम से देखे जा सकते हैं। धर्म की आड़ में उन पर गांव के जमींदार से लेकर पुरोहित तक सभी शोषण करते हैं।

प्रेमचंद और फकीर मोहन दोनों रचनाकारों ने किसानों की सबसे बड़ी दुर्बलता उनमें एकता का अभाव और आपसी द्वेष, ईर्ष्या, कलह आदि पर प्रकाश डाला है। 'छः माण आठ गुंठ' में जब भगिआ को रामचंद्र मंगराज घर से बेघर कर रहे थे तब उसके समक्ष कोई खड़ा नहीं हुआ। प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रय' और 'गोदान' में किसानों की इन दोषों और दुर्बलताओं पर प्रकाश डाला है।

प्रेमचंद और फकीर मोहन सेनापति के कथा साहित्य में चित्रित कृषक जीवन की जब हम तुलना करते हैं तो मुख्य साम्य यह है कि यद्यपि दोनों रचनाकारों के कथा-साहित्य में

चित्रित कृषकों में प्रादेशिक भिन्नता है लेकिन उनकी सामाजिक और प्रमुख रूप से आर्थिक समस्या एक ही समान है।

पर इतना लंबा अरसा गुजर जाने के बाद भी प्रेमचंद और फकीर मोहन सेनापति की प्रासंगिकता बरकरार है, कारण तरक्की के तमाम सोपानों को छू लेने के बाद भी शहर से गांव की दूरी जस की तस है। कृषक-मजदूर आज भी शोषित हैं। जमींदार की जगह सरकारी अमला व नीतियों ने ले ली हैं, इसलिए यह विचार करना जरूरी है कि भले ही आज परिस्थिति बदल चुकी है पर शिल्पकार, दस्तकार, कृषक, मजदूर आदि को लेकर जो राष्ट्रीय चेतना बनी थी वह आज कहां चली गई? गांव और शहर में जो अंतर्विरोध था वह आज किस स्थिति में है? पहले देश की आर्थिक स्थिति कृषि पर निर्भर थी, लेकिन अब स्थिति बदल चुकी है। आज भूमंडलीकरण के दौर में समाज दर्शन से कृषक गायब हो गया है। विस्थापन और बेरोजगारी की तेज गति शहरीकरण को बढ़ावा दे रही है लेकिन इसमें वह ढंग का शहर भी नहीं बन पाता। हाशिए पर, झुग्गी-झोंपड़ी में रहने को वो अभिशप्त हैं। आज साहित्य में कृषक नहीं है तो इसलिए कि यह जो नया मध्यवर्ग है वह उनकी परेशानियों के बारे में बेखबर है। जब इस ग्राम्य व्यवस्था के विघटन की शुरुआत हुई थी, तब हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद और ओड़िया कथा साहित्य में फकीर मोहन ने इसको विषय बनाया।

प्रेमचंद और फकीर मोहन के कृषक आज के हिंदी और ओड़िया कथा साहित्य में भले ही कम दिखाई दें लेकिन आज के भारतीय गांवों में उनकी संख्या बढ़ी है, उनका दुःख भी बढ़ा है, उनके शोषण, दमन और लूट की स्थितियों में भी इजाफा हुआ है। प्रेमचंद और फकीर मोहन के कथा साहित्य में कृषकों की मौत के चित्र हैं। 'बलिदान' कहानी में गिरधारी आत्महत्या करता है, 'पूस की रात' कहानी में हल्कू आत्महत्या तो नहीं करता,

लेकिन अपनी आत्मा की हत्या करता है। 'गोदान' का होरी ऋण की यातना से गुजरते हुए लगभग आत्महत्या करता दिखाई देता है। 'छः माण आठ गुंठ' में भगिआ जमींदार के अत्याचार से पागल हो जाता है अंत में उसकी मौत भी होती है। रामचंद्र मंगराज ने पीट-पीट कर सारिआ की हत्या की थी। आज के समय में भारत में बड़े पैमाने पर कृषकों की असमय मृत्यु हो रही है।

भारतीय कृषकों के ऋण की समस्या प्रेमचंद और फकीर मोहन दोनों रचनाकारों के सामने थी, आज वह अति विकराल रूप में कृषकों के सामने है।

पर तमाम लेखन, पत्र-पत्रिकाओं, इलैक्ट्रॉनिक मीडिया और सिनेमा के परदे पर आ जाने व छा जाने के बावजूद 'मदर इंडिया' से लेकर

'पिपली लाइव' फिल्म तक कृषक प्रेमचंद और फकीर मोहन सेनापति के पात्रों की तरह मुख्यधारा का पात्र नहीं बन पाया है, तो उसके पीछे युग का अंतर नहीं, (कारण कृषक के लिए तो माहौल वहीं है) बल्कि रचनाकारों की अपनी सीमाएं हैं। महाश्वेता देवी, आशापूर्णा देवी, अरुंधति राय जैसे कई लेखक जरूर इस तबके के साथ खड़े दिखाई देते हैं, पर वे अपने पात्रों के साथ भी इस कृषक समाज के लिए उसी शिद्दत से मौजूद हों, जितने प्रेमचंद व फकीर मोहन सेनापति थे, ऐसा नहीं लगता। कृषक समाज के अपने और अपने पात्रों के साथ खड़ा होने की यह हिमाकत आज के दौर में भी प्रेमचंद व फकीर मोहन सेनापति के जीवंत रहने का आधार है और यही उनकी खासियत है और प्रासंगिकता भी।

संदर्भ—

1. गोदान, प्रेमचंद, पृ. 215
2. छः माण आठ गुंठ, फकीर मोहन ग्रंथावली, पृ. 250
3. प्रेमाश्रम, प्रेमचंद, पृ. 14-15
4. छः माण आठ गुंठ, फकीर मोहन ग्रंथावली, पृ. 8
5. छः माण आठ गुंठ, फकीर मोहन ग्रंथावली, पृ. 5
6. छः माण आठ गुंठ, फकीर मोहन ग्रंथावली, पृ. 6
7. गोदान, प्रेमचंद रचना, खंड-छः, सं. राम आनंद, जनवाणी प्रकाशन प्रा. लि., पृ. 38
8. छः माण आठ गुंठ, फकीर मोहन ग्रंथावली, पृ. 12
9. छः माण आठ गुंठ, फकीर मोहन ग्रंथावली, पृ. 55
10. छः माण आठ गुंठ, फकीर मोहन ग्रंथावली, पृ. 97

138, उदय पार्क, नई दिल्ली-110049

प्रेमचंद के साहित्य में यथार्थ का स्वरूप

डॉ. संगीता त्यागी

डॉ. संगीता त्यागी : सत्यवती कॉलेज में असिस्टेंट प्रोफेसर और युवा लेखिका डॉ. संगीता त्यागी कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं। आलेख लेखन के अलावा कविता, कहानी के क्षेत्र में भी सक्रिय।

साहित्य अपने युग का प्रतिबिंब और उसका स्रष्टा होता है। वह एक ऐसी प्रवाहमान नदी की भांति होता है, जहां ठहराव का कोई प्रश्न ही नहीं है। जिस प्रकार नदी का जल अपनी सरसता से धरती की तपन बुझा कर उसे हरीतिमा से संपन्न करता है, उसी प्रकार साहित्य मानव जीवन को गौरवमंडित करता है। मनुष्य के मस्तिष्क में जन्म लेने वाले मौलिक विचारों की भांति साहित्य के अध्ययन की संभावनाएं भी उन्नत हैं। साहित्यकार का मस्तिष्क ज्ञान का एक ऐसा सागर होता है जिसमें नए-नए विचारों की लहरें निरंतर उत्पन्न होती रहती हैं। यही कारण है कि इतना समय बीत जाने पर भी प्रेमचंद साहित्य में आज भी अनेकों संभावनाएं, नए विचार, नई राहें दिखाई देती हैं। प्रेमचंद का साहित्य उनके युग का प्रतिबिंब, उसका एक स्पष्ट चित्र है तो दूसरी ओर उन्होंने एक युग का निर्माण भी किया है। यह साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से सामंतशाही के अभिजात्य में बदले का सक्रांति काल था। यह प्रेमचंद के साहित्य को नई दिशा प्रदान करने वाला पहला संकेत और आंदोलन है। उन्होंने अपने साहित्य में अपने युग का सही चित्र प्रस्तुत करके अपने उपन्यासों में ऐसे संकटकालीन युग में लाखों किसान की मनःस्थिति और विचारों के साकार रूप दिया है, जबकि पूंजीवादी सभ्यता प्राचीन ग्राम व्यवस्था को

छिन्न-भिन्न कर रही थी और किसानों का गला घोट रही थी।

उन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से मानव जीवन को एक ऐसा संदेश प्रदान किया जो सदैव अक्षुण्ण रहेगा। वे मानव के अतीत, वर्तमान और भविष्य की समग्र स्थितियों के प्रति सदैव चिंतित रहे। डॉ. राजेंद्र कुमार ने प्रेमचंद के साहित्य से प्रभावित होकर कहा है कि “उनकी जीवन दृष्टि का अनुभवगत आधार बहुत संपन्न था और उनकी रचनाशीलता उनकी जीवनदृष्टि के संपूर्ण वैभव को आयत्त करने में कहीं नहीं चूकती प्रतीत होती। यह प्रेमचंद के लेखन की कोई आकस्मिक उपलब्धि नहीं है। वे उपन्यास या कहानी में कलम अजमाने वाले लेखक नहीं थे बल्कि एक सजग कलाकर थे। प्रेमचंद से पूर्व हिंदी उपन्यास विलास प्रधान थे और वे एक संकुचित वर्ग के दिल बहलाने के लिए लिखे जाते थे। उनमें जनता के दलित वर्गों के सुख-दुख की कथा न थी, वास्तविक जीवन के प्रश्नों की चर्चा न थी, समाज की यथार्थता का परिचय न था और न ही जीवन की व्याख्या करने तथा उसे और अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास था। प्रेमचंद ने उसे आवश्यक मोड़ देकर जीवन के साथ जोड़ दिया।”

प्रेमचंद का समग्र कथा साहित्य मानवीय आदर्शों से ओतप्रोत है। प्रेमचंद के साहित्य रचना का उद्देश्य व्यक्ति जीवन में मानवीय आदर्शों की स्थापना करना रहा है, क्योंकि वे जानते थे कि इन उदात्त आदर्शों के अभाव में हम व्यक्ति को किसी भी उर्ध्वगामी उद्देश्य के लिए प्रेरित नहीं कर सकते। प्रत्येक लेखक

का अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। रुचियों की भिन्नता के होते हुए भी साहित्य की बुनावट और बनावट पर ये बहुरूपी रुचियां अपना अलग-अलग मत प्रकट कर सकती हैं, पर मानव पीड़ा में एक ऐसा बिंदु है जिस पर सभी साहित्यकारों के एक ही मत होने की संभावना है। प्रेमचंद ने अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कहा, “मनुष्य में जो कुछ सुंदर है, विशाल है, आदरणीय है, आनंदप्रद है, साहित्य उसी की मूर्ति है। उसकी गोद में उसे आश्रय मिलना चाहिए जो निराश्रय है, जो पतित है, अभावग्रस्त है।”

प्रेमचंद जी ने अपने कथा साहित्य द्वारा तत्कालीन युग को वाणी दी, साहित्य को नई प्रेरणा दी। उनके उपन्यासों में देश की तत्कालिक सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण मिलता है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य जीवन में एक दर्जन उपन्यासों की रचना की जिनमें प्रमुख हैं ‘रूठी रानी’, ‘वरदान’, ‘प्रतिज्ञा’, ‘गबन’, ‘कर्मभूमि’, ‘गोदान’, ‘मंगलसूत्र’। उन्होंने वर्ग चेतना के प्रकाश में समाज के पतन और विकासशील शक्तियों को पहचाना और समाज के स्वस्थ निर्माण के लिए अपने उपन्यास के माध्यम से विकासशील शक्तियों को सक्रिय योगदान प्रदान किया। एक जनवादी साहित्यकार की भांति उन्होंने जनभावना का प्रतिनिधित्व किया और शोषित और पीड़ित मानवता के दुःख-दर्द को वाणी प्रदान की। वास्तव में मानव पीड़ा की मूल समस्या ही प्रेमचंद के कथा साहित्य में विविध रूप में छाई हुई है। उन्होंने अभिजातवर्गीय धीरोदात्त नायकों के स्थान पर समाज में पिछड़े हुए उपेक्षित

सामान्य व्यक्ति को अग्र स्थान दिया और अपनी कल्पना द्वारा यथार्थ के आधार पर उनमें भावुकता के ऐसे रंग भर दिए हैं कि वे पाठकों के मर्म को छू गए। जो साधारण था वहीं पाठक के लिए असाधारण बन गया।

‘प्रेमाश्रम’ उपन्यास हिंदी जगत का प्रथम उपन्यास है, जिसमें भारतीय कृषक समाज के यथार्थ जीवन और उसकी समस्याओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। शोषक और शोषित वर्गों के पारस्परिक स्वार्थी और संघर्षों के चित्रण के लिए लेखक ने मूल कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाओं की अवतारणा की है। प्रेमाश्रम उपन्यास का प्रारंभ किसानों के वार्तालाप तथा पतनोन्मुखी सामंती व्यवस्था के चित्र से होता है। प्रेमचंद ने ज्ञानशंकर के माध्यम से पूंजीवाद युग में सामंती अवशेष इन जमींदारों की धन-लिप्सा और इनके हृदयहीन शोषण का यथार्थवादी चित्रण किया है। इसके संपूर्ण कथा साहित्य में ज्ञानशंकर की बराबरी करने वाला दूसरा खलनायक नहीं है।

प्रेमचंद युग में विधवाएं हिंदु समाज का सबसे अधिक पीड़ित, शोषित, त्रासित एवं तिरस्कृत अंग थी। इस दलित, वंचित अंग की हिमायत और वकालत करने का बीड़ा प्रेमचंद ने उठाया था। उन्होंने विधवा समस्या का बड़ी गहराई से अवलोकन किया था। इस विकट प्रश्न के विभिन्न पहलुओं पर उन्होंने खूब चिंतन-मनन किया था। प्रथम विवाह असफल होने पर उन्होंने दूसरी बार एक कुंवारी कन्या से विवाह न करके एक बाल-विधवा के साथ विवाह करना पसंद किया था जैसा उन्होंने ‘प्रतिज्ञा’ उपन्यास में भी प्रतिपादित किया है। निजी अनुभव, गंभीर, मौलिक चिंतन तथा हृदयस्थ दर्द-बेचैनी के कारण उन्होंने ‘वरदान’ से ‘गोदान’ तक प्रायः प्रत्येक उपन्यास में विधवाओं के प्रश्न को उठाया है। उन्होंने समाज की अदालत के सामने अपना मत विस्तार और विद्वता के साथ प्रस्तुत किया है। इस दिशा में समाज की आंखें खोलने में उन्होंने जो महत्वपूर्ण कार्य

किया है, उसके कारण प्रेमचंद को विधवाओं का उद्धारक कहा जाए तो शायद उचित ही होगा।

वरदान उपन्यास में प्रेमचंद ने बाल-विवाह का विरोध किया है, जो नारी के समस्त दुःखों का मूल है। वरदान में प्रेम कहानी तो है, परंतु यह 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में लिखे उपन्यासों की प्रेम कहानी से एकदम भिन्न है। यह शुद्ध प्रेम कथा है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से समाज के उन जीवंत प्रश्नों एवं समस्याओं को पाठकों के सामने लाना चाहते थे, जो जनता के बहुत बड़े भाग के जीवन को विषादमय बनाए हुए हैं और जो उसके विकास, उन्नति एवं सुख समृद्धि में बाधक हो रहे थे। हिंदी के उपन्यास क्षेत्र में यह बिल्कुल नया मोड़ था। दूसरी ओर ‘सेवासदन’ उपन्यास हिंदी साहित्य में युग परिवर्तन करने वाला उपन्यास है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में “सेवासदन की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। हमारे साहित्य में कितने ही उपन्यास नारी के आत्म बलिदान, उसके सतीत्व, उसकी पति सेवा पर लिखे गए लेकिन कितने लेखकों ने उसकी निस्सहायता, पराधीनता, उसके साथ पशुओं और दासों जैसे जीवन पर नजर डाली है।” प्रेमचंद ने उपन्यास की कथा के साथ-साथ वेश्या समस्या के विभिन्न पहलुओं का बड़े विस्तार और कुशलता से चित्रण किया है।

प्रेमचंद का रंगभूमि उपन्यास मानव जीवन की विशाल रंगस्थली है। इसमें लगभग सभी वर्गों के पात्र हैं। साहित्य समाज का दर्पण है और उस समय देश में राजनैतिक उथल-पुथल थी। जलियांवाला बाग का हत्याकांड, असहयोग आंदोलन, खिलाफत आंदोलन, युवराज का बहिष्कार, स्वयंसेवक दल, सांप्रदायिक दंगे आदि घटनाओं का प्रेमचंद पर गहरा प्रभाव पड़ा। रंगभूमि के पात्र अंग्रेजी सरकार का विरोध करते हैं और विद्रोह करते हैं। इसका मुख्य पात्र सूरदास कहता है—

“तू रंगभूमि में आया दिखलाने अपनी माया,

क्यों धर्म नीति को तोड़े भई क्यों रन से मुंह मोड़े”।

वह समझाता है कि संसार रूपी रंगभूमि पर हमें अनेक प्रकार के खेल खेलने हैं। प्रेमचंद का सूरदास ऐसा खिलाड़ी है, जो अंत तक धर्म और नीति पर रहकर ही जीवन के खेल खेलता है। प्रेमचंद की रंगभूमि वास्तविक रंगभूमि है। प्रेमचंद ने लिखा है कि “सूरदास का बीजांकुर हमें एक अंधे भिखारी से मिला जो हमारे गांव में रहता है। इस अंधे भिखारी ने प्रेमचंद में एक ऐसी शक्ति भर दी कि आलोचकों ने इसे गांधी का प्रतीक माना।” इस उपन्यास में हिंदु-मुस्लिम तथा ईसाई तीनों धर्मों के पात्र हैं। इस उपन्यास की मुख्य समस्याएं औद्योगीकरण की समस्या और राजनीतिक समस्या प्रमुख है। प्रेमचंद एक जागरूक द्रष्टा के समान अपने युग की राजनैतिक परिस्थिति से तथा इसकी विशेषताओं से परिचित थे। उन्होंने अनुभव किया कि परतंत्रता की बेड़ियों के कारण सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों का समाधान संभव नहीं है। रंगभूमि उपन्यास में भूमि के प्रश्न को लेकर सूरदास का संघर्ष शुरू होता है। सूरदास सत्य और अहिंसा के आधार पर सरकारी कर्मचारियों का हृदय परिवर्तन करना चाहता है। इस उपन्यास में जिस प्रकार की व्यापक राजनैतिक चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है। उस प्रकार की अभिव्यक्ति प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों में नहीं है। इस उपन्यास में उन्होंने समाज की देशी रियासतों में तरह-तरह की धांधली, अंग्रेज प्रशासित प्रदेशों की कुव्यवस्था, पुलिस के अत्याचार, न्यायालयों व न्यायाधीशों के अन्यायपूर्ण व्यवहार आदि के चित्र अंकित करके उन अत्याचारों से पाठकों को जागरण का संदेश दिया है दूसरी ओर उन्होंने अपने प्रेमी पाठक के समक्ष ‘निर्मला’ नामक उपन्यास उपस्थित करके वृद्ध विवाह के दुष्परिणामों का भयंकर दिग्दर्शन कराया था। अमृतरायजी ने सच ही कहा है कि “इसमें शक नहीं है कि औरत की जिंदगी का दर्द जिस तरह इस किताब में निचुड़कर आ गया है वैसे मुंशी जी की और किताबों में मुमकिन न हो पाया।”

‘गबन’ प्रेमचंद जी की एक प्रौढ़ कलाकृति है। इसमें आभूषण-लालसा, मिथ्या आडंबर, निःस्वार्थ त्याग, आत्मप्रदर्शन, कर्मण्यता, भय, क्रोध, उग्रता, वीरता, प्रेम, सहानुभूति, आत्मप्रदर्शन आदि मनोवृत्तियों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है।

गबन की जालपा रूपवती, आभूषण लोभी और विलास प्रिय है। वह गहनों के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तकादे करती है। कर्ज से गहने लेने के लिए पति को विवश करती है। सास-सुसर की उपेक्षा करती है, घर के काम काज से जी चुराती है, सैर-सपाटे, सिनेमा-थिएटर, स्त्री समाज तथा टी-पार्टी में गहनों के प्रदर्शन में आनंद अनुभव करती है। जालपा का यह रूप आकर्षक जरूर है परंतु यह प्रेम आदर का पात्र नहीं है लेकिन समय के साथ-साथ जालपा में सद्गुणों का विकास होता है और उसे अपनी गलती का अहसास होता है।

प्रेमचंद जी की कर्मभूमि उपन्यास सामाजिक उपन्यास न होकर राजनैतिक तथा राष्ट्रीय उपन्यास है, क्योंकि इसमें समाज की समस्याओं को प्रधानता मिली है। कर्मभूमि में जहां स्वाधीनता आंदोलन की गूंज है वहां संकीर्ण स्वार्थों का त्याग करके देशवासियों को सेवा द्वारा जीवन को सार्थक बनाने का महान संदेश भी है। यहीं मोह त्याग है, जागृति और संस्कार साधना है। कर्मभूमि के मुख्य पात्र (डॉ. शक्ति कुमार, अमरकांत, सलीम, समरकांत, सुखदा, रेणुका, नैनी, सलोनी, पठानिन, मुन्नी आदि) अपने चरित्र द्वारा इसी जागृति व सेवा साधना के उदाहरण प्रस्तुत कर पाठकों को ऊंचा उठाते हैं। उनमें विश्वास एवं स्फूर्ति उत्पन्न करते हैं तथा देश प्रेम की रोशनी भरते हैं।

प्रेमचंद के गोदान को शोषणग्रस्त भारतीय कृषक समाज की आशाओं और आकांक्षाओं, विवशताओं और विपन्नताओं के हृदयग्राही चित्रण की दृष्टि से शोषित और दलित मानवता का एक विशाल भवसागर कहा

जा सकता है। गोदान में एक ओर दीन, दुखी, पीड़ित, भूखे, रोगी, लोगों के चित्र हैं तो दूसरी ओर वैभव विलास समृद्धि के चित्र भी हैं। एक ओर रीति-रिवाज, खान-पान, शादी-विवाह, रूढ़ि, परंपरा से चिपटे हुए लोगों के चित्र हैं तो दूसरी ओर परंपराओं रोष, क्षोभ, क्रोध, विद्रोह की अभिव्यक्ति है। गोदान में तत्कालीन भारतीय शहरों, गांवों के सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन का अत्यंत व्यापक धरातल पर चित्रण हुआ है। प्रेमचंद ने सराहनीय व निंदनीय सभी पक्षों का विशद चित्रण किया है।

समाज की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं का जैसा विशद एवं ब्यौरेवार चित्रण प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में किया वह अत्यंत दुर्लभ है। देश और समाज की ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका सोद्देश्य चित्रण प्रेमचंद के कथा साहित्य में न हुआ हो। उपयुक्त समस्याओं के अतिरिक्त सांप्रदायिकता और धार्मिक कट्टरता भी एक जटिल समस्या थी जो देश की प्रगति में बाधा डाल रही थी और यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो आज भी हम बहुत सी इन्हीं समस्याओं में जकड़े हुए हैं। नारी समस्या का सर्वांगीण चित्रण प्रेमचंद की कीर्ति को उजागर करने वाली उनकी साहित्य की अन्यतम विशेषता है। जहां भी मानव पीड़ा का क्रंदन उन्हें सुनाई दिया उनका जनवादी कलाकार उससे मर्माहत अवश्य हुआ है। उनके युग में सामंत्युगीन रूढ़ियों में बंधी नारी सामाजिक न्याय से वंचित होकर अभिशापग्रस्त होकर जीवन जी रही थी, पुरुष प्रधान समाज ने उसे मानव अधिकारों से वंचित करके उसके न्यायोचित विकास का मार्ग अवरुद्ध कर दिया था।

प्रेमचंद के युग में ही आर्य समाज जैसी सुधारवादी संस्थाओं ने उनकी दशा सुधारने के आंदोलन शुरू कर दिए थे। अपने कथा साहित्य में जितना महत्वपूर्ण स्थान उन्होंने किसान और मजदूरों को दिया उतना ही महत्वपूर्ण स्थान नारी समस्या को भी दिया।

कथा साहित्य को नया युगानुरूप नया मोड़ प्रदान करने का प्रथम श्रेय प्रेमचंद को ही जाता है, उन्होंने अभिजात वर्गीय नायकों के स्थान पर होरी जैसे सामान्य नायक को जनता का प्रतिनिधित्व माना है। मानवता को उन्होंने साहित्य की कसौटी माना और धर्मनिरपेक्ष भाव से जनसामान्य की मंगल कामना को वास्तविक मानववाद का पर्याय माना। अपने आशय को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, “हमारे साहित्य को जनता के हृदय के साथ कर देने की अत्यंत आवश्यकता है जिससे वह सार्वजनिक जीवन से प्रेरित जनता की आत्मा के साथ जी सके।” वास्तव में सामान्य जनमानस से जुड़ा होने के कारण प्रेमचंद का कथा साहित्य बेहद प्राणवाद है क्योंकि वह सामाजिक विषमता, आर्थिक असमानता, गरीबों की आह को वाणी प्रदान करने वाला संबल है। इनका साहित्य दुनिया में न्याय नीति की राज्य स्थापना के लिए प्रबल हिमायत करता है। इस पुण्यकर्म से वह युगों तक चिरस्मरणीय रहेगा।

संदर्भ—

1. प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में राष्ट्रीय चेतना—पटेल
2. प्रेमचंद एक उपन्यास कला—जनार्दन प्रसाद
3. प्रेमचंद एक मार्क्सवादी मूल्यांकन—डॉ. जनेश्वर प्रसाद
4. प्रेमचंद और गांधीवाद—प्रो. रामदीन गुप्ता
5. प्रेमचंद एक अध्ययन—डॉ. राजेश्वर गुरू
6. प्रेमचंद साहित्य में व्यक्ति और समाज—डॉ. रक्षा पुरी
7. प्रेमचंद के नारी पात्र—ओम अवस्थी
8. प्रेमचंद व्यक्ति और साहित्यकार—श्री मन्मथनाथ गुप्त
9. कलम का मजदूर—मदन गोपाल
10. बृहत् साहित्यकार निबंध—डॉ. रामसागर त्रिपाठी व डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त।

ए-64, इंद्रपुरी, लोनी, दिल्ली-201102

प्रेमचंद के कथा साहित्य में सांप्रदायिक सौहार्द

डॉ. श्रुति रंजना मिश्र

स्वतंत्र लेखन में सक्रिय युवा लेखिका डॉ. श्रुति रंजना मिश्र की तीन कृतियां 'नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिकता', 'वर्तमान परिवेश में जनसंख्या शिक्षा की महत्ता' तथा 'राष्ट्रीय चेतना और हिंदी' प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखन के साथ-साथ पत्रकारिता में भी सक्रिय।

मुंशी प्रेमचंद का हिंदी कथा साहित्य में पदार्पण ही साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उनका आगमन एक कथा क्रांति है। उनके पूर्व हिंदी कथा साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन और उपदेश था। प्रेमचंद के आने के साथ ही मानो हिंदी का कथा साहित्य ऊर्जावान हो उठा। उनके आने के साथ ही हिंदी कहानी की यहां-वहां बिखरी हुई शक्तियां सोद्देश्य होकर जीवंत हो उठी। कहानी अब केवल कहानी नहीं बल्कि वह भारत की राष्ट्रीयता, सांप्रदायिक सौहार्द और जातीय अस्मिता की पहचान बन जाती है। उनका कथा साहित्य तत्कालीन भारतीय समाज की चित्तवृत्तियों का साहित्यिक प्रतिबिंब है। उनके कथा साहित्य में गुलामी के अंधेरे में छटपटाती भारत की विशाल जनता की पीड़ा और दारिद्र्य है तो इन सबके बीच भारतीयों का स्वाभिमान जिसे न मुगल दबा पाए और न ही अंग्रेजों का भीषण अत्याचार।

प्रेमचंद, युग के साथ चलने वाले साहित्यकार हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य में आम आदमी को प्रतिष्ठित किया। उनकी कहानियों में न राजा-रानी, परियां, राक्षस, जादूगर और महल जैसे स्वप्नदृष्टा चरित्र हैं और न ही उनके उपन्यासों में योगी, भोगी, नर्तकी जैसे अतार्किक किरदार। उनकी कहानियों से हमें

ज्ञात होता है कि उस समय का समाज कैसा रहा होगा। उनके उपन्यासों से यथार्थवादी स्थिति का बोध होता है। उनके कथा साहित्य का विषय हमेशा स्त्री-समस्या, समाज में व्याप्त अस्पृश्यता की भावना, किसानों की स्थिति और हिंदू-मुस्लिम संबंध ही रहे हैं।

वास्तव में प्रेमचंद साहित्यकार होते हुए भी स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित थे। गुलामी का दंश उन्होंने भी झेला था। वह गांधीजी के विचारों से प्रभावित 'स्वराज' की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। वह जानते थे कि अंग्रेजों का स्वप्न यहां लंबे समय तक शासन करने का था और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह यहां के समाज में व्याप्त हिंदू-मुस्लिम सौहार्द को नष्ट करने में लगे थे। वह जानते थे कि अगर सांप्रदायिक वैमनस्य का भाव जग गया तो यह देश आपसी संघर्षों में उलझा रहेगा और कभी अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए खड़ा नहीं हो पाएगा। अंग्रेजी सरकार अपने राज में कभी सूरज न डूबने वाली कहावत की प्रयोजनीयता को सिद्ध करने के लिए दल और बल दोनों का सहारा ले रही थी। भारतीय जनता में फूट डालने के लिए उन्होंने धर्म को हथियार के रूप में प्रयुक्त किया क्योंकि यही एक ऐसा सशक्त माध्यम था जिससे वह आपस में ही घृणा की भावना को जाग्रत कर सकते थे और उन्होंने यही किया। फलस्वरूप दोनों वर्ग एक-दूसरे की अस्मिता को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गए किंतु दोनों ही संप्रदायों में कुछ ऐसे भी लोग थे जो वेदों के मंत्र और कुरान की आयतों से समान रूप से प्रेम करते थे। प्रेमचंद इसी सौहार्द को जीवंत रखने में

एक प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में सामने आए। उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम एकता की मशाल को जलाए रखने का लगातार प्रयत्न किया।

वास्तव में तत्कालीन भारतीय समाज शोषक और शोषित दो वर्गों में बंटा हुआ था। इन शोषक और शोषितों में दोनों ही धर्मों के लोग थे। आवश्यकता इस शोषण को समाप्त करने की थी न कि धर्म को।

प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य के द्वारा यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया कि हमें आपस में मजहबी नफरत से ऊपर उठकर प्रगति के मार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में हिंदू-मुस्लिम संबंधों को नवीन स्तर पर व्याख्यायित किया है। इनकी कृतियों में हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे के पूरक हैं और दोनों के आपसी संबंध मधुर हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में हिंदू-मुस्लिम संबंधों के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को स्पष्ट किया है। सांप्रदायिक समरसता को उद्घाटित करती उनकी कहानियों में 'पंच-परमेश्वर' एक ऐसी ही कहानी है। भिन्न-भिन्न धर्मों के होने के बाद भी जुम्नन शेख और अलगू चौधरी में गहरी मित्रता है। धर्म उनकी मित्रता के आड़े नहीं आता। परिस्थितियां बदलती हैं और 'पंच' चुने जाने पर 'अलगू' जुम्नन शेख के खिलाफ फैसला करते हैं जो न्यायोचित भी है। जुम्नन शेख मित्र के धोखा देने से दुःखी हो जाते हैं किंतु कुछ समय बाद ही यह अवसर जुम्नन को प्राप्त होता है और वह अलगू के मामले को हल करने के लिए

सर्वसम्मति से 'पंच परमेश्वर' चुने जाते हैं। उन्हें लगता है अब बदला लेने का अवसर समीप है, किंतु न्याय के आसन पर बैठते ही उन्हें केवल न्यायाधीश का कर्तव्य स्मरण रह जाता है और वह अलगू के पक्ष में फैसला करते हैं, क्योंकि अलगू न्याय के पथ पर था। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद ने संकेत दिया कि सबसे बड़ा धर्म न्याय है।

'बौद्ध' कहानी में भी बौद्ध के चरित्र के माध्यम से प्रेमचंद ने समाज को मानवीयता की सीख दी है। 'बौद्ध' जो इस कहानी का मुख्य पात्र है वह सभी धर्मों के लोगों को समान दृष्टि से देखता है। वह स्वराज्य के लिए उतना ही प्रयत्नशील है जितना कि हिंदू। वह गोहत्या का विरोधी है। कसाइयों से गायों को खरीदकर हिंदुओं को देकर मानो वह अपने धर्म के लोगों के इस जघन्य कृत्य का प्रायश्चित्त करना चाहता है। समाज में उपेक्षित निम्न कुल की स्त्री के बच्चों को सामाजिक सम्मान देकर न केवल मुस्लिम बल्कि हिंदुओं को भी आश्चर्यचकित कर देता है।

'डिक्री के रुपए' कहानी में प्रेमचंद ने दो मित्रों की मित्रता को प्रस्तुत किया है। नईम और कैलाश न केवल अलग-अलग धर्मों के हैं बल्कि उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में भी विषमता है। जहां नईम सरकारी विभाग में उच्च पद पर आसीन है, वहीं कैलाश एक विपन्न पत्रकार परंतु इतना सब विपरीत होते हुए भी इनकी मित्रता सच्ची है। परिस्थितिवश कैलाश न चाहते हुए भी अपने और नईम के बीच हुए वार्तालाप को समाचार पत्र में प्रकाशित करता है जिसके फलस्वरूप सरकार की तरफ से न केवल कैलाश पर मुकद्मा किया जाता है बल्कि उसे नईम को बीस हजार रुपए की डिक्री देने को कहा जाता है किंतु नईम मित्रता को सर्वोपरि मानता है और कैलाश को बीस हजार रुपए के कर्ज से मुक्त कर देता है।

सांप्रदायिक सौहार्द का संदेश देने वाली कहानियों में 'मुक्तिधन' कहानी भी प्रमुख

है। कहानी में हिंदू और मुसलमान दोनों एक-दूसरे के धर्म का सम्मान करते हुए दिखाई देते हैं। धर्म को लेकर कहानी के पात्रों में कहीं भी विवाद नहीं है। कहानी के दो प्रमुख पात्र हैं—लाला दाऊदयाल और रहमान। रहमान कर्ज के बोझ से दबे होने के बाद भी अपनी गाय को कसाई के हाथ बेचना नहीं चाहता क्योंकि उसे ज्ञात है कि वह उसकी हत्या कर देंगे। वह पांच रुपए घाटा खाकर गाय को लाला दाऊदयाल को पैंतीस रुपए में बेचता है क्योंकि वह हिंदू के घर सुरक्षित रहेगी। उसके इस कार्य से प्रभावित होकर लाला दाऊदयाल हमेशा उसकी सहायता करते हैं और अंत में उसे कर्ज मुक्त कर देते हैं।

'मंदिर और मस्जिद' कहानी भी हिंदू-मुस्लिम संबंधों के धार्मिक स्वरूप को विश्लेषित करने में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कहानी के माध्यम से सभी धर्मों का आदर करने की शिक्षा दी गई है। इनके अतिरिक्त 'हिंसा परमो धर्मः', 'जिहाद', 'जुलूस' आदि कहानियों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि खान-पान, भाषा, पहनावा आदि भिन्न होते हुए भी दोनों धर्म एक-दूसरे से संबद्ध हैं। यह संबंध उनमें पारस्परिक सहयोग और स्नेह का है।

प्रेमचंद ने न केवल कहानी को जीवन की समस्याओं से जोड़ा बल्कि उपन्यास साहित्य को भी यथार्थ भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया और जनजीवन से जोड़ा। इनके उपन्यास भी हिंदू-मुस्लिम संबंधों के स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं। हिंदू-मुस्लिम एकता के उदाहरणस्वरूप इनके प्रमुख उपन्यासों में सेवासदन, प्रेमाश्रम, कायाकल्प और कर्मभूमि प्रमुख हैं।

'सेवासदन' में प्रेमचंद ने हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता के निकृष्ट रूप को प्रस्तुत कर केवल उसके प्रति वितृष्णा ही नहीं उत्पन्न की बल्कि दोनों जातियों में ऐसे सदस्यों को महत्वपूर्ण ढंग से निरूपित किया है जो जाति, संप्रदाय और धर्म से ऊपर उठकर सामाजिक

समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में देखने के आग्रही हों।

इसी तरह अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने शोषण के खिलाफ आवाज उठाई है। शोषितों की स्थिति वर्णन में हिंदू-मुसलमान जैसा कोई भेद नहीं है। जमींदारी शोषण का शिकार यदि मनोहर और बलराज हैं तो बूढ़े कादिर मियां भी। उनके उपन्यास के पात्रों में सांप्रदायिक भावना और धार्मिक आवेश की गंध तक नहीं है। इस उपन्यास में स्पष्ट है कि हिंदू-मुस्लिम संघर्ष एक राजनीतिक षड्यंत्र ही है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का मुख्य पात्र कादिर मियां हैं जो गांव के हिंदू-मुस्लिम दोनों वर्गों में सम्मानीय हैं। वह गांव वालों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। मनोहर इस उपन्यास का अन्य पात्र है जो जमींदार के अत्याचारों से दुःखी है। हाकिमों, जमींदार और गौस खां के अत्याचारों से परेशान होकर मनोहर और बलराज उसकी हत्या कर देते हैं किंतु कादिर अपनी कौम का पक्ष न लेकर मनोहर और बलराज से सच्ची सहानुभूति रखता है और मानता है कि गांव के कल्याण के लिए उनका किया गया हत्या का कार्य भी उचित है। कादिर अपने देश से एक हिंदू के समान ही सच्चा प्रेम करता है। वह हमेशा हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयासरत रहता है।

'कर्मभूमि' प्रेमचंद का सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है जो हिंदू-मुस्लिम एकता पर लिखा गया। उस समय ब्रिटिश सरकार हिंदू-मुस्लिम नेताओं को आपस में लड़ाकर देश के विभाजन की पृष्ठभूमि तैयार कर रही थी। देश में अनेक सांप्रदायिक दंगे हो रहे थे और हिंदू-मुसलमान आपस में लड़-मर रहे थे। इसी विषम परिस्थिति में प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' की रचना की। इस उपन्यास के माध्यम से एक ऐसे समाज को दिखाया जिसमें हिंदू-मुसलमान वैमनस्य का कोई नामो-निशान भी नहीं। दोनों संप्रदाय के लोग एक-दूसरे से जुड़े हैं, उनमें प्रेम और भाईचारा है तथा वे

प्रत्येक क्षेत्र में एक-दूसरे के सहयोगी हैं। इस उपन्यास के मुख्य पात्र अमरकांत और सलीम हैं। वे विद्यार्थी जीवन से ही अभिन्न मित्र हैं। दोनों के पिता हाफिज और लाला समरकांत में भी दोस्ती है। दोनों में खाने-पीने को लेकर भी भेदभाव नहीं है। समरकांत का परिवार अपने यहां काम करने वाले पठान के मरने के बाद भी उसके परिवार की आर्थिक सहायता करते हैं। सलीम सरकारी अफसर है किंतु किसान आंदोलन से बहुत प्रभावित है। समय आने पर सलीम, अमरकांत, सकीना, हाफिज सभी स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लेते हैं। उनके लिए राष्ट्र के आगे धर्म अस्तित्वहीन प्रतीत होता है।

इसी तरह 'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने ताहिर अली और उसके परिवार के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम संबंधों को स्पष्ट किया है। विपरीत परिस्थितिवश ताहिर अली गांव के ही कई लोगों के कर्जदार हो जाते हैं, किंतु उस विषम

परिस्थिति में जब ताहिर के परिवार के लोग भी उसका साथ छोड़ देते हैं। उस समय गांव के निम्न वर्ग के लोग जो अछूत हिंदू थे उनकी सहायता करते हैं।

प्रेमचंद का युग सांप्रदायिक तनाव का युग था और प्रेमचंद सांप्रदायिक सौहार्द के हिमायती। इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में हिंदू-मुस्लिम संबंध को मुख्य विषय बनाया। उनके अन्य उपन्यास रंगभूमि, गबन और गोदान में भी आंशिक रूप से सांप्रदायिक सौहार्द की भावना को चित्रित किया गया है।

वास्तव में प्रेमचंद हिंदी के एक ऐसे प्रगतिशील कथाकार हैं जिन्होंने अपने समय में व्याप्त सांप्रदायिक शक्तियों के प्रतिगामी आचरण को न केवल पहचाना था बल्कि इस बुराई को अपनी लेखनी के माध्यम से दूर करने का अनवरत प्रयास भी किया। उन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम संबंधों को

विश्लेषित कर एक नया आयाम प्रदान किया। उन्होंने मानवीय संवेदना को सर्वोपरि रखा और माना कि सांप्रदायिक कट्टरता से मनुष्य नीचे गिरता है। देश के उत्थान के लिए दोनों संप्रदायों का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग आवश्यक है। आज के समय में जिस तरह से दोनों संप्रदायों के बीच विद्वेष का जहर फैलाया जाता रहा है, ऐसी स्थिति में प्रेमचंद का कथा साहित्य हमारे लिए उस औषधि की तरह है जो हमारे अंतर्मन में व्याप्त विकारों को परिमार्जित करता है।

प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम संबंधों को मानवीय धरातल पर परिभाषित किया है न केवल साहित्य जगत बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष भी उनके इस पुनीत कार्य के लिए सदैव उनका ऋणी रहेगा।

21, सविता विहार,
दिल्ली-110092

रचनाकारों से अनुरोध

- ❑ कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।
- ❑ रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक हो।
- ❑ रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।
- ❑ रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेजोल्यूशन फोटो) अवश्य भेजें।
- ❑ रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें। यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति मिला लें।
- ❑ ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।
- ❑ यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- ❑ रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- ❑ स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।
- ❑ रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- ❑ आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgas.iccr@nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।

पंडित उदयशंकर का नृत्य संसार

ललित शर्मा

कई पुरस्कारों से सम्मानित वरिष्ठ लेखक ललित शर्मा इतिहास में ग्यारह शोधपूर्ण ग्रंथों की रचना कर चुके हैं। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

17 फरवरी, सन् 1940 के झीलों की नगरी उदयपुर के प्रसिद्ध राजमहल स्थित शाही दरबार हाल में दर्शक भव्य रंगमंच की ओर टकटकी लगाए बैठे थे। समय था संध्या का। धीरे-धीरे रंगमंच से पर्दा उठा और संगीत स्वर लहराया तो भारतीय संस्कृति की सजी-संवरी पोशाक में एक कालेकेशी गौरवर्ण देवरूपी पुरुष ने मंच से सबको साष्टांगिक प्रणाम किया, तब उसे देखते ही पूरा दरबार हाल देशी-विदेशी नृत्यप्रेमी दर्शकों की करतल ध्वनि से गूँज उठा। संगीत का स्वर धीरे-धीरे मध्यम गति से लहराया और फिर वह देवरूपी पुरुष नृत्य की लहराती ताल पर थिरकने लगा। उसके शिव तांडव, इंद्र और कार्तिकेय एकल नृत्य की गति के साथ ही नृत्य मिश्रित ध्वनि भी बिखरने लगी तो चारों ओर शांति छा गई। शाही मंच की भव्यता, प्राचीन भारतीय संस्कृति-संगीत की मुखरता और उस नृत्य साधक की नृत्य प्रवीणता के मिश्रण में दर्शक उसके स्वप्निल-सम्मोहक नृत्य संसार में स्वयं को भूल बैठे और दो घंटे बाद नृत्य उपरांत देर तक बजी तालियां।

ये नर्तक थे—भारतीय नृत्य संस्कृति के महान कला साधक पं. उदयशंकर, जिन्होंने बाल्यावस्था से मृत्युपरांत अपनी नृत्यकला से संसार के कोने-कोने में भारतीय संस्कृति को गूँजा दिया था तथा जिनकी नृत्य साधना आज भी विश्व के नृत्य इतिहास में बेजोड़ है। नृत्यकार पं. उदयशंकर वास्तव में एक ऐसे

चुंबकीय व्यक्तित्व के धनी थे कि जो भी उनके संपर्क में आया उसमें भारतीय होने के गर्व के साथ-साथ कला का स्फुरण भी हुआ। उनके नृत्य संसार की व्यापकता आज भी विश्व भर में सम्मान के साथ स्मृत की जाती है।

झालावाड़ से उदय—पं. उदयशंकर का जन्म दिसंबर सन् 1900 ई. में राजपूताना (राजस्थान प्रदेश) की झीलोंवाली नगरी उदयपुर की पिछोला झील के किनारे स्थित गड्ड्या देवरा के निकट पांडुवाड़ी बस्ती में हुआ था। उनके पिता पं. श्यामाशंकर मेवाड़ रियासत के महाराणा भूपाल सिंह के दरबारी थे। बचपन से ही पं. उदयशंकर को संगीत व चित्रकारी से बेहद लगाव था। कलाप्रिय मां हेमांगना देवी उन्हें चुपके-चुपके संगीत, चित्रकारी में, दरबारी कलाविद्वों द्वारा प्रशिक्षित करवाती थीं। इसी समय उनके पिता को राजपूताना की अन्य रियासत झालावाड़ में दीवान के पद पर आना पड़ा और यहीं पर पं. उदयशंकर का बचपन व किशोरावस्था बीती और जिसने उन्हें संगीत की गंगा से नृत्य की महाकाश गंगा की अनंत लहरों में पहुंचा दिया। इसी बीज से उन्होंने अपने नाम को सार्थक करते हुए बाद में भारतीय नृत्य में एक नितान्त भव्य शैली का उदय किया, जिसे 'ओरियंटल डांस' के नाम से जाना गया। झालावाड़ के तत्कालीन महाराजा राणा भवानी सिंह बड़े ही कलाप्रिय और विद्वान् नरेश थे। उन्होंने बालक उदयशंकर की अंतर्निहित जिज्ञासा को देख कर विशेष प्रोत्साहन दिया जो आगे चलकर उन्हें अंतरराष्ट्रीय ख्याति दिलाने में प्रमुख रहे। एक पुख्ता प्रमाण के अनुसार पं. शंकर

की पत्नी अमला शंकर ने एक साक्षात्कार में यह बताया था कि—“पं. उदयशंकर के बाल हृदय में प्रथम बार नृत्य की कला का प्रस्फुटन झालावाड़ राज्य के डग क्षेत्र के 'कंजरी नृत्य' को देख कर हुआ था और पं. शंकर ने अपने नृत्य का प्रथम प्रदर्शन अल्पायु में ही झालावाड़ की राजसी श्रीभवानी नाट्यशाला में किया था। उल्लेखनीय होगा कि झालावाड़ (नगर) में स्थित यह विशाल भवानी नाट्यशाला राजराणा भवानीसिंह द्वारा निर्मित ओपेरा (पारसी) शैली की राष्ट्रप्रसिद्ध नाट्यशाला रही है और आज भी अपनी भव्यता के कारण विख्यात है।

पं. उदयशंकर का यही से उदय हुआ। वे झालावाड़ के अलावा गाजीपुर और बनारस में भी रहे। जहां चित्रकारी में उनकी रुचि रमती रही, जिसके परिणामस्वरूप झालावाड़ महाराज राणा ने उन्हें उच्च कला शिक्षार्थ प्रशिक्षण हेतु 'जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स' मुंबई भेज दिया। वहां वे कला के साथ-साथ गांधर्व विद्यालय से संगीत की शिक्षा भी ग्रहण करते रहे। झालावाड़ रियासत के खर्चे, वजीफे पर ही वे चित्रकला के अध्ययनार्थ सन् 1920 में लंदन की 'रॉयल अकादमी ऑफ आर्ट्स' गए। वहां वे पाश्चात्य संस्कृति से अभिभूत हो उठे तभी उनके शिक्षक विलियम रीथे स्टार्डिन ने उनसे कहा—“पहले अपने देश के गौरव और संस्कृति को पहचानो!”

चित्रकार से नृत्यकार—शिक्षक के इस वाक्य ने पं. उदयशंकर के जीवन में अंतर्द्वंद्व आरंभ कर दिया कि वे चित्रकला सीखें या नृत्य? क्योंकि उनके भीतर नृत्य के संस्कार भी तो



शिव-तांडव रूप में पं. उदयशंकर



शिव रूप में पं. उदयशंकर



राधा-कृष्ण नृत्य में पं. उदयशंकर एवं अन्ना पावलोवा

विद्यमान थे। तभी उनकी दृष्टि पं. आनंद कुमार स्वामी की लिखी पुस्तक 'द डांस ऑफ शिवा' के मुखपृष्ठ पर छपी 'नटराज शिव' की प्रतिमा पर पड़ी तो उनका पुनः वही बाल नृत्य जाग्रत हो उठा और अंततः जीत नृत्य कला की हुई। इसी से प्रेरित हो बाद में उन्होंने 'शंकर-नृत्य' की रचना की थी जो उनके महान कार्य का महान परिणाम रही। इस नृत्य में उनकी पत्नी अमला शंकर (अमला नंदी) भी पार्वती के रूप में नृत्य करती थीं।

अंतर में रचा भारतीयत्व—नृत्यकार के रूप में जब वे लंदन गए तब वहां रूस की प्रसिद्ध बैले नर्तकी 'अन्ना पावलोवा' से उनकी भेंट हो गई जो नृत्य प्रदर्शन के लिए वहां आईं। अन्ना ने उन्हें भारतीय संस्कृति को जानने और उसे आत्मसात करने का सुझाव दिया। इस सुझाव ने पं. शंकर के जीवन को बदल कर रख दिया कि उन्होंने विदेशी टीम बैले में नृत्य प्रशिक्षण लेते हुए भी अपने अंतर के भारतीयत्व को सदैव जीवित रखा। जिसका परिणाम यह रहा कि जो नृत्यकला उस समय भारतीय मंदिरों और राजदरबारों तक ही सीमित थी, वह अब विश्व के मंचों पर आने लगी। पं. उदयशंकर ने अपने भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की शैली से नृत्य विद्या को नए आयाम और विस्तार दिए।

उन्होंने अन्ना पावलोवा के साथ राधा-कृष्ण युगल नृत्य भी किया। इन नृत्यों में तब वे इतने प्रसिद्ध हुए कि जब अमेरिका के प्रख्यात डांस-प्रस्तुतकर्ता ह्यूरोक के निमंत्रण पर वे शेडो-प्ले लेकर वहां गए तब उनसे वहां शेडो-पले नहीं अपितु तांडव, इंद्र और राधा-कृष्ण नृत्य को ही प्रस्तुत करने का आग्रह किया और इन नृत्यों के प्रदर्शनों से पं. उदयशंकर को विदेशी कलाविदों ने हाथों में उठा लिया।

भारतीय संस्कृति का परचम—अन्ना पावलोवा के साथ पं. उदयशंकर ने विश्व के बड़े-बड़े और वैभवशाली देशों का भ्रमण करते हुए कुशल नृत्य का सम्मोहक प्रदर्शन किया और वे विश्व रंगमंचों पर भारतीय संस्कृति का नृत्य के माध्यम से परचम लहराया। इस दौरान उन्होंने धन और प्रसिद्धि भी पाई। विशेषता उसमें यह रही (जिसे उन्होंने स्वीकार भी किया) कि बचपन में उनके देखे राजस्थानी महिलाओं के नृत्य, वीरों की तलवार, पट्टेबाजी, भीलों और कंजरो के नृत्य भविष्य में उनके काफी काम आए। उन्होंने कभी किसी नृत्य शैली को नकारा नहीं, चाहे वह कथक हो या भरतनाट्यम। उनका मानना था कि "एक पत्नी जो वृक्ष से गिरकर हवा में लहराती हुई नीचे गिरती है—वस्तुतः उसे भी मुद्राओं द्वारा

सफलता से प्रदर्शित किया जा सकता है।" वे मानते थे कि "शास्त्रीयता का आधार रखते हुए उसके जटिल नियमों से परे हटकर, किसी भी कथा या वस्तु को स्वतंत्र कलात्मक नृत्य द्वारा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।" नृत्य में मौलिक एवं अभिनय प्रयोगों से पं. शंकर ने ऐसे नवीनतम नृत्य रूप तैयार किए कि देशी-विदेशी कलाविदों ने उन्हें सिर आंखों बिठा लिया।

सन् 1930 में पं. उदयशंकर ने भारत लौटकर अपनी नृत्य मंडली स्थापित की तथा कई स्थानों पर अपने नृत्य कार्यक्रम दिए। सन् 1931 के मध्य वे फिर यूरोप पहुंच गए। वहां वे अमला नंदी (बाद में अमला शंकर) के निकट आए और उन्हें भी नृत्य की शिक्षा दी और फिर दोनों ने विवाह कर लिया। पं. शंकर ने उस दौरान यूरोप, चीन और अमेरिका व रूस के सर्वोच्च विश्व-रंगमंचों पर अनेक नृत्य प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति की धाक जमाई। वे कभी भी बंधी-बंधाई शैली पर नहीं चले। वे निरंतर नया करने के प्रयोगधर्मी कलाकार थे। उनका मानना था कि—“मैं उस परंपरा का आदर करता हूं जो शुद्ध, अमिश्रित, अछूती है और कलाकारों के अज्ञान व सनक के कारण विकृत नहीं हुई है। परंपरागत रूढ़ियों

के सिद्धांत पुस्तक रूप में संग्रहालयों में रखे जाने चाहिए।” इस प्रकार भारतीय ग्रामीण परिवेश और वहां की कला संस्कृति ने पं. उदयशंकर को जीवनरस दिया। विश्वभर में भारतीय नृत्यकला को बुलंदी पर पहुंचाने वाले उदयशंकर की आत्मा शुद्ध भारतीय रमणशीला थी। उनका हृदय भारतीय ग्राम्यजन के साथ जीने, उल्लासित होने तथा नृत्यमग्न बने रहने का अखंड यथार्थदर्शी था। उनकी मनेच्छा के रूप में उनका यह कथन जैसे उनकी वसीयत ही बन गया—“मुझे ग्रामीणों की भांति रहना और उनके साथ नृत्य करना प्रिय है। मेरा हृदय गांवों में जाना चाहता है। मैं नाव में बैठकर विस्तृत नदी को पार कर ऐसी रमणीय और अनोखी भूमि पर पग रखना चाहता हूं जहां कृषकों के वृंद आकर मेरे चारों ओर इकट्ठे हो जाएं और मैं चांदनी रात में विस्तृत नीलांबर के नीचे नदी तट पर ढोलक की ताल के साथ नृत्य कर सकूं।”

पं. उदयशंकर कभी भी लकीर के फकीर नहीं बने। उनका स्वभाव भी ऐसा नहीं था। उन्होंने पदचारों की तकनीक में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किए। उनके पास एक आदमकद कांच रहता था, जिसके सहारे वे अपनी अंग भंगिमाओं को संवारते हुए नृत्य के विविध

रूपों में आबद्ध हो जाते। इस बारे में विद्वान कपिला वात्स्यायन ने सही कहा था कि—“पं. उदयशंकर की देन विश्व के कला वाङ्मय में एक ऐसी देन है जो गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की है।”

उदयशंकर इंडियन कल्चर—सन् 1940 में उन्होंने हिमालय की खूबसूरत मनोरमवादी अल्मोड़ा में “उदयशंकर इंडियन कल्चर” स्कूल खोला जिसमें हर शैली के कलाविद् सम्मिलित हुए। यह एक संपूर्ण शिक्षा एवं कला का केंद्र था, जहां दूर-दूर से आए विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। यहां नृत्य के साथ-साथ साहित्य और संगीत सीखना भी आवश्यक था। इस संस्थान में पं. सुमित्रानंदन पंत और उस्ताद अलाउद्दीन खां साहित्य और संगीत के सिरमौर शिक्षक थे। पं. शंकर ने गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर से भी इस आशय से भेंट की थी, जिसमें गुरुदेव ने उनकी बड़े भाव विभोर होकर पीठ थपथपाई थी। इस स्कूल में नृत्य के आयामों में कथकली के गुरु शंकर नंबूदरीपाद, भरतनाट्यम के कण्डप्पा पिल्ले, मणिपुरी के आमोबी सिंह प्रमुख थे। इनके अलावा अमला नंदी, जौहरा, अजरा, सिमौन बार्बीयर भी यहां नृत्य के निष्णांत प्रशिक्षक थे।

प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में पं. उदयशंकर स्वयं भी नृत्य का अभ्यास करवाते थे। उन्होंने पौराणिक एवं आधुनिक विषयों पर अनेक नृत्य-नाटिकाएं भी तैयार की थी जो आगे चलकर भारतीय नृत्य की विधाओं में मील का पत्थर साबित हुईं।

कल्पना का निर्माण—पं. उदयशंकर की फिल्म कला का प्रस्फुटन हुआ ‘कल्पना’ नामक फिल्म से, जिसमें पैसा कम लेकिन नाम ज्यादा हुआ। यह फिल्म भारतीय नृत्य पद्धतियों के विभिन्न समन्वित रूपों की अनुपम अभिव्यक्ति थी। उन दिनों बंबईया फिल्मों पर मुंशी दिल, मुंशी फानी, मुंशी खंजर की उर्दू पूरी तरह हावी थी और उसी समय उनसे जा टकराए पं. उदयशंकर और उनकी टीम के सहयोगी थे—हिंदी जगत के विख्यात लेखक कवि सुमित्रानंदन पंत, पं. अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, प्रदीप, पं. नरेंद्र शर्मा, गोपाल सिंह नेपाली, नीलकंठ तिवारी, प्यारे लाल संतोषी, राममूर्ति चतुर्वेदी, ब्रजेंद्र गौड़, देवीलाल सामर आदि। इस फिल्म के गीत लिखे पंतजी ने और संवाद अमृतलाल नागर ने। चूंकि दोनों साहित्यकारों को बंबईया वातावरण रास नहीं आया अतः वे सीधे पहुंचे मद्रास। पत्रकार एस.एस. वासन का जैमिनी



शिव-पार्वती रूप में पं. उदयशंकर और सिमकी सिमौन (शिष्या)



गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के साथ पं. उदयशंकर



शिव-पार्वती नृत्य में पं. उदयशंकर और सिमकी सिमौन (शिष्या)



‘कल्पना’ फिल्म में पं. उदयशंकर और अमला शंकर

स्टूडियो नया-नया बनकर तैयार हुआ ही था। पं. शंकर ने तब ‘कल्पना’ का निर्माण सन् 1940 में यहीं किया। इस फिल्म में अभिनय की शिक्षा सुप्रसिद्ध अभिनेता पार्श्वनाथ अलटेकर ने दी।

कल्पना के इन साहित्यकारों, कलाकारों के रोम-रोम में भारतीयता रमी थी जो फिल्म के एक-एक फ्रेम, एक-एक संवाद और गीत में अमिट छाप छोड़ गई। इस फिल्म का यह गीत “मन की प्यास बुझाने आई, तू है मेरा प्रेम देवता” तो आज भी नृत्य साधकों का प्रेरणा गीत है। इस फिल्म में अमृतलाल नागर का लिखा एक संवाद भी उल्लेखनीय था—“नायिका (अमला शंकर) नायक (उदयशंकर) से पूछती है—“बंबई कैसा लगा?” नायक उत्तर देता है—“जैसे यूरोप

और अमेरिका की गंदी नाली का नाम मुंबई हो। मुझे तो बनारस ही पसंद है।” इस संवाद में पश्चिम परस्तों के मुंह पर कैसा तमाचा जड़ा नागरजी ने। इसे भारत की संस्कृति के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा ही कहा जाएगा। इसी फिल्म में एक गीत में पंतजी ने कहा—“सदियों से इतिहास हमारे नाच रहे कठपुतली से।” इसी गीत में सामंती संस्कारों में जकड़े तथाकथित ऊंचे लोगों द्वारा पिसती जाती प्रजा की करुण-व्यथा निहित थी। दर्शकों ने इस फिल्म से अहसास किया कि हमारे देश का इतिहास जनता का नहीं सामंतों का है। सन् 1944 में जब यह फिल्म बंबई के 13 सिनेमागृहों में एक साथ प्रदर्शित हुई तो फिल्म समीक्षक दंग रह गए। कला की दृष्टि से यह फिल्म इतनी अधिक उच्च स्तरीय थी

कि इसे रूस में आयोजित अंतरराष्ट्रीय फिल्म प्रतियोगिता में प्रथम स्थान मिला।

पं. उदयशंकर की अन्य रचनाएं—युवावस्था में ही प्रसिद्धि की चरम सीमा पर पहुंच जाने के बाद भी पं. शंकर की प्रयोगशीलता में कोई कमी नहीं आई थी। अपनी वृद्धावस्था में उन्होंने प्रयोगात्मक शैली में ‘शंकर-स्कोप’ का निर्माण किया जो फिल्म और मंच का मिश्रित प्रयोग था। इस फिल्म के दो शक्तिशाली माध्यमों ‘क्लोज-अप’ और ‘कलर’ को उन्होंने बखूबी परखा और प्रथम बार इन्हें मंच पर लाने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है। ‘छाया नाटक’ भी उन्हीं की देन है। इस तकनीक पर आधारित ‘रामलीला’ और ‘भगवान बुद्ध’ उनकी महाकाव्यात्मक रचनाएं थीं जबकि ‘मजदूर श्रम व यंत्र’ तथा ‘जीवन में लय’



गंधर्व नृत्य में पं. उदयशंकर

ये दोनों नृत्य-नाटिकाएं उनकी सृजनशील प्रतिभा की कीर्तिमान हैं।

सन् 1968 में पं. उदयशंकर अमेरिका में अंतिम बार मंच पर आए वहीं उन्हें हृदय रोग हो गया था। अतः वे भारत आ गए। वे विदेशों में अधिक लोकप्रिय हुए, लेकिन उनमें भारतीयता मरी नहीं यह तथ्य उनकी नृत्य रचनाओं से प्रकट होता है जिनमें राधा-कृष्ण, इंद्र-पूजा, कालिया-दहन, अस्त्र-पूजा, शिव-पार्वती, कार्तिकेय, गणगौर, वर्षा-मंगल, भस्मासुर, उर्वशी आदि प्रमुख हैं। उनके प्रत्येक कार्यक्रमों में संगीत और वाद्य-यंत्र भारतीय ही होते थे। उन्होंने ही मुखौटों का निर्माण तथा नृत्य की वेशभूषा के निर्माण में नवीन और मौलिक देन दी। पं. उदयशंकर ने शास्त्रीय नृत्य को रीतिकालीन जड़ता से मुक्त कर स्वच्छंद आकाश और जीवंत

समाज का स्पंदन प्रदान किया। उन्हें सन् 1971 में 'पद्मभूषण' तथा सन् 1975 में 'वैशिकोत्तम' की मानद उपाधियों से अलंकृत कर भारत सरकार द्वारा सम्मान दिया गया। वे आधी सदी तक अपने क्षेत्र में समूचे विश्व के रंगमंचों पर छाए रहे तभी तो विश्व के सिरमौर नृत्यविद् कहते हैं—'विश्व के नृत्य संसार में जब भी जीवंत प्रयोगों की चर्चा लहराएगी तो पं. उदयशंकर का नाम सबसे पहले लिया जाएगा।' वे अपने समय के एकमात्र अकेले ऐसे कलाकार थे, जिन्होंने कम उम्र में विश्वकला पटल पर अपने देश की कला की ख्याति दर्ज करवाई।

पं. उदयशंकर ने भारतीय नृत्य को अनेक रचनाएं व कलाकार दिए, जिनकी सक्रियता ने भारतीय कला की प्रतिष्ठा को नए आयाम दिए। इनमें 'मेनका' जिसने कथक पर आधारित अनेक समीक्षित रचनाएं दीं। पं. नेहरू की 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' व टैगोर की 'क्षुधितो-पाषाण' पर आधारित नृत्य रचना तैयार करने वाले प्रभात गांगुली, भारतीय कला केंद्र की रामलीला के निर्माता पं. नरेंद्र शर्मा, फिशरमैन व जलपरी सी नृत्य नाटिकाएं निर्मित करने वाले पं. सचिन शंकर, दिल्ली नाट्य बैले सेंटर में कृष्णलीला बनाने वाले भगवान दास सहित अनेक अन्य महत्वपूर्ण नाम यथा—देवीलाल सामर, प्रह्लाद दास, घनश्याम, सुंदरी भवनानी, नरेंद्र शर्मा, मोहन सेंगल, जोहरा सेंगल, सिमकी, सचिन शंकर, देवेंद्र शंकर, रविंद्र शंकर व अभिनेता गुरुदत्त एवं शंतिवर्धन आदि पं. उदयशंकर की शिष्य मणि-मेघमाला में शामिल हैं। उनके दल में 20-25 कलाकार थे, जिनमें 8 तो वादक ही थे। इनमें करदीकर इस दल के प्रमुख वादक

थे। वे उदयशंकर के नृत्यों में तबला तरंग में तेरह-तेरह तबले तक बजाते थे। एक ही समय में एक पाव से एक मात्रा, दूसरे से दो, एक हाथ से तीन, दूसरे हाथ से चार तथा मुंह से पांच मात्रा कर बताना उनके बाएं हाथ का खेल था। उदयशंकर के साथ उन्होंने उनके प्रोत्साहन द्वारा नए-नए बोल-ताल भी तैयार किए। आड़ा तीन ताला, लघुनवान्की बनाए। दो में तीन मात्रा, तीन में चार, चार में पांच और इसी प्रकार तीन में दो, चार में तीन, पांच में चार ऐसे लय के अनेक प्रकार खोजे। पं. उदयशंकर अपने इस दल प्रमुख से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उनके न केवल भारत अपितु विदेश के मंचों पर भी एकल प्रदर्शन रखवाए, जो बड़े प्रभावी तथा प्रशंसित रहे। करदीकर ने इन मंचों पर अकेले ही तबला, ढोल, नगारा, पखावज, जलतरंग, तबला तरंग, दुग्गी तरंग जैसे वाद्यों को एक साथ बजाकर खूब वाहवाही ली।

सितंबर, 1977 में विश्व नृत्यकला के विभिन्न क्षितिजों को छूने वाला यह महिमामंडित कला तपस्वी ब्रह्मलीन हो गया। 26 सितंबर, 1978 को भारत सरकार के संचार मंत्रालय ने इस महान नृत्यकार पर 25 पैसे का डाक टिकट भी जारी किया था। पं. शंकर का आजीवन यही प्रयास रहा कि—कला को जड़ नहीं बनने देना चाहिए, कला चाहे कोई भी हो वह परिश्रम के द्वारा ही अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होगी और इसी में कला और कलाकार की सर्वोच्च सफलता है।

जैकी स्टूडियो, 13 मंगलपुरा स्ट्रीट,
झालावाड़-326001 (राजस्थान)

कोरियाई साहित्य में मां

डॉ. दिविक रमेश

‘सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड’ सम्मानित वरिष्ठ लेखक डॉ. दिविक रमेश की विभिन्न विषयों पर साठ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक देशों की यात्रा कर चुके और दिल्ली विश्वविद्यालय के मोतीलाल नेहरू कॉलेज से प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त डॉ. दिविक रमेश कोरिया में अतिथि आचार्य के रूप में काम कर चुके हैं।

दक्षिण कोरिया में एक लंबे समय तक अध्यापन के सिलसिले में रहना हुआ। इस प्रवास ने मुझे वहां के जन-जीवन, संस्कृति, साहित्य, रिश्तों, समस्याओं, खूबियों आदि को जानने-समझने का भरपूर अवसर दिया। समय के साथ-साथ इस देश को जितना जानता गया उतना ही समझता गया कि आधुनिक और विकसित होते हुए भी यह देश मूलतः एक एशियाई संस्कृति का देश है, और अनेक मामलों में भारत के करीब है। बौद्ध धर्म की व्याप्ति को देखते हुए मुझे इस देश को यशोदा-भूमि कहने में संकोच नहीं हुआ। खैर, यहां विस्तार में जाने का अवसर नहीं है, यों भी कोरिया से संबद्ध मेरी अनेक पुस्तकें और लेख प्रकाशित हो चुके हैं। यहां तो मुझे कोरियाई मां को याद करना है। वह मां जो वहां के जीवन और समाज में है और वह मां भी जो वहां के साहित्य में मौजूद है। सबसे पहले तो मैं यह जरूर बताना चाहूंगा कि एक कोरियाई मां के कारण ही अपने प्रवास के एकदम प्रारंभिक दिनों में मुझे कोरिया अपना-सा लगने लगा था। विश्वविद्यालय में अध्यापन के पहले ही दिन जब मैं कोरिया में बस-सिस्टम से अपरिचित होने के कारण अपने घर पहुंचने के प्रयत्न में भटक गया था

तो फोटो की दुकान पर काम करने वाली एक कर्मठ और मजबूत दिखने वाली मां ही मदद के लिए आगे बढ़ कर आई थी—तन-मन से भी और धन से भी। इस अनुभव को मैं आज तक नहीं भूला हूं। इसके बाद तो अनेक बार मुझे अपने विद्यार्थियों और दोस्तों के घरों में जाने का अवसर मिला और अपने परिवार के प्रति भारतीय देसी मां जैसे आत्मीय व्यवहार और अतिथियों के प्रति बिछ-बिछ कर स्वागत करने के समर्पित भाव का आनंद लेने के खूब अवसर मिले।

इससे पहले कि मैं साक्षात् देखी कोरियाई मां और कोरियाई नारी के बारे में चर्चा को आगे बढ़ाऊं, साहित्य में उपलब्ध मां के दर्शन पर बात करना चाहूंगा। कहते हैं कि साहित्य रचनाकार की उत्कृष्ट मनःस्थिति की देन होता है, और उसमें रचनाकार काफी हद तक विशुद्ध आत्मा के रूप में हुआ करता है। अतः माना जा सकता है कि साहित्य में आई मां भी मां का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करती है। **शिन ग्युंग सुक** का एक पुरस्कृत उपन्यास है, जिसका हिंदी शीर्षक ‘मां का ध्यान रखो’ किया जा सकता है। इसके माध्यम से कोरियाई समाज में मां के अर्थ को अंदरूनी तौर पर समझा जा सकता है। इसमें मां की प्रतिमा स्थापित की गई है। मैं कोरिया के एक चर्चित कवि मून टे जुन (1970) की मां पर लिखी एक बेहतरीन कविता का एक अंश उद्धृत करना चाहूंगा—

“जागते ही भोर में/चीरता है मुझे/मां की बीमारी का विचार भर। बचपन में/जब

उड़कर आता था कण मेरी आंख में/मां/साफ कर अपना मुंह ठंडे पानी से/चाटती थी/मेरी आंख का गोला/मेरी आत्मा/मेरी मृदुतम जीभ से।××× किस जीवन में/धो सकेगी मेरी जीभ/उसके पथराए आंख-गोले को।”

एक और कविता है, प्रख्यात कवि यी ब्योंगी (1891-1968) की ‘वक्षस्थल’। मां अपने बच्चों को, जो कितने भी क्यों न हों किस जतन से पालती है, इसकी बहुत ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है इस नन्हीं सी कविता में—

“अपना सिर टिकाए मेरी गोद में/उस दिन वह लेटी थी अंतिम बार/वह नहीं कर पाई थी बर्दाश्त/अपनी छाती का दर्द/इसीलिए कर दी थी ढीली/अपने ब्लाउज की गांठ/ और प्रदर्शित कर दिए थे स्तन।/ पहले ही की तरह थे उसके स्तनाग्र/गहरे नीले।/आठ या नौ-मेरे भाई-बहन/पले थे इसी वक्षस्थल के घोंसले में।”

कोरियाई साहित्य में मां को बहुत ही ललक के साथ देखा गया है। मां के प्रति बच्चों में स्वाभाविक ललक होती है, क्योंकि वह होती ही इस योग्य है—“अब जरूर जाना चाहिए मुझे/गांव के बाहर/फूलों में खिली आकृति देखने।/जरूर लौटना चाहिए मुझे/अपने गांव के आवास पर/जहां स्वागत करती है मेरी मां/गांव से बहुत बाहर/गांव के स्मारक के पास।” (मां के लिए ललक, इन सो री)।

कोरिया ने एक लंबे समय तक आर्थिक तंगी झेली है। वहां की औरतों ने बहुत श्रम से

अपने बच्चों और परिवार को पालने में मदद की है। सन् 1524 में जन्मे कवि सो जे सुन की कविता 'फेरीवाली' में एक श्रमिक मां का अद्भुत चित्र खींचा है, ऐसा चित्र कि मां के इस रूप पर गर्व हो आए—“औरत की पीठ पर लटका है/अभागा बच्चा।/सिर पर टोकरी/पकड़े हैं हाथ!।/ध्यान ही कहां उसे/ उभर आए स्तनाग्रों का।/बिक जाने पर एक-दो/हो उठी है उनींदी/थकी/उसकी दूध पिला रही देह/ठंडी छाया के सुख से।/आ जुड़ा है जबकि एक और बोत्रा अनाज का, /धूप/ तमतमा रही है खलिहान में।”

बड़ों के साहित्य में ही नहीं, कोरियाई बाल साहित्य में भी मां की उपस्थिति बहुत महत्वपूर्ण है। मेरे द्वारा अनूदित कोरिया बाल कविताओं की पुस्तक 'कोरियाई बाल कविताएं' इस दृष्टि से पढ़ी जा सकती हैं। बाल कविताओं में भी एक मेहनती प्यारी मां का अपने बच्चों के प्रति और बच्चों का मां के प्रति लगाव देखते ही बनता है। काम के लिए जाने वाली मां को घर पर बच्चे को अकेले छोड़कर जाना तो पड़ता है, लेकिन बच्चे की चिंता हर समय उसके साथ बनी रहती है। कवि हन इन ह्योन ने ऐसी ही मां की बेचैनी इन पंक्तियों में चित्रित की है—“जल्दी जल्दी बेचारी मां/रेत-राह पर कदम बढ़ाती/सिर पर रख आधा मटका ही/घर पर वह दौड़ी आ जाती।”

कोरियाई कवियों ने बच्चों को ऐसे संस्कार देने चाहे हैं, जो उन्हें श्रम कर रही मां के प्रति संवेदनशील बनाए अथवा उनके भीतर विद्यमान संवेदनशीलता को जगाए। इस संदर्भ में बच्चों के बहुत ही प्रतिष्ठित कवि यून सक जुंग की कविता 'आओ तोड़ कर लाएं चांद' की ये पंक्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं—“वहां उधर 'सुन ही' के घर पर/दीया भी न जल पाता है/घना अंधेरा हो जाता पर/काम भी न कुछ हो पाता है।/आओ बच्चो आओ बाहर/ आओ तोड़ कर लाएं चांद/'सुन ही' की मां के

कमरे में/लटका दें हम चलकर चांद।”

वस्तुतः पारंपरिक रूप से साहित्य, फिल्म और संगीत आदि में मां की उसकी अद्वितीय बलिदानि प्रकृति के कारण खूब प्रशंसा मिलती है। किंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मां एक स्त्री भी है। अतः समाज में उसके होने का एक जरूरी संदर्भ उसके स्त्री होने के आधार पर भी टिका है। भले ही आज विकसित कोरिया में स्त्री की स्थिति पुरुष के संदर्भ में बहुत ऊंची और उपयुक्त हो चुकी है, लेकिन कोरियाई नारियों ने पुरुष का दबदबा खूब सहा है। अनेक एशियाई समाजों की तरह घर को चलाने में पिसने की नियति कोरियाई नारियों की भी रही है। लेकिन अच्छी बात यह है, कि कोरियाई समाज इस समस्या से निजात पाता चला गया है। हां, कोरियाई मां अथवा पत्नी की घर के कामकाज के प्रति आज भी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। लेकिन मां का दर्जा कोरियाई समाज में बहुत ऊंचा माना जाता है। कहावत है कि महान पुरुष की सफलता के पीछे महान नारी का हाथ होता है। कोरिया के संदर्भ में प्राथमिकता की दृष्टि से, औरत के रूप में, कदाचित पत्नी के स्थान पर मां का स्थान ऊंचा माना जाता है। मां एक सांस्कृतिक 'आइकोन' (मूर्ति) है।

कोरियाई समाज मूलतः परिवारवादी है। भावनात्मक दृष्टि से कोरियाई लोग अपनी मांओं से बहुत गहरा जुड़ाव रखते हैं। मां और बच्चों के बीच का संबंध बहुत मजबूत अर्थात् अटूट होता है। कोरियाई लोगों की निगाह में मां बहुत खास और फरिश्ते की-सी होती है जो अथक पालन-पोषण करती है। मुसीबत, भ्रम या अकेलेपन में वह पूरा साथ निभाती है। वह लगभग संजीवनी जैसी होती है। भारतीय लोगों के समान बीमारी में कोरियाई लोग भी मां को बहुत याद करते हैं। अपनी मां को याद कर वे बहुत बेचैन होते हैं। कोरिया में मां के बिना घर, घर नहीं होता। सच तो यह है कि अपनी मृत्यु के बाद भी कोरियाई मां अपने

बच्चों की मीठी यादों में सदा निवास करती है। एक विशिष्ट गुण जो कोरियाई मां को कुछ अत्यंत समृद्ध और विकसित देशों की मां से अलग करता है, वह है उसका अपने बच्चों के लिए अपनी निजी जिंदगी की भी परवाह न करना। अर्थात् वह अपने लिए नहीं बल्कि अपने बच्चों के लिए जीती है। वह भी बिना किसी शिकायत के। कोरियाई स्त्री बहुत मजबूत तथा ताकतवर मानी जाती है। वहां का चेजू द्वीप तो ताकतवर दीवारों, ताकतवर हवाओं और ताकतवर औरतों के लिए प्रसिद्ध है। मुझे बताया गया था कि औरतें समुद्र में, अपने परिवार के भोजन के लिए ऑक्टोपस आदि पकड़ने के लिए नंगे पांव ही छलांग लगाती रही हैं। मुझे सहसा 'वोल्गा से गंगा' पुस्तक की याद हो आई, जिसमें राहुल सांकृत्यायन ने साहसी औरतों के कितने ही ऐसे कारनामे चित्रित किए हैं, जो पुरुषों को भी लज्जित कर दें। इसमें कोई शक नहीं है कि कोरियाई औरतें बहुत मेहनती और अपने काम में प्रति निष्ठावान होती हैं। उन्हें दुकानें चलाते हुए और रेस्टोरेंट आदि में काम करते हुए भी देखा जा सकता है। वे बड़े से बड़े काम करने में सक्षम हैं और बड़े से बड़े पद पर सुशोभित भी हैं। गांव देहात की ओर जाएं तो वे थोड़ी शर्मीली भी प्रतीत हो सकती हैं लेकिन उनमें गजब का आत्मविश्वास और जीवन जीने की ललक होती है। उन्होंने कोरियाई युद्ध और उसके अत्याचारों को झेला है, लेकिन अपने घर को उठाने में बराबर अद्भुत योगदान दिया है।

कोरियाई समाज में बिन ब्याही मां (अथवा 'सिंगल' मां) की स्थिति विचित्र है भले ही अब 'सिंगल मां दिवस' भी क्यों न मनाया जाने लगा हो। कोरियाई समाज में इस स्थिति से जूझ रहा है, और उबर भी रहा है। बिन ब्याही मां होना कोरियाई समाज में धब्बा माना जाता रहा है। ऐसी मांओं को बहुत अधिक आर्थिक और सामाजिक तंगी सहनी पड़ी है। नौकरी से भी हाथ धोने पड़ते हैं। बहुतों को गर्भपात के

लिए मजबूर किया जाता रहा है, और बहुतों को अपने बच्चों को गोद देने पर विवश किया जाता रहा है। लेकिन सरकारी मदद और समाज की मानसिकता में बदलाव के कारण ऐसी मांओं की स्थिति में सुधार आया है। वस्तुतः कोरियाई समाज के अग्रदूतों ने हमेशा ऐसी मानसिकता पर प्रहार किया है जिसके चलते मनुष्य की मनुष्यता ही खतरे में पड़ी है। शुरुआत हुई ह्यो ग्यून (Heo Gyun—1690–1718) के हांगल (Hangeoul) कोरियाई में लिखी हांगगिलदोंगज्योन (हांग गिल दोंग की कहानियाँ) से। इस उपन्यास में अभिजात्य (उच्च) वर्ग के व्यक्ति (यांगबांन) और उपपत्नी (रखैल) से उत्पन्न बच्चों के प्रति शासन करने वालों के द्वारा किए जा रहे भेदभाव का जमकर विरोध किया गया है। वस्तुतः ह्यो ग्यून के सुधारवादी विचारों का आधार मानवतावाद और प्रजातंत्र था। वे वैध और अवैध संतान के भेद को मिटा देना चाहते थे। आज के कोरिया में हम बच्चों के प्रति बहुत ही जागरूक और जिम्मेदार समाज के दर्शन कर सकते हैं। यों कोरिया

समाज सोपा बांग जुंग ह्वान को कभी नहीं भूल सकता, जिन्होंने बच्चों के अधिकारों की मशाल जलाई थी और 'बच्चों का आदर करो' का नारा दिया था।

खैर मुझे तो कोरियाई मां भी भारतीय (देसी) मां की तरह शेरनी-सी ही प्रतीत हुई, जो अपने बच्चों के बचाव में किसी भी हद तक जा सकती है। यहां मुझे अपनी ही एक पहले की कविता याद हो आई है—वह औरत : मेरी मां—

“वह औरत
जिसे तुम हव्वा कहते हो
मेरी मां है।

मां-एक गुदगुदा अहसास
खुली आंखों में जैसे पूरा आकाश।
खड़ी हो ज्यों धूप में
सहमी-सी, भयाक्रांत, कोई बड़ी चिड़िया
पंख फुलाए
दुबाकर
नन्हा-सा शिशु।

हां
तुम्हें जो दौड़ती है काटने
तुम्हारे शब्दों में कुतिया
मेरी मां है
मेरी रक्षक।

हवा में
गंदे नाखूनों का फैलाव लिए
जो चमका रही है उंगलियां
अनाश्रित
खुद ही आधार, खुद ही छत,
पीले, जंग खाए दांत दिखा-दिखाकर
जो बक रही है, भूतनी-सी

ईश्वर की यह प्रतिभा
मेरी मां है—
आती, कुचलती हुई
ईश्वर की बेजान तसवीरें।

हतप्रभ तुम
अब उसे रोक नहीं सकोगे।

बी-295, सेक्टर-20,
नोएडा-201301

प्राचीन मंदिरों की स्थापत्य-विरासत एवं संरक्षण

डॉ. अनुज कुमार

पिछले पंद्रह वर्ष से अध्यापन से संबद्ध डॉ. अनुज कुमार राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियों में हिस्सा ले चुके हैं।

भारत की प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक विरासत समृद्ध और अद्वितीय है। एक विस्तृत भू-भाग में फैले होने तथा सभ्यता के उदय से आधुनिक काल तक के लंबे इतिहास के कारण हमारी सांस्कृतिक विरासत के स्वरूप और प्रकार में विभिन्नताएं व विविधताएं दृष्टिगोचर होती हैं। विरासत वह है, जो हमें पूर्वजों से प्राप्त हुई है। वह हमारे चारों ओर विद्यमान है। यह प्राकृतिक अथवा निर्मित है अथवा इतिहास के साथ विकसित हुई है। विरासत एक ओर किसी स्थान, क्षेत्र या देश तो दूसरी ओर एक परिवार, समुदाय और लोगों की विशिष्टता तथा पहचान है। अपने देश के धर्मों, आस्थाओं, पूजा पद्धतियों और रीतियों ने भी हमारी सांस्कृतिक विरासत को समृद्धि प्रदान करने में महती भूमिका का निर्वहन किया है। संपूर्ण भारत में फैले भिन्न-भिन्न कालों से संबंधित पुरातात्विक महत्त्व वाले स्मारक, स्थल, मंदिर, मठ, स्तूप, आदि हमारी सांस्कृतिक विरासतों के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, वहीं दूसरी ओर कला, हस्तकला, साहित्य, विज्ञान और मानव जीवन से संबंधित जीवंत परंपराएं भी विद्यमान हैं। इन सभी पक्षों ने देश के सांस्कृतिक सम्मिलन के एकीकरण में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारत के प्राचीन मंदिरों का स्थापत्य हमारी अमूल्य धरोहर है। इनकी स्थापत्य कलाओं का सौंदर्य सृजनकर्ताओं की वह अभिव्यक्ति है, जिसे भारतीय कला में मस्तिष्क और

हस्तकौशल का सर्वोत्तम प्रमाण माना जा सकता है। कला शब्द सौंदर्य की अभिव्यक्ति है। जब मानव प्रकृति के उपादानों में अपनी कल्पना का समावेश करके उन्हें प्रस्तुत करता है, तब वहीं कला के नाम से जानी जाती है। कला का अर्थ है—अपने अव्यक्त भावों को कतिपय साधनों द्वारा व्यक्त करना। कुछ विचारकों की राय में—“सौंदर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु कला कहलाती है। सामान्यतः स्थापत्य को ही वास्तुकला या वास्तुशिल्प भी कहते हैं। स्थापत्य, शिल्प प्रधान होता है। इसके अंतर्गत गृह, भवन, राजप्रासाद, आगार, आदि के निर्माण कार्य सम्मिलित किए जाते हैं। स्थापत्य के दो रूप प्रमुख हैं—धार्मिक और लौकिक। लौकिक में प्रासाद, हवेली, दुर्ग, कीर्तिस्तंभ, लाट, मीनारें हैं। ऐसे शिल्पों का संबंध मुख्यतः सामाजिक और राजनीतिक निर्माणों से होता है। वहीं धार्मिक स्थापत्य में स्तूप, चैत्य, विहार, मठ, मंदिर, दरगाह, मस्जिद, गिरजाघर शामिल हैं। भारत के प्राचीन मंदिरों की स्थापत्य कला भारत की रचनात्मक मेधा व प्रतिभा का समुज्ज्वल रूप प्रस्तुत करती है। प्राचीन काल से ही भारत के जन-जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान रहा है। बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों धर्मों का विस्तार यहीं हुआ है जहां धर्म के प्रसार के साथ-साथ इनके अनुयायियों ने कुछ ऐसा स्थायी निर्माण करने का विचार किया जिनसे उनका धर्म दीर्घ काल तक अस्तित्व में रह सके। इस संदर्भ में गुफाओं, स्तूपों और मंदिरों का निर्माण किया गया। मंदिरों में देव प्रतिमाओं की स्थापना की गई, जिनकी ईश्वर के प्रतीक के रूप में

पूजा की जा सके। हमारे देश के लगभग हर भाग में मंदिर मिलते हैं। ये मंदिर अलग-अलग धर्म अथवा संप्रदायों के हो सकते हैं यथा हिंदू, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि। ये सादगीपूर्ण भी हो सकते हैं अथवा अत्यधिक अलंकृत और जटिल भी। विभिन्न क्षेत्रों और काल में निर्माण के लिए उपलब्ध सामग्री अथवा विशिष्ट धार्मिक आवश्यकताओं के अनुरूप इनकी अलग-अलग पहचान और विशेषताएं हो सकती हैं।

किसी एक देवी-देवता या इष्ट को समर्पित मंदिर से लेकर मुख्य देवता के साथ अनेक देवी-देवताओं के संयुक्त मंदिर परिसर तक के उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास से ज्ञात होता है कि भारत के सभी प्रमुख राजवंशों ने मंदिरों के निर्माण कार्य में सहयोग दिया और एक से बढ़कर एक भव्य एवं आकर्षक मंदिरों का निर्माण किया। भारतीय मंदिरों के स्थापत्य में प्रत्येक युग में कुछ न कुछ विकास भी होता रहा और लाक्षणिक विशेषताओं सहित भौगोलिक एवं क्षेत्रीय आधार पर तीन शैलियों का अस्तित्व कायम हुआ। उत्तर भारत में नागर शैली, दक्षिण भारत में द्रविड़ शैली और दोनों शैलियों के सम्मिलित रूपों को वेसर शैली अथवा चालुक्य शैली के नाम से अभिहित की गई, जो मध्य भारत एवं दक्षिणी पठार के क्षेत्रों में विकसित हुई मानी गई है।

नागर शैली के मंदिर जहां ऊंचे चबूतरे पर निर्मित किए गए हैं, वहीं द्रविड़ शैली के मंदिरों की सर्वप्रमुख विशेषता है—गोपुरम् या आंगन का मुख्य द्वार। यह गोपुरम् कुछ मंदिरों में

इतना अधिक ऊंचा बनाया गया है कि सामने से मंदिर का प्रधान शिखर भी दृष्टिगोचर नहीं हो पाता है। इस शैली की अन्य विशेषताओं में अनेक मंजिलों से युक्त तथा पिरामिड के आकार का गर्भगृह का ऊपरी भाग भी प्रमुख है। यहां यह बताना आवश्यक है कि मंदिर स्थापत्य की इन शैलियों की सीमा को निर्धारित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वृंदावन का विशाल वैष्णव मंदिर द्रविड़ शैली का प्रतिनिधित्व करता है, वहीं दक्षिण भारत में भी नागर शैली के मंदिर दृष्टिगोचर होते हैं और देश की राष्ट्रीय एकता का एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं।

मंदिर का सर्वप्रथम उल्लेख 'शतपथ ब्राह्मण' में मिलता है। सर्वप्रथम निर्माण की परंपरा का श्रीगणेश संभवतः गुप्त वंश के संस्थापक श्रीगुप्त ने किया था। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार श्रीगुप्त द्वारा निर्मित देवालय नालंदा से कुछ दूरी पर था। मंदिर निर्माण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम बिना छत के खुले मंदिर बने होंगे और बाद में छत वाले मंदिरों का निर्माण हुआ होगा। गुप्त काल के पूर्व के मंदिर बहुत कम मिलते हैं। इस काल के पूर्व के मंदिरों का अनुमान, उसकी रूपरेखा का ज्ञान भरहुत, अमरावती, सांची, गया एवं मथुरा के प्रस्तरों पर अंकित चित्रों से ही होता है। मंदिर स्थापत्य के विकास का संबंध में अनुमान है कि उत्तर भारत में सर्वप्रथम देवमूर्ति के आश्रय के लिए पहले एक 'गृह' होता था जो गर्भगृह के रूप में स्थापित हो गया। फिर स्तंभों पर आश्रित मंडप बनने लगे, जो मात्र दर्शनार्थियों के लिए होते थे, बाद में 'जगमोहन का स्थान बना'। छत सपाट-समतल होती थी। द्वारों पर द्वारपाल, फिर गंगा-यमुना और तदंतर दीवारों पर

मूर्तियां उत्कीर्ण की जाने लगीं। छत धीरे-धीरे उपयोगिता के आधार पर शिखर के रूप में परिवर्तित हो गई और शिखर के भी विभिन्न आकार होने लगे। अपने स्थापत्य के लिए प्रमुख मंदिरों में ओडीशा के भुवनेश्वर स्थित लिंगराज मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर, पुरी का जगन्नाथ मंदिर विशेष महत्त्व के हैं। वहीं खजुराहो मंदिर समूह तथा राजस्थान के जैन मंदिर भी सर्वोत्कृष्ट आकर्षण के केंद्र रहे हैं। मंदिर को 'प्रसाद पुरुष' भी कहते हैं। प्रतीक शास्त्रियों ने मंदिर के अंग-प्रत्यंग के निर्माण का उद्देश्य एवं विधान निश्चित किया है। मंदिर निर्माण की पृष्ठभूमि में दार्शनिक रहस्य भी निहित है। आकार, प्रकार, स्वरूप, ऊंचाई, ध्वज, कलश, वाह्य अलंकरण, वेदी, प्राचीर, प्रदक्षिणा आदि सभी का धर्मशास्त्रीय तथा आगमशास्त्रीय महत्त्व है। विशाल पर्वत श्रृंखलाओं में अनंत धनराशि खर्च करके भी मंदिर बनाए गए हैं।

मंदिर वास्तु का सबसे प्रमुख मणस्व शिखर है जो पर्वत के प्रतीक के रूप में है। पर्वत देवताओं के मुख्य निवास हैं। इन्हीं को भावना एवं कल्पना में अनुदित करके मंदिर, शिखर का रूप दिया गया है। मंदिरों के निर्माण में मंडपों, स्तूपिकाओं, दीवारों, छतों एवं स्तंभों के प्रभावपूर्ण निर्माण ने शिल्प को चरमोन्नति में पहुंचा दिया है, वहीं मूर्ति के विशिष्ट रूपायन, पुराकथाओं एवं देवसमूह के सूक्ष्म चित्रण ने मंदिर के वास्तु को अनुपम एवं असाधारण बना दिया है। आज मंदिर स्थापत्य विभिन्न मोड़ों और परिवर्तनों से होता हुआ सौंदर्य एवं शृंगार का प्रतिनिधि बन चुका है। भारतीय शिल्पियों ने अपनी कला का चमत्कार मुख्यतः मंदिर स्थापत्य में ही उड़ेल दिया है। मध्यप्रदेश के सांची, नचना कुठार,

चंदेल निर्मित खजुराहो, उत्तरप्रदेश के झांसी के निकट देवगढ़, कानपुर स्थित भीतरगांव, बिहार में बोध गया, तमिलनाडु के तंजावुर में वृहदेश्वर मंदिर, मदुरई का मीनाक्षी मंदिर, विजय नगर शासकों की राजधानी हम्पी स्थित मंदिर, केरल का पेरुवन्नम् का शिव मंदिर, असम में गुवाहाटी का कामाख्या मंदिर, महाराष्ट्र का कैलाश व महाबलेश्वर का मंदिर, बंगाल का कालीघाट का मंदिर जीवंत साक्षी के रूप में उपस्थित हैं।

प्राचीन मंदिरों की स्थापत्य हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की पहचान है। देश और लोगों की पहचान को परिलक्षित करते ये मंदिर हमें गौरव प्रदान करते हैं। भूमंडलीकरण के कारण होने वाले तीव्र परिवर्तनों, इतिहास एवं कला के महत्त्व के प्रति जागरूकता की कमी, पर्यटन में अनियंत्रित वृद्धि, पर्यावरण के हास, विरासतों के प्रति घटते लगाव हमें यह सोचने के लिए बाध्य करते हैं, कि हम अपनी कलाओं का संरक्षण कैसे करें? प्राचीन मंदिरों का संरक्षण तभी संभव है जब हम इसके प्रति जागरूक हों। विरासतों के संरक्षण में इसका पालन पोषण समाहित है, जो इसकी वृद्धि और निरंतरता को सुनिश्चित करता है। यद्यपि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग सहित कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय एजेंसियां इस क्षेत्र में कार्यरत हैं, परंतु इस प्रयास में सरकार के साथ समुदाय को भी अपनी भूमिका तय करनी होगी। मंदिरों के कलात्मक सौंदर्य को बनाए रखने के लिए एक राष्ट्रीय नीति निर्माण के बारे में भी हमें सोचना होगा।

अध्यापक (सामाजिक अध्ययन),
जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर,
जिला-रीवा (मध्यप्रदेश)

दिनकर का गद्यकार रूप

सुरेश सक्सेना

सुरेश सक्सेना : विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में विविध विषयों पर स्वतंत्र लेखन।

आधुनिक युग की सबसे प्रधान घटना गद्य का आविर्भाव मानी जाती है। यद्यपि आदिकाल में भी गद्य साहित्य की झलक देखी जाती है, परंतु वह गद्य सर्वथा अपरिमार्जित और अपरिष्कृत था। गद्य के विकास की दृष्टि से भारतेंदु युग ही आरंभिक युग कहा जा सकता है। आधुनिक युग में भी यद्यपि गद्य साहित्य का निर्माण शुरू हो गया, परंतु परिमार्जन और शुद्धता की ओर कम ध्यान दिया गया था। भाषा के परिष्कृत करने का कार्य द्विवेदी युग में किया गया। उस युग में भी विषयों के व्यक्तिकरण की क्षमता का अभाव था। आधुनिक युग में प्रसाद, प्रेमचंद तथा रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी गद्य का पर्याप्त विकास किया। निबंध, ललित निबंध, आलोचना, उपन्यास आदि के क्षेत्र में हिंदी साहित्य समृद्ध तो हुआ परंतु विशुद्ध गद्य का तो मानो पर्याप्त अभाव दृष्टिगत होता था। गद्य के सुव्यवस्थित एवं सुनिर्दिष्ट गद्य पर किसी साहित्यकार का ध्यान ही नहीं गया। दिनकर ऐसे ही महान गद्यकार थे, जिन्होंने एक विशुद्ध गद्यकार के रूप में अपना परिचय दिया। इसी दृष्टि से उनके संपूर्ण गद्य साहित्य का महत्त्व और स्थान विशेष हो जाता है।

बाल्यावस्था से ही दिनकर का जीवन संघर्षमय रहा। जब उनकी आयु केवल दो वर्ष की थी कि उनके पिता का देहांत हो गया। विधवा मां की देखरेख में ही जीवन व्यतीत हुआ। पारिवारिक दायित्वों के कारण उन्हें शीघ्र ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी और बाबा विद्या हाईस्कूल

में प्राध्यापक के पद पर काम करना पड़ा। परंतु आर्थिक कठिनाइयों का बोझ, उनके साहित्य-सृजन को नहीं रोक सका। वे परिस्थितियों के कारण विवश अवश्य थे परंतु निर्भीक थे और कभी-कभी इस प्रकार के निर्णय लेते थे कि एक आम आदमी के बस की बात नहीं थी। भगवतीचरण वर्मा ने लिखा है—“संघर्षों ने दिनकर को कठोर बना दिया था।”

वह एक ऐसे परिवार वत्सल व्यक्ति थे, जो परिवार को हमेशा कुछ न कुछ देते रहे पर कुछ पा ना सके। परिवार का बोझ हमेशा उन पर हावी रहा। श्री प्रफुल्लचंद ओझा ‘मुक्त’ से उन्होंने कहा था, “मुक्त मैंने जो इतनी कविताएं लिखी हैं, गद्य के पोथे लिखे हैं, देश में घूम-घूम कर भाषण देता फिरा हूं, इतनी प्रतिष्ठा पाई है इसे अगर तुम मेरा कृत्वि मानते हो तो बहुत गलती करते हो। मेरा सबसे बड़ा कृत्वि यह है कि मैंने 9 बेटियों की शादी की है।”

दिनकर गद्य रचनाओं को स्थूल दृष्टि से वर्गीकृत करने पर प्रतीत होता है मानो उसकी समस्त कृतियां एक ही इकाई की विस्तृतियां हैं। उनके गद्य साहित्य के विधिवत मूल्यांकन के लिए उनकी कृतियों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

आलोचनात्मक ग्रंथ—‘मिट्टी की ओर’, ‘पंत-प्रसाद और मैथिलीशरण’, ‘काव्य की भूमिका’ तथा ‘शुद्ध कविता की खोज’।

सांस्कृतिक ग्रंथ—‘संस्कृति के चार अध्याय’, ‘हमारी सांस्कृतिक एकता’, ‘भारतीय एकता’ तथा ‘राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रीय एकता’।



निबंध साहित्य—‘अर्धनारीश्वर’, ‘वेणु-वन’, ‘वट पीपल’, ‘धर्म’, ‘नैतिकता और विज्ञान’, ‘साहित्य मुखी’, ‘राष्ट्र भाषा आंदोलन और गांधी जी’, ‘विवाह की मुसीबतें’ तथा ‘आधुनिक बोध’।

संस्मरण साहित्य—‘लोकदेव नेहरू’ तथा ‘संस्मरण और श्रद्धांजलियां’।

यात्रा साहित्य—‘देश विदेश’ तथा ‘मेरी यात्राएं’।

डायरी साहित्य—‘दिनकर की डायरी’।

कथा और गद्य काव्य—‘उजली आग’।

बाल साहित्य—‘चित्तौड़ का साका’ तथा ‘भारत की सांस्कृतिक कहानी’।

रेडियो रूपक—‘हे राम!’

दर्शन—‘चेतना की शिखा’।

‘मिट्टी की ओर’ दिनकरजी की प्रथम गद्य पुस्तक है, जिसका प्रकाशन सन् 1946 में हुआ। वस्तुतः जब दिनकर ने एक महान गद्यकार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने की सोची तब वह यह निश्चित नहीं कर पा रहे थे कि वे एक आलोचक बनें अथवा एक गद्यकार—यही तथ्य उनकी कृति ‘मिट्टी की ओर’ में स्पष्ट है। इसमें उनका गद्यकार रूप प्रतिबिंबित होता है। इसमें आलोचनात्मक निबंध संग्रहित हैं तथापि यह आलोचना नहीं है। नामकरण एवं विषयवस्तु के चयन की दृष्टि से वह आलोचना कम और गद्य ज्यादा है।

दिनकर के वैचारिक सिद्धांत से निहित यह उनके गद्य साहित्य का प्रतिनिधि ग्रंथ है। दिनकरजी के हृदय में यह द्वंद्व दिखाई देता है, कि वह गद्य और आलोचना में से किस को चुनें क्योंकि आलोचना उनकी आवश्यकता है परंतु गद्य उनकी प्रकृति। आरंभ में उनका गद्यकार रूप क्षीण होता दिखाई देता है परंतु अंत में वह अपनी रचना में कुशल गद्यकार के रूप में ही नजर आते हैं। उनकी यह प्रथम रचना हिंदी गद्य साहित्य में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखे हुए है।

‘पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण’ उनका दूसरा आलोचनात्मक ग्रंथ है। इसमें दिनकरजी ने अपने पूर्ववर्ती तीनों कवियों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। किंतु प्रसाद और गुप्त की तुलना में पंत के प्रति उनमें अधिक आस्था एवं आकर्षण दृष्टिगत होता है। यद्यपि पंत एवं दिनकर के काव्य की प्रकृति में बहुत अधिक अंतर है। दिनकर के शब्द में हथौड़ी और छैनी का फर्क है। यह दिनकर की शुद्ध आलोचना का ग्रंथ है इसमें वह एक गद्यकार और समीक्षक के रूप में प्रकट होते हैं।

‘शुद्ध कविता की खोज’ में उनके दर्शन संबंधी विचार उन्हें एक चिंतक एवं अध्येता के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। मन्मथ नाथ गुप्त

के अनुसार यदि दिनकरजी कविता की एक पंक्ति भी न लिखते तो भी वह इस पुस्तक के आधार पर अमर हो जाते। इस पुस्तक का मूल्यांकन करते हुए गोपाल राय एवं डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा कि यह विवेच्य ग्रंथ की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसमें शुद्धतावादी काव्य आंदोलन का इतिहास क्रमबद्ध प्रस्तुत है। इनके अनुसार भारतीय भाषाओं में इस विषय की यह पहली पुस्तक है और हिंदी जगत की अमूल्य निधि है।

‘काव्य की भूमिका’ मुख्यतः सैद्धांतिक ग्रंथ है और उसमें काव्यत्व विषय प्रतिफलित हुआ है। उससे हिंदी आलोचना साहित्य समृद्ध हो सकता है। यह वस्तुतः उनके काव्य ग्रंथ ‘चक्रवाल’ की भूमिका थी। इस ग्रंथ में रीतिकाव्य से लेकर प्रयोगवादी कविता तक का नए ढंग से मूल्यांकन एवं विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

‘संस्कृति के चार अध्याय’ दिनकर की सर्वश्रेष्ठ गद्य रचना है। स्वयं दिनकर के शब्दों में—“वह तो है ही—मेरे समूचे अध्ययन का निचोड़ है उसमें।” यह पुस्तक साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुई। हिंदी गद्य साहित्य में इस प्रकार की सांस्कृतिक इतिहास की रचना और कोई नहीं है।

‘भारतीय एकता’, ‘राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता’, ‘हमारी सांस्कृतिक एकता’ आदि उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण गद्य रचनाएं हैं जो भारत की एकता एवं सांस्कृतिक इतिहास प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत रचनाओं में दिनकर एक निर्द्वंद्व गद्यकार के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। दिनकर निबंध साहित्य हिंदी गद्य साहित्य की परंपरा में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

गद्य की प्रकृति के संबंध में दिनकर के विचार द्रष्टव्य हैं—“मैंने इस संग्रह का नाम ‘अर्धनारीश्वर’ रखा है, यद्यपि इसमें अनुपाततः ‘नरत्व’ अधिक ‘नारीत्व’ कम है।” इस गद्य रचना का सृजन कर स्वयं दिनकर भी आनंदित हो उठे थे।

इनके अतिरिक्त उनकी रचनाएं ‘वट पीपल’,

‘रेती के फूल’, ‘आधुनिक बोध’, ‘वेणुवन’ आदि उन्हें समर्थ गद्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। उनका गद्य प्रौढ़ है।

दिनकर का संस्मरण साहित्य हिंदी गद्य साहित्य की अमूल्य निधि है। ‘लोकदेव नेहरू’ तथा संस्मरण और श्रद्धांजलियों में दिनकरजी ने अपने समकालीन महापुरुषों एवं साहित्यकारों का चित्रण किया है। इन संस्मरणों में दिनकरजी के महान गद्यकार व्यक्तित्व का निश्चल प्रकाशन हुआ है। ‘लोकदेव नेहरू’ में उन्होंने नेहरूजी के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं एवं उनके विचारों का अंकन करने में अपनी अनुभूति पक्ष के प्राबल्य का परिचय दिया है। गोपीकृष्ण प्रसाद ने गद्यकार के रूप में दिनकर का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—“दिनकरजी ने कवि के रूप में प्रतिष्ठा पाई किंतु मेरी राय में वे उतने ही कुशल गद्यकार थे। उनकी रचनाओं में विविधता है।”

हिंदी गद्य साहित्य में यात्रा साहित्य बहुत ही कम लिखा गया है। दिनकर ने अपनी रचनाओं में ‘देश-विदेश’ एवं ‘मेरी यात्राएं’ नामक रचनाओं द्वारा इस दिशा में हिंदी गद्य साहित्य को समृद्ध किया है। दिनकरजी की विदेश यात्राओं एवं वहां की सभ्यता एवं संस्कृति का विवरण इन रचनाओं में किया है। यह वर्णन उन्होंने वर्णनात्मक एवं रोचक शैली से प्रस्तुत किया है।

‘दिनकरजी की डायरी’ में बारह वर्षों की साहित्यिक गतिविधियों का चित्रण किया गया है। वस्तुतः इसमें गद्य के दो रूपों—डायरी और जर्नल में परिष्कृत गद्य के दर्शन होते हैं। इस प्रकार की रचनाएं हिंदी गद्य साहित्य में दुर्लभ हैं।

‘उजली आग’ यह दिनकरजी की बोधकथाओं को प्रस्तुत करती है। इसमें कुछ विचारोत्तेजक काव्य और निबंध भी हैं। भाषा बहुत ही सरल एवं सुबोध है, किंतु गद्य पर्याप्त प्रौढ़ है। इस पुस्तक में चमत्कार की प्रधानता है। यह साधारण पाठक के लिए भी उपयोगी है। इसी

वजह से यह लोकप्रिय भी हो सकी। हिंदी गद्य साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है और यह दिनकर के अनुभवों का निचोड़ है।

दिनकरजी ने बालकों के ज्ञानवर्धन के लिए भी सरल और सुंदर भाषा में साहित्य प्रदान किया है। उनकी दो रचनाएं 'चित्तौर का साका' तथा 'भारत की सांस्कृतिक कहानी' बालकों के मन में अमिट छाप छोड़ती हैं। 'चित्तौर का साका' में शिक्षाप्रद एवं मनोरंजन प्रधान ऐतिहासिक कहानियां संकलित हैं। 'भारत की सांस्कृतिक कहानी' छोटे बालकों को संक्षेप में भारत के सांस्कृतिक इतिहास से परिचित करवाती है। यह दोनों रचनाएं हिंदी गद्य साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

'हे राम!' रेडियो रूपक का संकलन है। इसमें स्वामी विवेकानंद, महर्षि रमण एवं महात्मा गांधी के जीवन से संबंधित रूपक इन महापुरुषों के संपूर्ण व्यक्तित्व को उभारते हैं। इसमें व्यंग्यात्मक टिप्पणी एवं गीत द्वारा चरित्रों को उभारा गया है। जीवन की अंतिम पौड़ी पर आकर दिनकर की अध्यात्म की ओर उन्मुख हो गए थे। उन पर गांधी, इकबाल,

रवींद्र एवं अरविंद का अमिट प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव उनकी रचना, 'चेतना की शिखा' में दिखाई देता है। उनकी अंतिम इच्छा वेंकटेश्वर मंदिर में बालाजी के दर्शन करने की थी। 23 अप्रैल, 1974 को वे तिरुपति के मंदिर में गए थे। वहां दर्शन के उपरांत 24 अप्रैल को मद्रास के नर्सिंग होम में भर्ती होते-होते वह महान आत्मा दिनकर 'राम, राम, राम'- कहते कहते सदा-सदा के लिए हम सबको छोड़ गए।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि दिनकर जी ने गद्य के क्षेत्र में अपने गद्य साहित्य के माध्यम से एक युगांतर प्रस्तुत कर दिया। गद्य के गहन से गहन विषय को ऐसी सहजता से लेखबद्ध किया कि विज्ञान और दर्शन जैसे विषय भी उनके गद्य शक्ति और शैली के परिचायक बने। 'दिनकर व्याख्यान माला' में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा था—“भगवान ने उन्हें बहुमुखी प्रतिभा, वाणी, देवोमय व्यक्तित्व देकर संसार में भेजा था जिस तरह गद्य-पद्य दोनों में समान रूप से लिखते थे।”

उनकी गद्य रचनाओं में जिस प्रकार कतिपय स्थलों पर काव्य की छटा दिखाई देती है,

उसकी प्रकार उनके काव्य ग्रंथों में भी भाव और भाषा सरस व प्रौढ़ रूप से पाठकों को प्रभावित करते हैं। वे यदि संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने में सिद्धहस्त थे तो मुहावरेदार सुगम भाषा उनकी गद्य रचनाओं में उनके भाषा पर असाधारण अधिकार की परिचायक थी। दिनकर का गद्य उनको संपूर्ण व्यक्तित्व का प्रतिफलन है।

कविता में वे जिस विषय की भी अभिव्यक्ति नहीं कर पाए उसे उन्होंने गद्य रूप में स्पष्ट कर दिया। उन्होंने एक बार स्वयं ही रूसी महिला स्वेतलाना से कहा था—“केवल मेरी कविताएं ही काफी नहीं हैं, मेरे निबंधों को भी ध्यान से पढ़ना।”

अंततः उनकी समस्त गद्य कृतियां हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। वे हिंदी साहित्य में अपना अमिट स्थान बनाए रखेंगी और गद्यकार दिनकर को भी अमर बनाएंगी इसमें सदेह नहीं है।

44, पंचशील पार्क, जी.टी. रोड, साहिबाबाद,
जनपद-गाजियाबाद-201005 (उत्तर प्रदेश)

जबान पर चाहिए लगाम

डॉ. केशव फालके

महाराष्ट्र राज्य के जन संपर्क अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त डॉ. केशव फालके वर्तमान में संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार की फेलोशिप 'बंजारा समाज और संस्कृति' पर अध्ययनरत हैं। साथ ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्वतंत्र लेखन।

जबान फारसी भाषा का स्त्रीलिंग शब्द है जिसका नालंदा विशाल शब्द सागर और वृहत् हिंदी कोश में शब्द, जीभ, जिह्वा, बोल, वायदा, प्रतिज्ञा, भाषा, रसना, वाणी, बोली, वचन अथवा बात इत्यादि हिंदी में अर्थ होता है। संदर्भ-विस्तार से इन शब्दों के अर्थ बदलते हैं। जैसे जब हम किसी को जबान का पक्का कहते हैं, तो हमारा तात्पर्य बात का पक्का अथवा वचन का पक्का होता है। वैसे जबान के लिए बहुमान्य और बहुप्रचलित अर्थ भाषा ही माना जाता है। 'भाषा' संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है बोलना या कहना। अर्थात् भाषा वह होती है जिसे बोला या कहा जाए। पाश्चात्य विचारक प्लेटो ने विचार और भाषा का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि विचार भाषा की मूक बातचीत है परंतु वहीं जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो 'भाषा' की संज्ञा दी जाती है। वैदिक के अनुसार भाषा एक तरह का संकेत है, जिसके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है। भाषाशास्त्रियों के अनुसार भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार भाषा मानव समूह की उसकी अपनी होती है, जैसे हिंदी समूह की भाषा हिंदी, मराठी समूह की भाषा मराठी अथवा गुजराती समूह की भाषा गुजराती।

जबान अथवा भाषा उस समाज विशेष,

समूह विशेष की अस्मिता की पहचान होती है, जिसके द्वारा वह समूह या समाज जाना और पहचाना जाता है। जबान अथवा भाषा संबंधित समाज की सामासिक संस्कृति की सच्ची और सही संवाहक होती है जो उसके विकास का माध्यम भी होती है। किसी जबान अथवा भाषा की विकास की प्रक्रिया में परिवर्तन की अहम् भूमिका होती है। कहा भी जाता है कि "चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी।" इस प्रकार हम देखते हैं भाषा और संस्कृति से समाज का विकास होता है। जिस समाज में परिवर्तन या बदलाव को स्वीकार नहीं किया जाता वे समाज धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं। कई जनजातियां इसीलिए लुप्त हो गईं कि उनका परस्पर संपर्क और आदान-प्रदान रुक गया था।

संस्कृत को देववाणी कहा जाता रहा है, परंतु वह मात्र ब्राह्मणों, पंडितों अथवा शोधकर्ताओं की ही भाषा बनी रही। परिणामस्वरूप उसके बोलने, सीखने अथवा व्यवहार करने वालों की संख्या में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो सकी। आज भी संस्कृत की स्थिति में सुधार न होने से चित्र निराशाजनक ही बना हुआ है। इसके विपरीत जो भी भाषा आदान-प्रदान और संप्रेषण का दायरा बढ़ाती है उसकी प्रगति होती है। अपने इन्हीं गुणों के कारण हिंदी विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। अंग्रेजी भाषा का इतिहास इसका ज्वलंत और उत्कृष्ट उदाहरण है। अदान-प्रदान की इस प्रक्रिया में भावों और विचारों के संवाहक शब्दों में वृद्धि होकर भाषा समृद्ध होती है। अरबी-फारसी के मेजबान, नौबत, काजी, मुल्ला और द्राविड़ परिवार के इडली, डोसा, सांबर और उथप्पम

अंग्रेजी के एजेंसी, एकेडेमी, टेबल, शर्ट-पेंट, फारसी के ज़बान, ज़हर, खाक, खरीद, अरबी के मुहब्बत, तरजीह, तमाशा, जनाजा आदि शब्दों ने हिंदी में उसकी साख बढ़ाई ही है, और हिंदी को एक प्रभावी अंदाज भी प्रदान किया है। साथ ही धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता की मिसाल भी कायम की है। एक तरह से हिंदी ने अपने आपको जोड़ने वाली भाषा जबान ही सिद्ध किया है।

शब्द, जबान, भाषा अथवा वाणी का प्रमुख तत्त्व है अर्थ और वह ससंदर्भ प्रयोग पर निर्भर करता है। प्रयोग में चूक होने पर अर्थ में चूक होना अवश्यभावी है। वास्तव में अर्थ भाषा की आत्मा ही होता है। भर्तृहरि वैयाकरण के अनुसार—

“यस्मिस्तुच्चारिते शब्दे यदायो अर्थः प्रतीयते। तमा हुरथं तस्यैव नान्यर्थस्य लक्षणम्॥”

अर्थात् शब्द के उच्चारण से जिसकी प्रतीति होती है वही उसका अर्थ है। सामान्यतः भाषाशास्त्री अर्थ की परिभाषा कुछ इस प्रकार करते हैं—किसी भाषिक इकाई, वाक्य, वाक्यांश, शब्द, मुहावरा, आदि को किसी भी इन्द्रिय से प्रधानतः कान और आंख से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है वहीं अर्थ है। यह प्रतीति आत्म-अनुभव से जैसे चीनी चखकर मीठा अनुभव करना, पर-अनुभव से जैसे दूसरों के अनुभव से जहर की तासीर जानना य अर्थ ग्रहण करना। शब्द के अर्थ में उसके प्रयोग के विस्तार, संकोच या लोप से भी परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन के कारणों में भौगोलिक परिवर्तन, प्रथा-

प्रचलन में परिवर्तन, नम्रता प्रदर्शन, कटुता और अंधविश्वास जैसे दर्जन भर कारण होते हैं। तात्पर्य यही कि संदर्भानुकूल प्रयोग से शब्द के अर्थ में परिवर्तन होता है क्योंकि समाज विशेष में आपस में इन्हें मान लिया है। इसीलिए वैसा ही अर्थ परस्पर में ग्रहण किया जाता है जैसे अमृत कहे जाने पर लोग अमृत और ज़हर कहे जाने पर लोग जहर ही समझते हैं—पानी अथवा मिट्टी नहीं। शब्द और अर्थ के बीच इसी समझौते को सार्वभौम मान्यता होती है।

शतपथ ब्राह्मण में शब्द या वाणी को ब्रह्म कहा गया है—“वाग्वैब्रह्म”, अर्थात् शब्द ब्रह्म होते हैं। दूसरे यह कि शब्द में अपार शक्ति होती है। इसीलिए शब्द या वाणी के प्रयोग में सावधानी बरतने की सलाह या सीख दी जाती है। शब्द को बाण भी कहा जाता है, जो धनुष से एक बार छूटने पर लौटता नहीं है, मात्र वार अथवा घाव करता है। शब्द भी एक बार छूटने पर लौटता नहीं है, केवल असर करता है, वार करता है। इसीलिए उसका प्रयोग संभाल कर किए जाने की सलाह या सीख दी जाती है। दिखने में कभी-कभी या बहुत बार या प्रायः शब्द छोटे दिखते हैं परंतु वे गंभीर घाव करने की क्षमता या सामर्थ्य रखते हैं। कवि बिहारी ने छोटे-छोटे दोहों के संदर्भ में इसीलिए कहा गया है कि—

“सतसैया के दोहरे जे नावक के तीर।
देखन में छोटे लगे घाव करें गंभीर।”

शब्दों से हुए घाव भरते नहीं हैं, कटुता और दुःख ही देते हैं। वेदव्यास तो शब्दों से हुए घावों को धातु से बने बाणों के घावों से भी अधिक भयावक मानते हुए कहते हैं कि—

“रोहते सायकैविद्धं वनं परशुना हतम्।
वाया दुरुक्तं वीभत्सं न संरोहति वाकशतम्॥”

अर्थात् बाणों से बिंधा हुआ तथा फरसे से काटा हुआ वन भी अंकुरित हो जाता है परंतु कटु वचन कहकर वाणी से किया गया घाव कभी नहीं भरता। एक दूसरी जगह वेदव्यास

कहते हैं—

“कर्णि नालीक नाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक शल्यस्तु न निर्हंतु शक्यो हृदिशयो हिसः॥”

अर्थात् कर्ण, नालीक और नराच नामक बाणों को शरीर से निकाल सकते हैं परंतु कटुवचन रूपी बाण नहीं निकाला जा सकता क्योंकि वह हृदय के भीतर धंस जाता है। वेद व्यास कहते हैं कि—

“वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति,
यैराहतः शोचति रात्र्यहनि।
परस्यना मर्मसु ते पतन्ति,
तानु पंडितो नाव सृजेत परेभ्यं॥”

अर्थात् कटुवचन रूपी बाण मुख से निकल कर दूसरों के मर्मस्थान पर ही चोट करते हैं। उनसे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है। अतः विद्वान् पुरुष दूसरों पर उनका प्रयोग न करें। आगे चलकर पुनः वेदव्यास जी कहते हैं कि व्यर्थ और कटु बोलने की अपेक्षा मौन रहना अच्छा है, जो वाणी की पहली विशेषता है। सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता, प्रिय बोलना, तीसरी विशेषता और धर्म बोलना वाणी की चौथी विशेषता मानी जाती है—

“अव्याहतं व्याहताच्छेय आहुः
सत्वं वदेद व्याहतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद व्याहतं तद् तृतीयं
धर्मं वदेद व्याहतं तच्चतुर्थम्॥”

संत कबीर ने भी कहा है कि मनुष्य को सदा मधुर ही बोलना चाहिए, क्योंकि मधुर और प्रिय बोलने से सब प्राणी संतुष्ट और प्रसन्न हो जाते हैं। मंगलमयी वाणी वाला मनुष्य प्राणिमात्र के आनंदित करता है और इससे वह स्वयं भी शीतल बना रहता है। वे कहते हैं—

“ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
अपना तन शीतल करै, औरन को सुख देय॥”

अथर्ववेद में तो कामना करते हुए यहां तक कहा गया है कि मेरी जीभ के अग्रभाग में

मधुरता रहे, मेरी जीभ के मूल भाग में भी मधुरता ही रहे—

“जिह्वायाः अग्रे मधुमे,
जिह्वा मूले मधुलकम्॥”

मधुर या मीठी वाणी सदा जोड़ने का काम करती है। प्रेम की मधुरता पर खड़े रिश्ते या मित्रता क्षणिक आवेग में कटु बोलकर तोड़ने नहीं चाहिए क्योंकि टूटने पर वे जुड़ते नहीं हैं और बड़े प्रयासों से जोड़े भी जाएं तो उनमें गांठ पड़ जाती है। रहीम कवि कहते हैं कि—

“रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोरौ चटकाय।
तोरै से फिर ना जुरै,
जुरै गांठ पर जाय॥”

कहते हैं कि कौआ और कोयल की अपनी-अपनी वाणी होती है परंतु वसंत ऋतु में अपनी वाणी की मधुर कूक से कोयल सबका मन हर लेती है और कौआ कांव-कांव करता रह जाता है—

“कोयल काको देत है,
कागा काको लेत।
केवल मीठे वचन से,
सबका मन हर लेत॥”

इसलिए किसी भी स्थिति में कटु और कठोर वचन न बोलने की सीख ही दी जाती है। कटु भाषी व्यक्ति पल भर में वाणी के कटु प्रयोग से सभी का शत्रु हो जाता है—

“इदमस्खलितं धारय वारय
परुषाक्षरा वातः।
एकः सकलजनानां जगति
रिपु पुरुषवाक पुरुषः॥”

जबान या वाणी एक ही होती है परंतु उचित और मधुर प्रयोग से वह प्रेम बढ़ाती है और कटु या कठोर प्रयोग से उसी प्रेम को मिटा भी देती है।

“बात कहन की रीति में,
है अंतर अधिकाय।

एक वचन ते रिस बढ़ै?
एक वचन ले जाय।।”

कहा जाता है कि मधुर वचनों से बड़ों-बड़ों का घमंड, अभिमान समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार ठंडे पानी के छींटे दूध की उफान को शांत कर देते हैं—

“मधुर वचन ते जात मिट
उत्तम जन अभिमान।
तनिक सीत जल सो गिरै,
जैसे दूध ऊफान।।”

सज्जनों की व्याख्या करते हुए ‘सूक्ति सुधा’ में कहा गया है कि—

“धर्म तत्परता, मुखे मधुरता,
दाने समुत्साहिता।
मित्रै अवैचकता गुरौ विनियता
चित्तेऽति गंभीरता।
आचारे शुचिता, गुणे रसिकता
शास्त्रेऽतिविज्ञानिता,
रूपे सुंदरता, हरौभजनिता
सत्त्वेव सदृश्यते।।”

अर्थात् धर्म में तत्परता, वाणी में मधुरता, दान में उत्साह, मित्रों से निष्कपटता, गुरुजनों के प्रति विनम्रता, चित्त में अति गंभीरता, आचरण में शुचिता, रूप में सुंदरता तथा हरिस्मरण में लगन, में समस्त गुण सज्जनों में ही देखे जाते हैं।

लोक व्यवहार में क्रोध को विष कहा गया है। क्रोध का उत्तर क्रोध से देना नादानी माना जाता है। क्रोध शरीर में विष का काम करता है। यदि क्रोध से बात बिगड़ सकती है तो मौन रहना ही बुद्धिमानी है। इसीलिए कहा जाता है कि विष से अधिक कड़वी और अमृत से अधिक मीठी कोई वस्तु है, तो वह हमारी जबान है। मनुष्य की रचना में अमृत और विष दोनों की उपस्थिति है तथापि वाणी का सद या असद, कटु या मधुर प्रयोग ही आदमी को सुखी या दुःखी करता है। इसीलिए ‘बुधजन सतसई’ के कवि बुधजन कहते हैं कि—

“मानुष की रचना बसै विष अरु अमृत दोय।
भली कहै बच जाए है, बुरी कहै दुःख होय।।”

हिंदी की एक लोकोक्ति के अनुसार—

“जबान ही हाथी चढ़ावै,
जबान ही सिर कटवावै।
वही मुख पान खिलावै,
वही मुख पनहि (जूता)।।”

अर्थात् जबान हाथी की सवारी भी करवाती है और कभी सिर भी कटवाती है। वही जबान पान खिलवाती है और वही जबान जूते भी खिलवाती है। संक्षेप में अर्थ यही कि जबान या वाणी के प्रयोग पर ही उसकी कटुता या मधुरता निर्भर करती है। कबीर का भी मानना है कि बावरी जीभ कह कर हट जाती है परंतु कहने वाले की फजीहत देखने योग्य होती है।

वे कहते हैं कि—

“कबिरा जिह्वा बावरी,
कह गई सरग पाताल।
आप कही भीतर गई,
जूते खात कपाल।।”

जबान को बढ़ा-चढ़ाकर कहने की भी बुरी आदत होती है। वह दो इंच लंबी हरड को सौ हाथ लंबी कहने में तनिक भी संकोच नहीं करती—

“मुखमस्तिच वक्तव्यं शतहस्ता हतीत की”

परंतु इस प्रकार के प्रयोगों से आदमी की साख घटती है। उसका महत्त्व कम होता है, प्रतिष्ठा पर आंच आती है। राजस्थानी के एक कवि गंग के अनुसार आदमी की कीमत उसके बोल, वाणी या जबान के आधार पर ही आंकी जाती है। वे कहते हैं कि “आदमी को मोल एक बोल में पिछानियै।” इसीलिए कहा जाता है कि “पहले सोचो—फिर बोलो।” यही कारण है कि अनुभवी बुजुर्ग लोग समय-समय पर ही नहीं तो सदा ही जबान पर संयम रखने की सीख देते आए हैं क्योंकि यह हर हालत में हितकारी ही होता है। निष्कर्ष यही कि सर्वोत्तम उपाय है जबान पर चाहिए लगाम।

904, एफ-01, सक्सेस टॉवर्स, पंचवटी,
पाषाण मार्ग, पुणे-411008

लाग-डांट

मुंशी प्रेमचंद : कथाकार और उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य की विभिन्न विधाओं को अपनी लेखनी से समृद्ध किया है। इन्होंने जहां एक तरफ गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि जैसे बहुचर्चित उपन्यास लिखे, तो दूसरी तरफ कफन, घूस की रात, ईदगाह जैसी बहुचर्चित कहानियां भी लिखी हैं। यहां प्रस्तुत है मुंशी प्रेमचंद की राष्ट्रप्रेम से संबंधित कहानी।

जो खू भगत और बेचन चौधरी में तीन पीढ़ियों से अदावत चली आती थी। कुछ डांड-मेंड़ का झगड़ा था। उनके परदादों में कई बार खून-खच्चर हुआ। बापों के समय से मुकद्दमेबाजी शुरू हुई। दोनों कई बार हाइकोर्ट तक गए। लड़कों के समय में संग्राम की भीषणता और भी बढ़ी, यहां तक कि दोनों ही अशक्त हो गए। पहले दोनों इसी गांव में आधे-आधे के हिस्सेदार थे। अब उनके पास उस झगड़ने वाले खेत को छोड़ कर एक अंगुल जमीन न थी। भूमि गई, धन गया, मान-मर्यादा गई लेकिन वह विवाद ज्यों का त्यों बना रहा। हाइकोर्ट के धुरंधर नीतिज्ञ एक मामूली-सा झगड़ा तय न कर सके।

इन दोनों सज्जनों ने गांव को दो विरोधी दलों में विभक्त कर दिया। एक दल की भंग-बूटी चौधरी के द्वार पर छनती, तो दूसरे दल के चरस-गांजे के दम भगत के द्वार पर लगते थे। स्त्रियों और बालकों के भी दो दल हो गए थे। यहां तक कि दोनों सज्जनों के सामाजिक और धार्मिक विचारों में भी विभाजक रेखा खिंची हुई थी। चौधरी कपड़े पहने हुए सतू खा लेते और भगत को ढोंगी कहते। भगत बिना कपड़े उतारे पानी भी न पीते और चौधरी को भ्रष्ट बतलाते। भगत सनातनधर्मी बने

तो चौधरी ने आर्यसमाज का आश्रय लिया। जिस बजाज, पंसारी या कुंजड़े से चौधरी सौदा लेते उसकी ओर भगतजी ताकना भी पाप समझते थे और भगत जी की हलवाई की मिठाइयां, उनके ग्वाले का दूध और तेली का तेल चौधरी के लिए त्याज्य थे। यहां तक कि उनके आरोग्यता के सिद्धांतों में भी भिन्नता थी। भगत जी वैद्यक के कायल थे, चौधरी यूनानी प्रथा के मानने वाले। दोनों चाहे रोग से मर जाते, पर अपने सिद्धांतों को न तोड़ते।

जब देश में राजनैतिक आंदोलन शुरू हुआ तो उसकी भनक उस गांव में आ पहुंची। चौधरी ने आंदोलन का पक्ष लिया, भगत उनके विपक्षी हो गए। एक सज्जन ने आकर गांव में किसान-सभा खोली। चौधरी उसमें शरीक हुए, भगत अलग रहे। जागृति और बढ़ी, स्वराज्य की चर्चा होने लगी। चौधरी स्वराज्यवादी हो गए, भगत ने राजभक्ति का पक्ष लिया। चौधरी का घर स्वराज्यवादियों का अड्डा हो गया, भगत का घर राजभक्तों का क्लब बन गया।

चौधरी जनता में स्वराज्यवाद का प्रचार करने लगे—“मित्रो, स्वराज्य का अर्थ है अपना राज। अपने देश में अपना राज हो वह अच्छा है कि किसी दूसरे का राज हो वह?”

जनता ने कहा—“अपना राज हो, वह अच्छा है।”

चौधरी—“तो यह स्वराज्य कैसे मिलेगा? आत्मबल से, पुरुषार्थ से, मेल से, एक-दूसरे से द्वेष करना छोड़ दो। अपने झगड़े आप

मिलकर निपटा लो।”

एक शंका—“आप तो नित्य अदालत में खड़े रहते हैं।”

चौधरी—“हां, पर आज से अदालत जाऊं तो मुझे गऊहत्या का पाप लगे। तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी गाढ़ी कमाई अपने बाल-बच्चों को खिलाओ, और बचे तो परोपकार में लगाओ, वकील-मुख्तारों की जेब क्यों भरते हो, थानेदार को घूस क्यों देते हो, अमलों की चिरौरी क्यों करते हो? पहले हमारे लड़के अपने धर्म की शिक्षा पाते थे, वह सदाचारी, त्यागी, पुरुषार्थी बनते थे। अब वह विदेशी मदरसों में पढ़कर चाकरी करते हैं, घूस खाते हैं, शौक करते हैं, अपने देवताओं और पितरों की निंदा करते हैं, सिगरेट पीते हैं, साल बनाते हैं और हाकिमों की गोड़घरिया करते हैं। क्या यह हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकों को धर्मानुसार शिक्षा दें?”

जनता—“चंदा करके पाठशाला खोलनी चाहिए।”

चौधरी—“हम पहले मदिरा का छूना पाप समझते थे। अब गांव-गांव और गली-गली में मदिरा की दूकानें हैं। हम अपनी गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपए गांजे-शराब में उड़ा देते हैं।”

जनता—“जो दारू-भांग पिए उसे डांड लगाना चाहिए।”

चौधरी—“हमारे दादा-बाबा, छोटे-बड़े सब गाढ़ा-गंजी पहनते थे। हमारी दादियां-नानियां चरखा काता करती थीं। सब धन देश में रहता था, हमारे जुलाहे भाई चैन की वंशी बजाते

थे। अब हम विदेश के बने हुए महीन रंगीन कपड़ों पर जान देते हैं। इस तरह दूसरे देश वाले हमारा धन ढो ले जाते हैं, बेचारे जुलाहे कंगाल हो गए। क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयों की थाली छीन कर दूसरों के सामने रख दें?”

जनता—“गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं।”

चौधरी—अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी छोड़ो, अपने लड़कों को धर्म-कर्म सिखाओ, मेल से रहो—बस, यही स्वराज्य है। जो लोग कहते हैं कि स्वराज्य के लिए खून की नदी बहेगी, वे पागल हैं—उनकी बातों पर ध्यान मत दो।”

जनता यह बातें चाव से सुनती थी। दिनोदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ती जाती थी। चौधरी के सब श्रद्धाभाजन बन गए।

भगत जी भी राजभक्ति का उपदेश करने लगे—“भाइयो, राजा का काम राज करना और प्रजा का काम उसकी आज्ञा का पालन

करना है। इसी को देशभक्ति कहते हैं और हमारे धार्मिक ग्रंथों में हमें इसी राजभक्ति की शिक्षा दी गई है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है, उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलना पातक है। राजविमुख प्राणी नरक का भागी होता है।”

एक शंका—“राजा को भी तो अपने धर्म का पालन करना चाहिए।”

दूसरी शंका—“हमारे राजा तो नाम के हैं, असली राजा तो विलायत के बनिए-महाजन हैं।”

तीसरी शंका—“बनिए धन कमाना जानते हैं, राज करना क्या जानें।”

भगत—“लोग तुम्हें शिक्षा देते हैं कि अदालतों में मत जाओ, पंचायतों में मुकदमे ले जाओ, लेकिन ऐसे पंच कहा हैं, जो सच्चा न्याय करें, दूध का दूध और पानी का पानी कर दें! यहां मुंह-देखी बातें होंगी। जिनका कुछ दबाव है, उनकी जीत होगी, जिनका कुछ दबाव नहीं है, वह बेचारे मारे जाएंगे। अदालतों में सब कार्रवाई कानून पर होती है, वहां छोटे-बड़े

सब बराबर हैं, शेर-बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं।”

दूसरी शंका—“अदालतों का न्याय कहने ही को है, जिसके पास बने हुए गवाह और दांव-पेंच खेले हुए वकील होते हैं, उसी की जीत होती है, झूठे-सच्चे की परख कौन करता है? हां, हैरानी अलबत्ता होती है।”

भगत—“कहा जाता है कि विदेशी चीजों का व्यवहार मत करो। यह गरीबों के साथ घोर अन्याय करते हैं। हमको बाजार में जो चीज सस्ती और अच्छी मिले, वह लेनी चाहिए। चाहे स्वदेशी हो या विदेशी। हमारा पैसा संत में नहीं आता है कि उसे रद्दी-भद्दी स्वदेशी चीजों पर फेंकें।”

एक शंका—“अपने देश में तो रहता है, दूसरों के हाथ में तो नहीं जाता।”

दूसरी शंका—“अपने घर में अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियों के घर का अच्छा भोजन खाने लगेंगे?”

भगत—“लोग कहते हैं, लड़कों को सरकारी



मदरसों में मत भेजो। सरकारी मदरसे में न पढ़ते तो आज हमारे भाई बड़ी-बड़ी नौकरियां कैसे पाते, बड़े-बड़े कारखाने कैसे बना लेते? बिना नई विद्या पढ़े अब संसार में निबाह नहीं हो सकता, पुरानी विद्या पढ़ कर पत्रा देखने और कथा बांचने के सिवाय और क्या आता है? राज-काज क्या पट्टी-पोथी बांचने वाले लोग करेंगे?”

एक शंका—“हमें राज-काज न चाहिए। हम अपनी खेती-बारी ही में मगन हैं, किसी के गुलाम तो नहीं।”

दूसरी शंका—“जो विद्या घमंडी बना दे, उससे मूरख ही अच्छा, यही नई विद्या पढ़कर तो लोग सूट-बूट, घड़ी-छड़ी, हैट-कैट लगाने लगते हैं और अपने शौक के पीछे देश का धन विदेशियों की जेब में भरते हैं। ये देश के द्रोही हैं।”

भगत—“गांजा-शराब की ओर आजकल लोगों की कड़ी निगाह है। नशा बुरी लत है, इसे सब जानते हैं। सरकार को नशे की दुकानों से करोड़ों रुपए साल की आमदनी होती है। अगर दूकानों में न जाने से लोगों की लत छूट जाए तो बड़ी अच्छी बात है। यह दूकान पर न जाएगा तो चोरी-छिपे किसी-न-किसी तरह दूने-चौगुने दाम दे कर, सजा काटने पर तैयार हो कर अपनी लत पूरी करेगा। तो ऐसा काम क्यों करो कि सरकार का नुकसान अलग हो, और गरीब रैयत का नुकसान अलग हो। और फिर किसी-किसी को नशा खाने से फायदा होता है। मैं ही एक दिन अफीम न खाऊं तो गांठों में दर्द होने लगे, दम उखड़ जाए और सरदी पकड़ ले।”

एक आवाज—“शराब पीने से बदन में फुर्ती आ जाती है।”

एक शंका—“सरकार अधर्म से रुपया कमाती है। उसे यह उचित नहीं। अधर्म के राज में रह कर प्रजा का कल्याण कैसे हो सकता है?”

दूसरी शंका—“पहले दारू पिला कर पागल

बना दिया। लत पड़ी तो पैसे की चाट हुई। इतनी मजूरी किसको मिलती है कि रोटी-कपड़ा भी चले और दारू-शराब भी उड़े? या तो बाल-बच्चों को भूखों मारो या चोरी करो, जुआ खेलो और बेईमानी करो। शराब की दूकान क्या है? हमारी गुलामी का अड्डा है।”

चौधरी के उपदेश सुनने के लिए जनता टूटती थी। लोगों को खड़े होने को जगह न मिलती। दिनोंदिन चौधरी का मान बढ़ने लगा। उनके यहां नित्य पंचायतों की, राष्ट्रोन्नति की चर्चा रहती, जनता को इन बातों में बड़ा आनंद और उत्साह होता। उनके राजनैतिक ज्ञान की वृद्धि होती। वह अपना गौरव और महत्त्व समझने लगे, उन्हें अपनी सत्ता का अनुभव होने लगा। निरंकुशता और अन्याय पर अब उनकी तिउरियां चढ़ने लगीं। उन्हें स्वतंत्रता का स्वाद मिला। घर की रूई, घर का सूत, घर का कपड़ा, घर का भोजन, घर की अदालत, न पुलिस का भय, न आत्मा की खुशामद, न सुख और शांति से जीवन व्यतीत होने लगे। कितनों ही ने नशेबाजी छोड़ दी और सद्भावों की एक लहर-सी दौड़ने लगी।

लेकिन भगत जी इतने भाग्यशाली न थे। जनता को दिनोंदिन उनके उपदेशों से अरुचित होती जाती थी। यहां तक कि बहुधा उनके श्रोताओं में पटवारी, चौकीदार, मुदरिस और इन्हीं कर्मचारियों के मित्रों के अतिरिक्त और कोई न होता था। कभी-कभी बड़े हाकिम भी आ निकलते और भगतजी का बड़ा आदर-सत्कार करते। जरा देर के लिए भगतजी के आंसू पुंछ जाते, लेकिन क्षण-भर का सम्मान आठों पहर के अपमान की बराबरी कैसे करता! जिधर निकल जाते उधर ही उंगलियां उठने लगतीं। कोई कहता, खुशामदी टट्टू है, कोई कहता, खुफिया पुलिस का भेदी है। भगत जी अपने प्रतिद्वंद्वी की बड़ाई और अपनी लोकनिंदा पर दांत पीस-पीस कर रह जाते थे। जीवन में यह पहला ही अवसर था कि उन्हें सबके सामने

नीचा देखना पड़ा। चिरकाल से जिस कुल-मर्यादा की रक्षा करते आए थे और जिस पर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे, वह धूल में मिल गई। यह दाहमय चिंता उन्हें एक क्षण के लिए चैन न लेने देती। नित्य समस्या सामने रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्योंकर पाऊं, अपने प्रतिपक्षी को क्योंकर पददलित करूं, कैसे उसका गरूर तोड़ू?

अंत में उन्होंने सिंह को उसी की मांद में पछाड़ने का निश्चय किया।

संध्या का समय था। चौधरी के द्वार पर एक बड़ी सभा हो रही थी। आस-पास के गांवों के किसान भी आ गए, हजारों आदमियों की भीड़ थी। चौधरी उन्हें स्वराज्य-विषयक उपदेश दे रहे थे। बार-बार भारतमाता की जय-जयकार की ध्वनि उठती थी। एक ओर स्त्रियों का जमाव था। चौधरी ने अपना उपदेश समाप्त किया और अपनी जगह पर बैठे। स्वयंसेवकों ने स्वराज्य-फंड के लिए चंदा जमा करना शुरू किया कि इतने में भगत जी न जाने किधर से लपके और श्रोताओं के सामने खड़े हो कर उच्च स्वर से बोले—

“भाइयो, मुझे यहां देखकर अचरज मत करो, मैं स्वराज्य का विरोधी नहीं हूं। ऐसा पतित कौन प्राणी होगा जो स्वराज्य का निंदक हो, लेकिन इसके प्राप्त करने का यह उपाय नहीं है जो चौधरी ने बताया है और जिस पर तुम लोग लट्टू हो रहे हो। जब आपस में फूट और रार है, पंचायतों से क्या होगा? जब विलासिता का भूत सिर पर सवार है तो नशा कैसे छूटेगा, मदिरा की दूकानों का बहिष्कार कैसे होगा? सिगरेट, साबुन, मोजे, बनियान, अख्डी, तंजेब से कैसे पिंड छूटेगा? जब रोब और हुकूमत की लालसा बनी हुई है तो सरकारी मदरसे कैसे छोड़ोगे। विधर्मी शिक्षा की बेड़ी से कैसे मुक्त हो सकोगे? स्वराज्य लेने का केवल एक ही उपाय है और वह आत्म-संयम है। यही



महौषधि तुम्हारे समस्त रोगों को समूल नष्ट करेगी। आत्मा को बलवान् बनाओ, इंद्रियों को साधो, मन को वश में करो, तुममें भ्रातृभाव पैदा होगा, तभी वैमनस्य मिटेगा, तभी ईर्ष्या और द्वेष का नाश होगा, तभी भोग-विलास से मन हटेगा, तभी नशेबाजी का दमन होगा। आत्मबल के बिना स्वराज्य कभी उपलब्ध न होगा। स्वयंसेवा सब पापों का मूल है, यही तुम्हें अदालतों में ले जाता है। यह तुम्हें विधर्मी शिक्षा का दास बनाए हुए है। इस पिशाच को आत्मबल से मारो और तुम्हारी कामना पूरी हो

जाएगी। सब जानते हैं, मैं 40 साल से अफीम का सेवन करता हूँ। आज से मैं अफीम को गऊ का रक्त समझता हूँ—आज से मुझे या मेरे घर के किसी प्राणी को घर में कते सूत से बने हुए कपड़े के सिवाय कुछ और पहनते देखो तो मुझे जो दंड चाहो दो। बस मुझे यही कहना है, परमात्मा हम सबकी इच्छा पूरी करे। यह कह कर भगत जी घर की ओर चले कि चौधरी दौड़ कर उनके गले से लिपट गए। तीन पुश्तों की अदावत एक क्षण में शांत हो गई।

उस दिन से चौधरी और भगत साथ-साथ स्वराज्य का उपदेश करने लगे। उनमें गाढ़ी मित्रता हो गई और यह निश्चय करना कठिन था कि दोनों में जनता किसका अधिक सम्मान करती है।

प्रतिद्विदिता वह चिनगारी थी जिसने दोनों पुरुषों के हृदय-दीपक को प्रकाशित कर दिया था।

(प्रेमचंद : राष्ट्र-प्रेम की कहानियां; संकलन-संपादन :
डॉ. कमल किशोर गोयनका; प्रकाशक :
अनिल प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली से साभार)

तुम्हीं ने तो कहा था

डॉ. प्रीति

डॉ. प्रीति : पेशे से अध्यापक रहीं डॉ. प्रीति 'कबीर' साहित्य की विभिन्न विधाओं कविता, गीत, गजल, दोहे, कहानी, नाटक और उपन्यास लेखन कर रही हैं। कई पुरस्कारों से सम्मानित लेखिका को पत्रकारिता का भी अनुभव है। सात पुस्तकें प्रकाशित।

सूबेदार अन्ना का शव कारगिल सेना चौकी में रखा हुआ है। सेनानायक कमल कपूर ने अन्य साथियों के साथ उन्हें श्रद्धासुमन समर्पित किए। अन्ना के पार्थिव शरीर को उनके निवास स्थान पहलगाम ले जाए जाने तथा पूरे सैनिक सम्मान के साथ उसकी अंत्येष्टि के आदेश हो गए हैं।

सूबेदार रविकांत अपने जिगरी दोस्त को एकटक निहार रहे हैं। प्रेम, दोस्ती और देश के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले इस शहीद पर उन्हें गर्व है। मगर बिछोह की व्यथा तरल होकर उनकी पलकों के बीच थम गई है।

अब कभी लौट कर नहीं आएगा अन्ना। वह और मैं साथ-साथ ही फौज में भर्ती हुए। ट्रेनिंग भी एक ही साथ की। हम एक-दूसरे के हमदम व हमराज थे। अन्ना ने अपने जीवन की पुस्तक खोलकर रविकांत को पढ़वा दी थी।

अन्ना के बालपन की साथी रज्जी, जिसे वह आकाश के विस्तार-सा और सागर की गहराई-सा प्रेम करता था। उसके फौजी बनने का संकल्प भी रज्जी के कारण ही तो था।

अन्ना के अब्बू श्रीनगर में शिकारे पर नौकर थे। पहलगाम में उनके दादा का घर है, जहां

अन्ना की मां और दो बहनें रहती हैं।

रज्जी के पिता एक रेस्टोरेंट के मालिक हैं। पहलगाम में उनका घर और कुछ बगीचे हैं। आर्थिक संपन्नता है।

अन्ना के अब्बू ने एक सपना देखा है। वे अन्ना को पढ़ाकर कोई अच्छी नौकरी करते देखना चाहते हैं। उन्हें अन्ना से काफी उम्मीदें हैं।

अन्ना और रज्जी के स्कूल पास-पास ही हैं। स्कूल की पगडंडियां पार करते हुए उनके नन्हें पांव अब जवान हो चुके हैं। पहलगाम की ऊंची पहाड़ियां, झरने, हरे-भरे वृक्षों की टोलियां और केसर के गमकते खेत, अन्ना और रज्जी के साथ व्यतीत किए क्षणों के साक्षी हैं।

यौवन की तरुणाई से सराबोर, दूधिया चांदनी से भी धवल रज्जी का रूप सौंदर्य नैसर्गिक था। बिंदास सी खिलखिलाती हुई हंसी, मंदिर में बजती हुई शंखध्वनि-सी, सभी का मन मोह लेती। अन्ना भी किसी देवपुत्र-सा, ताजा खुशबूदार पवन के झोंके-सा, निर्बाध जल स्रोत-सा, निर्भीक और गबरू जवान।

कश्मीर की हसीन वादियों में लुका-छिपी का खेल—खेलते ये दोस्त अब यौवन की देहरी पर पांव रख चुके थे।

मगर अब रज्जी की मां उस पर पूरा नियंत्रण रखती। उसे रज्जी का अन्ना के साथ यों कुलांचे भरना, साथ-साथ घूमना सख्त नागवार लगता। वह रज्जी को प्यार से समझाती, “रज्जी तू अब बड़ी हो गई है। सारी बिरादरी वाले कैसी-कैसी बातें करने लगे हैं।

अब तू उस आवारा मवाली से मिलना छोड़। मेरी अच्छी रज्जी, मैं तेरा ब्याह किसी अच्छे लड़के से करूंगी।”

मगर रज्जी हंसती हुई निकल जाती।

चिनार की पीली सूखी पत्तियों के बिस्तर पर अन्ना के सहारे लेटी रज्जी आकाश की ऊंचाइयां नापती, बर्फ से लदी पहाड़ियों से ढेर-सा चांदी और ढलते हुए सूरज से बहुत-सा सोना चुराकर अन्ना की कमीज की जेब में डाल देती।

फिर अचानक हड़बड़ाकर उठ बैठती। “अन्ना, अब हमें वापस चलना चाहिए। देखो आकाश में चांद हमारी चोरी पकड़ रहा है।”

दोनों हाथों में हथेलियां थामें घर की ओर चले जाते।

मां की गहरी दृष्टि से रज्जी बच नहीं पाती। “तू नहीं मानेगी रज्जी। अपने पिता की इज्जत आबरू को चौरहे पर नीलाम कर देगी। अन्ना से तेरा ब्याह कभी नहीं हो सकेगा रज्जी! क्यों झूठे सपने देखती है।”

“हम तो बस प्रेम का एक ही शब्द जानते हैं मां।”

“जब सच से सामना होगा, तब यह प्रेम सब धरा रह जाएगा रज्जी। मानो तुम्हारा उससे ब्याह हो भी जाए तो वह क्या सुख दे पाएगा तुझे?”

“सुख क्या है मां? मैं नहीं जानती। न ही जानना चाहूंगी।” रज्जी ने मां के शब्दों की गहराई नापने की कोशिश की। अनेक नागों

के फन, सवाल बनकर उसे दंश करने लगे। पापा की वह अकेली संतान है। उसने सोचा— “मेरे कारण बिरादरी वाले उन्हें तिरस्कृत करें। उनका बिजनेस डूब जाए। नहीं यह नहीं होना चाहिए। कितना प्यार करते हैं मां-पापा मुझे। अब मैं अन्ना से कह दूंगी। हम एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, करते रहेंगे। मगर अब नहीं मिलेंगे।”

रज्जी एक दिन भी अन्ना से बगैर मिले नहीं रह पाती। सारे उपदेश, आत्मचिंतन ताक पर रखे रह जाते।

रज्जी की मां को यकीन हो गया। इन्हें समझाना कठिन ही नहीं नामुमकिन भी है। उन्होंने अन्ना को बुलवा भेजा।

“तू रज्जी से ब्याह करेगा?”

अन्ना इतने कठिन प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। उसके भीतर से किसी ने कहला दिया, “हां।”

“तेरे पास कोई नौकरी है? रज्जी को ब्याहने से पहले तू कुछ नौकरी तो कर ले अन्ना। मैं रज्जी को बहुत चाहती हूं। उसे कोई दुख होगा तो हम मर जाएंगे। इसलिए इतमीनान रखकर कोई भली-सी नौकरी कर लो। फिर रज्जी के साथ तुम्हारा ब्याह कर देंगे।”

अन्ना को जैसे कोई खजाना मिल गया। वह फौजी बनेगा। रज्जी को फौजी बहुत पसंद हैं। रज्जी ने सुना तो सुख और दुख के हिंडोले में झूलने लगी। अन्ना से बिछोह का दुख, मगर उसके वापस आने की आशा उसके साथ थी।

“मुझसे ब्याह करने के लिए तुम्हें कहीं जाना जरूरी है, अन्ना?”

अन्ना ने उसे सांत्वना दी—“मैं जल्दी लौटूंगा रज्जी, तुम बस मेरा इंतजार करना।”

× × ×

मां आजकल रज्जी से खूब प्यार दिखाती। रज्जी को अन्ना के खतों का इंतजार बेसब्री

से रहता। मगर वह निराश ही होती। उसे क्या खबर थी कि मां ने पहले से ही अन्ना के खतों को उस तक न पहुंच पाने का पूरा बंदोबस्त कर लिया था।

पापा आज श्रीनगर से लौटे तो बहुत खुश थे। दोनों देर तक जाने क्या बातें करते रहे।

मां ने ही बताया कि उन्होंने मेरा ब्याह तय कर लिया है। कमल कपूर नाम है उसका, फौज में सेनानायक है।

“ले ये तस्वीर देख ले।”

“मां तुमने तो अन्ना से वादा किया है। उसका क्या?”

“बेटी कमल घर से मजबूत है। कमल के पिता भी फौज में सूबेदार थे।”

रज्जी को मां की बातों से बहुत दुःख हुआ। उसने मर जाने की धमकी दी। अनशन रख लिया। उसकी बस एक ही जिद थी। वह बस





अन्ना से ही ब्याह करेगी। पापा समझा कर हार गए। फिर अपनी इज्जत रज्जी को सौंपते हुए बोले—“अब जैसा तू कहेगी रज्जी वही हम करेंगे, हम उन्हें मना कर देंगे। बिरादरी वाले हम पर थूकेंगे, कोई बात नहीं। हमारा बिजनेस खत्म हो जाएगा, कोई बात नहीं। हम तेरी इच्छा पूरी करेंगे।”

रज्जी रात भर सोचती रही। क्या वह ठीक कर रही है। वह अन्ना से प्रेम करती है। मगर यह जरूरी नहीं कि शादी भी उसी से करे। प्रेम तो ईश्वर होता है। फिर इसमें शादी जैसी दुनियादारी की बातों से क्या वास्ता? मां-पापा के दुख से वह विचलित हो उठी।

उसने मां को अपना निर्णय सुना दिया। “आप लोग जैसा करेंगे मुझे कोई आपत्ति नहीं।”

पापा ने उसे प्यार से गले लगाते हुए कहा, “मुझे मालूम था बेटे, तू एक नेक और समझदारी बेटी है।”

रज्जी ब्याह कर श्रीनगर आ गई। रिश्तों की रेशमी डोर में बंधी हुई रज्जी अपने अतीत को धुंधला होते देख रही थी।

कमल एक सुलझे हुए, खुशमिजाज, ख्याल रखने वाले पति थे। उनकी बांहों में स्नेह, सुरक्षा, अपनापन सब कुछ मिला रज्जी को। वह खुश थी।

एक रोज वह दफ्तर से आए तो उनके साथ कोई व्यक्ति था। “बीवी देखो भई, तुम्हारे पहलगाम से कोई आया है, जरा शोमू से चाय-नाश्ता भेज दो। हां, तुम भी आ जाओ। बाहर

लॉन में बैठेंगे।”

रज्जी को एक अजीब कौतूहल हुआ, “कौन होगा?” दुपट्टा डालकर वह बाहर आई, सामने अन्ना को देखकर ठगी-सी रह गई। अपलक एक-दूसरे को देखते ही रहे वे दोनों।

अन्ना को ख्याल आया, रज्जी अब उसके सीनियर की पत्नी है। उसने एक फौजी सलाम किया।

“आओ बीवी बैठो, ये हमारी ही बटालियन में हैं सूबेदार अन्ना। पहलगाम में इनका घर है।”

रज्जी ने प्रत्यारोपित मुस्कान भरी, “अच्छा”।

“मैं चाय भेजती हूं।”

अन्ना रज्जी के सुखी गृहस्थ जीवन से खुश ही हुआ। सुख की रेखाएं रज्जी के चेहरे पर दीप्तमान थीं। मगर एक खरोंच उसे भीतर तक तार-तार करती। रज्जी ने न-ही पत्रों का जवाब दिया। न ही मेरा इंतजार किया।

हो सकता है उस पर मां का भारी दबाव हो। हां, यही सच है। हमारी रज्जी ऐसी नहीं।

कमल ने अन्ना को चाय का प्याला थमाते हुए कहा, “अपना ही घर समझो अन्ना। जब चाहो आओ। हमें तुम्हारी कंपनी अच्छी लगी। खासतौर पर इसलिए भी कि तुम हमारी बीवी के घर के हो।”

अन्ना अक्सर आता। कमल के साथ। रज्जी बहुत कम उनके बीच बैठती।

“ये दवाएं घर दे आना अन्ना अभी जरूरत होगी इनकी।”

अन्ना दवाओं का पैकेट लिए हुए रज्जी के घर पहुंचा। बाहर रज्जी ही आई। कमल घर पर नहीं ऑफिस में हैं।”

“उन्होंने ही मुझे ये दवाइयां देकर भेजा है।”

पैकेट देते हुए अन्ना ने देखा, रज्जी की आंखें तरल हैं। उसे संतोष हुआ, कहीं आज भी रज्जी के मन में वह है।

“तुम बीमार हो रज्जी?”

“नहीं तो।”

“फिर ये दवाइयां।”

“मैं मां बनने वाली हूं।”

अन्ना के मन में एक खुशी की लहर दौड़ गई।

“बहुत मुबारक हो रज्जी।”

“मुझे आज एक बात पूछने दो रज्जी, तुमने मेरा इंतजार क्यों नहीं किया?”

“उन बातों को दुहराने की जरूरत नहीं अन्ना। जो रब ने चाहा किया। न तुम्हारा कोई दोष है न ही मेरा। मैं खुश हूं अन्ना। अब तुम जाओ।”

“मैं भी उतना ही खुश हूं रज्जी, हमारे सर जितना अच्छा व्यक्ति दूसरा नहीं। मैं तुम्हें हमेशा खुश देखना चाहता हूं। अच्छा चलता हूं।”

× × ×

सेनानायक कमल कपूर ने अपने साथियों को एलर्ट कर दिया। “आज रात कारगिल पहुंचना है। वहां युद्ध की-सी स्थिति है। पाकिस्तानी घुसपैठियों ने हमारी सीमा रेखा में घुसने का प्रयास किया है।” उन्होंने जवानों की हिम्मत बढ़ाई और तैयार होने का आदेश दिया।

कमल घर आए। रज्जी ने सुना तो विचलित हुई। “मैं यहां अकेली कैसे रहूंगी कमल?”

“वैसे ही जैसे दूसरे जवानों की बीवियां रहेंगी। ये मत भूलो तुम एक फौजी की बीवी हो। हमारा फर्ज हमें पुकार रहा है। हमें जाना है। चलो उठो। नाऊ बी ब्रेव, मेरी अटैची लगा दो। अन्ना भी आ रहा होगा। मैं तैयार हो लेता हूं।”

दस्तक हुई। अन्ना ही था। रज्जी ने कहा— “कमल तैयार हो रहे हैं। बैठ जाओ।”

“अन्ना, कारगिल में युद्ध जैसा माहौल है। भयंकर गोला बारूद! मुझे बहुत डर लग रहा

है अन्ना। कमल का ख्याल रखना।”

“मैं हूं न। फिर तुम्हें कैसी चिंता? हमें विश्वास है हम इन सिरफिरे घुसपैठियों को सीमा से बाहर खदेड़ कर जल्दी ही वापस आएं।”

कमल और अन्ना चले गए। रज्जी का मन भयभीत हो रहा था। फिर उसे कमल के शब्द याद आए—“तुम एक फौजी की बीवी हो।” उसने सभी जवानों की पत्नियों के साथ मिलकर उनका मनोबल मजबूत किया। एक विश्वास और संकल्प का संचार उनमें होने लगा। देश की सीमा की रक्षा में गए पतियों के लिए प्रार्थना और सांत्वना में वह अपना समय व्यतीत करती।

रज्जी ने खबरों में सुना—“सीमा और आस-पास के क्षेत्रों से सभी घुसपैठिए खदेड़ दिए गए हैं। भारत के वीर सैनिकों ने प्राणों की बाजी लगाकर देश की रक्षा की।”

सेनानायक कमल कपूर अपनी टुकड़ी के साथ बराबर दुश्मनों को शिकस्त दे रहे थे। तभी पीछे से दनदनाती हुई एक गोली कमल कपूर की कनपटी के पास से गुजर गई।

अन्ना ने कमल को अपने बाजुओं में छिपा लिया। वह उनके शरीर पर ढाल की तरह लिपट गया। उसके ऊपर ताबड़तोड़ कई गोलियों से पीछे से वार कर दिया गया। अन्ना का शरीर छलनी हो गया। उसके मुंह से बमुश्किल इतना ही निकला—‘तुम्हीं ने तो कहा था रज्जी।’

4/151, विशाल खंड, गोमती नगर,
लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

असली दहेज

डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'

लेखिका डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प' की विभिन्न विषयों पर चौबीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। साहित्य में योगदान के लिए कई पुरस्कारों से सम्मानित।

मेरा छोटा बेटा प्रणित चौबीस वर्ष का हो गया था। मेरी इच्छा थी कि ब्रह्मचर्य आश्रम पूरा होते ही उसका विवाह हो जाता। समय से किया गया कार्य ही उत्तम होता है। बहू पसंद करने की जिम्मेदारी से मुक्त होने के लिए मैं अक्सर कह देती—“अगर तुमने कोई लड़की पसंद की है, तो बता दो। मैं ही बात कर लूंगी लड़की वालों से। बस, ध्यान रखना, सोच-समझ कर ही निर्णय लेना। देखकर किया गया प्रेम सफल नहीं होता, समझकर किया गया प्रेम जीवन भर साथ देता है।” प्रणित कहा—“आप चिंता क्यों करती हैं, मां! मैं ठीक आपकी जैसी लड़की ही पसंद करूंगा। इतनी जल्दी भी क्या है!”

सह-शिक्षा में पढ़ाई के कारण प्रणित की अनेक लड़के-लड़कियों से मित्रता थी। उसके केवल रूप-रंग के कारण ही नहीं, बल्कि उसकी कर्मठता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, परोपकारिता, आत्मनिर्भरता, कर्तव्यनिष्ठा, आदर्श एवं यथार्थ का समन्वय, मितभाषिता, मितव्ययिता आदि गुणों के कारण हर व्यक्ति उसका अपना हो जाता था। मुझे समझ नहीं आता था कि उसका झुकाव किस लड़की पर है। मुझे चिंतित देख प्रणित के पिताजी कहते—“तुमने इसे इतने अच्छे संस्कार दिए हैं, फिर क्यों चिंतित होती हो? जो करेगा अच्छा ही करेगा।”

बड़ा बेटा प्रतीक जब विवाह योग्य हुआ, तब मेरे मन में बड़ी उत्सुकता थी। अपने बेटे के

लिए मैं खुद पसंद करके बहू लाऊंगी। सुंदर, गोरी-चिट्ठी, पढ़ी-लिखी, गुणी, अपनी जाति-बिरादरी की, अपने ही प्रदेश की। मैं पक्की आदर्शवादी थी, अतः दान-दहेज का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

मेरी इच्छा के अनुरूप ही एक लड़की मिल गई। जैसा सोचा हो वैसा ही अगर वास्तव में हो जाए, तो खुशी का ठिकाना नहीं रहता। मेरी खुशी मेरे चेहरे एवं चुस्ती से प्रकट हो रही थी। मेरा मानना था कि कन्यापक्ष अपनी पुत्री दे रहे हैं, अपने परिवार का अंग, अपने हृदय का टुकड़ा दे रहे हैं, इससे बड़ी बात क्या हो सकती है। अतः उन पर अनावश्यक बोझ डालना मैं बिल्कुल नहीं चाहती थी। किंतु घर में पहला विवाह समारोह होने वाला था, अतः मैं ही नहीं, बल्कि घर का हर सदस्य चाहता था कि समारोह बहुत धूमधाम से हो। लोग याद रखें कि कभी किसी के विवाह में गए थे।

मैंने बहू के लिए कपड़े-गहने अपनी पसंद से खरीदे। रीति-रिवाज के नाम पर या दिखावे के नाम पर, किसी भी प्रकार का बोझ कन्यापक्ष पर नहीं दिया। विवाह हुआ बहुत धूमधाम से। कन्यापक्ष वालों ने भी अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ी थी। हमारे परिवार, मित्र तथा मुहल्ले वाले सब-के-सब ने दांतों तले अंगुली दबा ली। बहू घर आ गई। जिसने उसे देखा, वही प्रशंसा करते नहीं थकता। सभी मेरे और मेरे बेटे के भाग्य को सराहते। “बड़ी अच्छी बहू पाई है। रंग तो देखो, दूध-सी गोरी है, और रूप? चांद-सा मुखड़ा है। कद-काठी का तो जवाब नहीं।” ईर्ष्या करने वाले जल-भुनकर रह गए। मैं भी गर्व से फूली नहीं समा रही

थी—“आखिर मैंने ढूंढी है, ऐसी खूबसूरत मूरत।”

बहू साथ में दहेज भी बहुत लाई थी। कपड़े-गहने, फर्नीचर, बिस्तर न जाने क्या-क्या। हमारे घर में तो इतना सामान रखने के लिए जगह भी नहीं थी। बहू के माता-पिता ने हर रीति-रिवाज को पूरा किया। मना करने पर भी पूरे परिवार और रिश्तेदारों का भी गहने-कपड़े-रुपए सब से सम्मान किया। सभी बहुत खुश थे।

दो-चार दिनों में सभी रिश्तेदार अपने-अपने घर चले गए। बहू भी मायके से फेरा लगाकर आ गई। अब सामान्य जीवन आरंभ हो गया। बड़े अरमानों से बहू आई थी, इसलिए मैंने उसे कहा—“अभी तो तुम नई-नई हो। अभी तुम्हारे शोक-मौज के दिन हैं, घर के काम का क्या है, करती रहना जिंदगी भर।”

एक महीना, दो महीने, तीन महीने... छह महीने बीत गए। बहू सचमुच 'खूबसूरत मूरत' बनी रही। सुबह देर से कमरे से निकलती। तब तक हम सब नहा-धोकर नाश्ता भी कर लेते। प्रणित नाश्ता करके दोपहर का भोजन साथ लेकर ऑफिस चला जाता। अभी-अभी उसकी नौकरी लगी थी। प्रतीक की सदर बाजार में स्पेयर पार्ट्स की दुकान थी। वह रात को देर से आया करता था, इसलिए सुबह आठ बजे उठा करता था। तैयार होकर नौ बजे तक घर से निकल जाता था। जब से शादी हुई है, वह और भी देर से जाने लगा। नौ बजे तक तो उठता ही नहीं। बहू भी उसके उठने पर ही उठती। तब तक घर का सारा काम मैं निबटा लेती। घर में चार-पांच सदस्य ही थे, और मैं नौकरी

करती नहीं थी, इसलिए घर का काम खुद ही कर लेती थी। बहू जब तक तैयार होती, तब तक प्रतीक नहा-धोकर नाश्ता-पानी करके और दोपहर का भोजन लेकर दुकान के लिए निकलने लगता। प्रतीक को विदा करके बहू रसोई में आती, अपना नाश्ता लेकर कमरे में चली जाती। टी.वी. ऑन कर लेती। उस समय से रात के दस बजे तक टी.वी. ऑन ही रहता। बस दोपहर के भोजन के बाद जब वह दो घंटे सोती, तब टी.वी. ऑफ होता। एक दिन मैंने उसे समझाते हुए कहा—“इतनी देर तक टी.वी. नहीं देखा करते, आंखें खराब हो जाती हैं और अपनी रचनात्मकता भी समाप्त हो जाती है...।” मेरी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि उसने तपाक से कहा—“मेरे पापा ने इसीलिए तो टी.वी. दी थी कि मैं अपनी इच्छा से टी.वी. देख सकूँ। दरअसल मुझे टी.वी. देखने का बहुत शौक है।” बहू दिन भर अपने कपड़े-गहनों को ही निहारती रहती या टी.वी. देखती रहती। घर के किसी भी काम से कोई

मतलब नहीं था। कमरे से जब भी निकलती सज-संवरकर स्टाइल से निकलती। जब भी मुझसे बातें करती, तो अपने दहेज की चर्चा या अपने सौंदर्य का वर्णन करती रहती। अक्सर कहती—“मांजी, मेरी बाजू कितनी गोरी है न। कई लोगों की कोहनियां और अंगुलियों के जोड़ काले होते हैं, लेकिन मेरे तो यह सब भी गोरे हैं।” कभी कहती—“मेरा रंग बहुत गोरा है न, इसलिए मेरे ऊपर गहरे रंग खूब फबते हैं। तभी तो मेरी मां ने मुझे गहरे रंग की इतनी ढेर साड़ियां दी हैं।” कभी कहती—“मांजी, मेरी गरदन कितनी लंबी है न? देखिए इस पर यह नेकलेस कितना जंच रहा है। शादी के गहने खरीदने के लिए जब मैं ज्वैलर्स की दुकान पर गई थी, तब मुझे पांच नेकलेस पसंद आए थे। देखिए न, पापा ने पांचों नेकलेस खरीद कर मुझे दे दिए।”

प्रतीक के पिता को एक दुर्घटना में सिर में चोट लग गई थी, इससे उन्हें हमेशा सिर में

दर्द रहने लगा था। इसीलिए उन्हें नौकरी से वी.आर.एस. लेकर उम्र से पहले ही अवकाश लेना पड़ा था। प्रणित को इसी महीने नौकरी मिली थी, केवल प्रतीक की आमदनी से ही घर चलता था। लेकिन अब तो वह भी मेरे हाथ में नहीं मिलती। दुकान से लौटकर घर आते ही बहू प्रतीक से ‘आज की आमदनी’ का पूरा हिसाब लेती। जब मैं प्रतीक से आमदनी के बारे में पूछती तो वह कह देता “आज कोई आमदनी हुई ही नहीं” या “माल मंगवाना था, सो उसी में सारे पैसे लग गए” या “आमदनी की बात करती हैं, यहां तो घाटा ही घाटा हो रहा है। आज के जमाने में बिजनेस चलाए रखना बहुत मुश्किल है, एक ओर महंगाई, दूसरी ओर इतना कॉम्पिटिशन। कहां जाएं, क्या करें हम?” अब घर के सारे खर्च का भार प्रणित पर ही पड़ गया। प्रतीक की दुकान में हर सोमवार को छुट्टी रहती थी। उस दिन प्रतीक और बहू दोनों सुबह जल्दी ही तैयार होते और घर से निकल जाते। पूछने पर



कभी बहू के किसी रिश्तेदार के घर, तो कभी अपने किसी दोस्त के घर जाने की बात कह जाते। रात को देर से आते। प्रतीक के कपड़े धोने लगती, तो अक्सर फिल्म की टिकट और रेस्तरां के बिल मिलते। जब वे दोनों घर में नहीं होते, तो मैं उनके कमरे में जाती। बड़ी मेज के बगल में रखे स्टूल पर टोकरी में अक्सर महंगे फल रखे मिलते, शीशियों में तरह-तरह के मुरब्बे दिखते। मैं कुछ न कहती। डरती थी, कहीं मेरे कुछ कहने से घर में अशांति न फैल जाए। दोनों यदि ऐसे में सुखी हैं, तो ऐसा ही सही।

गर्मी का मौसम था। एक दिन मुझे लू लग गई। उल्टी-दस्त के मारे बुरा हाल था। उस दिन विपक्षी दल ने बंद का आह्वान किया था, इसलिए प्रतीक घर पर ही था। मेरा बुरा हाल देखकर उसने बहू से नाश्ते के बरतन धोने के लिए और दोपहर का भोजन बनाने के लिए कहा। उसकी बातें सुनते ही बहू बरस पड़ी—“मेरी मां ने मुझे रसोई में कभी नहीं भेजा, उनका कहना था कि रसोई में जाने से मेरा रंग काला हो जाएगा। मैं नहीं रसोई का काम करने वाली। बरतन तो बिल्कुल नहीं धोऊंगी। मेरे हाथ काले हो जाएंगे, सारे नाखून टूट जाएंगे, नेल पॉलिश उतर जाएगी। ना बाबा ना। मुझसे ये सब काम नहीं होंगे। मेरे पापा ने मेरी शादी बिजनेसमैन से की थी। कहा था—“राज करोगी”। मैं भी सोचा करती थी कि बड़ा-सा घर होगा, नौकर-चाकर होंगे, खाने-पीने पहनने की कमी न होगी, पर यहां तो बस...!” दूसरे कमरे में बिस्तर पर पड़ी मैं सब सुन रही थी। मुझसे उठा नहीं गया। प्रतीक के पिताजी चुपचाप रसोई में गए। उन्होंने बरतन धोए और कुकर में खिचड़ी चढ़ाकर गैस जला कर रसोई से बाहर आ गए। वे गर्मी सह नहीं पाते। गर्मी से उनके सिर का दर्द और बढ़ जाता था। प्रतीक ने खिचड़ी परोसी हम तीनों ने खिचड़ी खाई। बहू ने बाहर से मंगवाकर खाना खाया।

ऐसे ही दिन बीतते रहे। बहू को अक्सर नए-नए गहने पहने देखती। अगर कभी मैं

कहती, “बहू, यह गहना बहुत सुंदर है!” वह झट से कहती, “मेरे पापा ने फलां रिश्तेदार के हाथ से भिजवाया था, या ये तो शादी में मेरी मौसी ने गिफ्ट दिया था...।” उन गहनों की रसीद कई बार मुझे कूड़े में मिली। मैं सब कुछ जानकर भी अनजान बनी रहती।

एक साल बीत गया। बहू गर्भवती हो गई। अब तो वह बिस्तर से भी नहीं उतरती। खाना-पीना मैं उसे बिस्तर पर ही दे आती। जूठे बरतन उठाकर ले आती। उसके कपड़े भी मैं ही धोती। टी.वी. देखने और घूमने-फिरने में कोई कमी नहीं आई। रोज नई फरमाइश करती और हम उसे किसी तरह पूरी करते, क्योंकि उसका कहना था कि गर्भवती महिला को मन में कोई इच्छा दबाकर नहीं रखनी चाहिए।

प्रणित की नौकरी पक्की हो गई। वह नौकरी के साथ-साथ पढ़ाई भी कर रहा था। कहता था कि इससे जल्दी पदोन्नति के अवसर मिलेंगे। अब वह पच्चीस वर्ष का हो गया। उसका विवाह अब हो जाना चाहिए। मैंने फिर उससे विवाह की बात छोड़ी। उसने पूछा—“दिव्या कैसी लड़की है?” प्रतीक के विवाह में प्रणित के कई दोस्त आए थे। उन लड़कियों में कई खूबसूरत भी थीं। कई बड़ी मॉडर्न भी थीं। उनमें एक लड़की थी—सीधी-सादी, गेहुआ रंग, सामान्य कद-काठी, हल्के भूरे रंग की साड़ी, कमर तक मोटी-सी चोटी। वह दिव्या थी। आज के जमाने में ऐसी लड़कियां बहुत कम दिखती हैं, इसीलिए मुझे आज तक वह याद है। मैं बड़ी हैरान थी कि प्रणित की मित्र-मंडली में एक-से बढ़कर एक खूबसूरत लड़कियां थीं, पर उसे मन-भाई तो दिव्या ही। खैर मैंने पूछा—“तुम्हें पसंद है?” उसने उत्तर दिया—“अगर आपको पसंद हो, तो...।” मैं कुछ कह न पाई। थोड़ी देर में मैंने कहा—“उसके माता-पिता से बात करवाओ।”

कुछ दिनों बाद रोज गार्डन में दिव्या के माता-पिता से मिलना निश्चित हुआ। मैं, प्रणित और उसके पिताजी उनसे मिलने गए। दिव्या भी आई थी। बड़े ही शिष्टाचार से उन्होंने

हमारा स्वागत किया। बातचीत में पता चला कि दिव्या के पिताजी सरकारी अस्पताल में डॉक्टर हैं। अस्पताल से आने पर घर में वे लोगों को मुफ्त में डॉक्टरी सलाह देते हैं। दवा के बदले साधारण परहेज तथा योग से बीमारी दूर करने की अधिक सलाह देते हैं। उनका कहना था—“रोजी-रोटी के लिए सरकार वेतन देती ही है। मानव जीवन मिला है, तो क्यों न दूसरों का भला करें।” उनके विचार सुनकर बहुत अच्छा लगा। दिव्या के अलावा उनकी एक और छोटी बेटा है। वह बी.एससी. कर रही है। दिव्या कंप्यूटर टीचर है। उसके माथे पर छोटा-सा कटने का निशान था। पूछने पर पता चला कि स्कूल में, एक बच्चा तेज गति से आ रही एक बस के नीचे आने वाला था, उसे बचाने के चक्कर में वहां रखे गमले में उसे सिर में चोट लग गई थी। चार टांके लगे थे। अब जख्म भरने लगा है। दिव्या की मां गृहिणी है। उनका बेटा नहीं है।

दिव्या के माता-पिता ने हमारे घर-परिवार के बारे में भी पूछा। अब शादी की बात चली। उन्होंने कहा—“यदि आपको हमारी दिव्या पसंद है, तो दान-दहेज की बात कर लें?” मैंने तुरंत कहा—“मुझे तो अपने बेटे के लिए सुंदर लड़की चाहिए।” मेरी बात सुनते ही प्रणित, दिव्या और उसके माता-पिता सन्न रह गए। प्रणित ने कहा—“मां, दिव्या तो...।” मैंने बीच में ही कहा—“हां पन्नी, तुम तो जानते ही हो, मुझे सुंदर लड़कियां ही पसंद हैं। सुंदरता केवल तन की ही नहीं होती, सुंदरता मन की भी होती है। फिर दिव्या का तन असुंदर तो नहीं कहलाएगा। अच्छी खासी है, क्या कमी है, इसमें? और इसके मन की सुंदरता का प्रमाण इसके माथे पर चोट का निशान है। अब और क्या चाहिए।” मेरी बात सुनकर दिव्या के माता-पिता भी मुस्कुरा पड़े। उसकी मां कहने लगीं—“यह तो आपका बड़प्पन है कि आप...” मैंने उन्हें टोकते हुए कहा—“बस इस बारे में कुछ न कहें, भगवान ने हम सबको बनाया है, उनकी कृति में कमियां निकालना ठीक नहीं।” प्रणित को चैन मिला—“उसकी मां को लड़की तो पसंद आई।” अब शादी



की बात चलने लगी। प्रणित के पिताजी ने कहा—“भाई साहब, हम दहेज के बिल्कुल विरुद्ध हैं। हम पढ़े-लिखे लोग भी अगर दहेज लेंगे-देंगे, तो हमारी शिक्षा का क्या लाभ? हमने बड़े लड़के के विवाह में भी कुछ भी नहीं मांगा।” मैं उनकी बात सुन रही थी। उनकी बात पूरी होते ही मैंने कहा—“लेकिन इस बार तो हम दहेज लेंगे।” दिव्या के माता-पिता तो बिल्कुल स्तब्ध रह गए। लगा जैसे उनके पांव तले जमीन खिसक गई हो। उन्होंने दुख भरे स्वर में एक साथ कहा—“दहेज?” मैंने कहा—“हां भाई, दहेज के बिना दुल्हन अधूरी है। आपको दहेज तो देना ही पड़ेगा।” प्रणित भी हैरान होकर कहने लगा—“मां, आप यह क्या कह रही हैं?” मैंने फिर कहा—“दहेज के बिना दुल्हन हम नहीं लेंगे और दहेज में हमें चाहिए—संस्कार, अच्छे गुण, अच्छा स्वभाव। बोलिए, आप हमारी मांग पूरी करेंगे या नहीं? अगर यह दहेज देने के लिए आप तैयार हैं, तो शादी पक्की।” दिव्या के माता-पिता तो कुछ कह ही नहीं पाए, उनकी आंखें छलछला आईं। उनके अनकहे शब्दों और अनबहे अश्रुओं को हमने पढ़ लिया। मैंने आगे कहा, “दो महीने बाद दुर्गा पूजा में नवरात्रि को विवाह निश्चित कर लें?” वे कहने लगे, “दो महीने? दो महीने

में तैयारी कैसे करेंगे?” मैंने कहा, “नवरात्रि में बिना लगन पूछे विवाह होता है और विवाह के लिए दूल्हा-दुल्हन और आशीर्वाद के लिए उनके माता-पिता हों, इतना ही आवश्यक है।” दिव्या के पिता कहने लगे, “फिर भी... कुछ तो प्रबंध...।” मैंने उन्हें टोका, “अब शुभ काम में देरी न कीजिए।” प्रणित के पिताजी ने मेरी बात पूरी करते हुए कहा, “आप अपने निकट संबंधियों को बुला लीजिए और हम भी अपने निकट संबंधियों को बुला लेते हैं। बहुत लोगों को इकट्ठा करने की क्या आवश्यकता है? यहीं पास में ही बड़ा शिव मंदिर है, वहीं विवाह संपन्न होगा। आप प्रबंध की चिंता न करें। हम आपस में मिल कर विवाह के बाद सामान्य-सा प्रीतिभोज का आयोजन कर लेंगे। और किसी चक्कर में आप न पड़ें। यदि लेन-देन के चक्कर में पड़ेंगे, तो उसका अंत नहीं है। हमें दिखावा नहीं चाहिए।...”

योजना के अनुसार शिव मंदिर में विवाह संपन्न हो गया। बहू घर आ गई। सबने बहू को देखा। सामान तो था नहीं, तो क्या देखते, बहू को देखकर किसी ने प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। क्या कहते? शायद वे मन-ही-मन बड़ी बहू के रंग-रूप और दहेज से तुलना कर रहे थे। बड़ी बहू रूप-रंग से खूबसूरत थी, दहेज

में खूब सारा सामान, कपड़े, गहने लाई थी, यह सबको दिखता था, छोटी बहू रूप-रंग से तो अधिक नहीं, मगर मन से बहुत खूबसूरत थी, वह दहेज में संस्कार, अच्छे गुण, अच्छा स्वभाव लाई थी, यह किसी को दिखाता नहीं था। दिखता भी कैसे? उसे तो केवल महसूस किया जा सकता है। विवाह में अधिक रिश्तेदारों को बुलाया ही नहीं था, जो आए थे, उन्होंने समारोह के अति साधारण स्तर को देखकर अधिक समय तक रुकना उचित न समझा। अतः अगले दिन ही सभी रिश्तेदार चले गए। छोटी बहू ने सुबह-सुबह उठकर नहा-धोकर हमें अभिवादन किया, पूजा-स्थल में जाकर संक्षिप्त पूजा की और रसोई में काम करने के लिए आ गई। मैं हैरान रह गई। कल की ब्याही बहू आज काम करने में लग गई। मेरे मना करने पर उसने कहा—“नई और पुरानी से क्या फर्क पड़ता है? आप सासू होकर काम करें और मैं कमरे में बैठी रहूँ, यह तो उचित नहीं है, बल्कि यह तो पाप है। आप चाहेंगी कि मैं पापिन कहलाऊँ? नहीं न? फिर मुझे काम करने दीजिए। आप बताती जाइए और मैं करती रहूँगी।” छोटी बहू के व्यवहार और मृदुभाषिता से उसके संस्कार का प्रमाण मिल रहा था। सचमुच मैं तो गद्गद् हो उठी।

छोटी बहू सुबह उठती। नहा-धोकर नाश्ता बनाती। प्रणित और प्रतीक के लिए भोजन पैक करती फिर स्कूल जाती। स्कूल से लौटती, तो कपड़े बदल कर सबके लिए भोजन का प्रबंध करती। घर की सफाई, कपड़े धोना सब कब कर लेती, पता ही नहीं चलता। वह सबका ख्याल रखती। शाम को प्रणित के पिताजी को चाय देती और उन्हीं के पास बैठ जाती। उनसे कंप्यूटर में क्या-क्या नया जुड़ रहा है, इसकी चर्चा करती। उनकी दवाइयों का ख्याल रखती। उनकी पुरानी किताब-कापियों पर पड़ी धूल को झाड़-पोंछकर सहेज कर रखती और उनके बारे में उनसे पूछती रहती। ऐसा लग रहा था कि प्रणित के पिता जी और बहू में पुरानी दोस्ती हो। वे उससे खूब बातें करते, कभी राजनीति की, कभी नए जमाने की, कभी पढ़ाई-लिखाई की और न जाने क्या-क्या। बहू जब तक रसोई में रहती, मुझे कोई-न-कोई व्यंजन की विधि सीखती रहती। रिश्तेदारों की बातें, कभी घर के रीति-रिवाजों की बातें करती रहती।

छोटी बहू को घर आए एक महीना बीत गया। उसे स्कूल से वेतन मिला था। घर आते ही उसने हम दोनों के पांव छुए और मुझे एक लिफाफा पकड़ाया। मैं उसकी ओर प्रश्न भरी निगाह से देखने लगी। उसने समझ लिया, कहा—“यह मेरा वेतन है। जब उस घर में थी, तो मां को दिया करती थी। अब इस घर में हूं, तो आपको दे रही हूं।” मैं आश्चर्यचकित थी। मैं उसका मुंह देखती रह गई। फिर मैंने कहा—“इसे तुम ही रख लो, तुम्हें जरूरत पड़ेगी।” उसने विनम्रतापूर्वक कहा—“मांजी, मुझे क्या करना है? आने-जाने का खर्च आपसे ले लिया करूंगी। आप इसे रख लीजिए। आखिर प्रणित का वेतन आप रखती हैं, तो मेरा वेतन रखने में आपको संकोच क्यों हो रहा है? प्रणित आपके बेटे हैं, तो मैं भी आपकी बहू हूं। रख लीजिए, मांजी!” प्रणित के पिताजी भी कहने लगे, “बहू इतना आग्रह कर रही है। उसका दिल न दुखाओ। रख लो।” आखिर मैंने उसका वेतन रख लिया।

चार महीने बाद बड़ी बहू ने पुत्र को जन्म दिया। अब तो उसका अहंकार आसमान का छूने लगा। वैसे तो घर में कोई काम करती नहीं थी, फिर भी ‘वहां आराम मिलेगा’ कहकर एक महीने तक मायके में रह आई थी। पुत्र-जन्म की बधाई के रूप में उसके माता-पिता ने कपड़े, गहने, मिठाइयों आदि ढेर सारी चीजें भेजी थीं। मैं मन-ही-मन इन चीजों के औचित्य पर विचार करती रहती और बड़ी बहू अपने माता-पिता की इस ‘महानता’ का बखान छोटी बहू के सामने करती रहती। छोटी बहू क्या करती? वह उसकी बातें सुनती रहती, “अच्छा! अच्छा!” कहती रहती और काम में लगी रहती।

एक साल बीत गया। छोटी बहू के वेतन को मैं जमा करती रही। प्रणित के वेतन से भी कुछ रुपए बचाकर जमा करती रही। एक दिन मैंने प्रणित को कहा—“बेटे! बस स्टैंड के पीछे की ओर जो हमारी जमीन पड़ी है, उसमें मकान बना लो। ये कुछ रुपए बहू के और तुम्हारे वेतन से जमा किए थे, इन्हें रख लो, मकान बनने में काम आएंगे।”

छह महीनों में मकान रहने लायक तैयार हो गया था। चूंकि मकान नजदीक ही बन रहा था, इसलिए अक्सर हम सब देख आया करते थे। गर्मी की छुट्टियां खत्म होने वाली थीं, इसलिए प्रणित ने सलाह दी कि हम अभी ही नए मकान में चले जाएं, मकान में जो कमी रह गई है, वह धीरे-धीरे पूरी होती रहेगी। रविवार को प्रणित सामान ले जाने लगा। सामान क्या था? उसका बेड, अलमारी, एक मेज और चार कुर्सियां। जब ये सामान चले गए तब छोटी बहू हमारे पास आई और कहने लगी—“मांजी, पिताजी, चलिए नए मकान में हम सब रहेंगे, उठिए न, चलिए।” हमने कुछ न कहा। हमारी आत्मा उसे आशीर्वाद दिए नहीं थकती थी। हम दोनों उठे। प्रणित को कहा कि हमारा बेड, अलमारी और ट्रंक भी ले जाए। फिर मैं रसोई में गई। कुछ बरतन उठाकर ले आई। एक पुराना स्टोव पड़ा था, वह भी ले आई। यह सब सामान लेकर हम अपने मकान से नए

मकान के लिए चल पड़े। मेरे कदम बहुत धीरे उठ रहे थे। पाई-पाई जोड़कर बड़े अरमान से यह मकान बनवाया था। सोच रही थी कि बड़ी बहू उठेगी और हमें जाने से रोक लेगी, लेकिन ऐसा न हुआ। अपने कमरे में बच्चे को लेकर लेटी रही। हम बिना कुछ कहे नए मकान में चले आए। उस समय प्रतीक घर में नहीं था। मन बार-बार कह रहा था कि प्रतीक जरूर आएगा और कहेगा—“मां, चलिए, अपना घर छोड़कर आप कैसे चली गई? आप और पिताजी अपने घर चलिए... हम आपके बिना अकेले नहीं रह सकते”, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

इस नए मकान में पहला कमरा बहुत सुंदर बना था। उस कमरे का सारा काम हो चुका था। हमने सोचा शायद यह बैठक का कमरा होगा, किंतु छोटी बहू ने कहा—“आप दोनों के लिए यह कमरा तैयार किया है। यहीं आपका बेड लगाएंगे। घर के मुखिया का कमरा ऐसी जगह होना चाहिए, जिससे वे पूरे घर पर नजर रख सकें, इसीलिए यह कमरा आपके लिए तैयार किया है।” हमारा मन प्रसन्नता से भर गया। बहू ने सबसे पहले हमारे लिए कमरा तैयार करवाया था। अन्य कमरों में अभी काफी काम बाकी था।

अगस्त की पहली तारीख को छोटे बहू हाथ में एक उपहार लिए हमारे कमरे में आई और प्रणित के पिताजी के चरण स्पर्श करके उन्हें उपहार देते हुए कहा—“जन्मदिन मुबारक हो, पिताजी।” मैं चौंक उठी—“जन्मदिन?” प्रणित के पिताजी ने पूछा—“बहू, तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि आज मेरा जन्मदिन है?” छोटी बहू कहने लगी—“आपकी किताबें जब संभाल रही थी, तब उसमें आपका दसवीं का प्रमाण-पत्र मिला था, उससे पता चला कि आज आपका जन्मदिन है।” प्रणित के पिता जी उसे आशीर्वाद देने लगे। मैं मन-ही-मन कह रही थी—“बहू, तुम हमारी बहू हो, या बेटे, या हमारे पिछले जन्मों के पुण्य का फल हो?”

इसी तरह वह हमारी शादी की सालगिरह और

मेरा जन्मदिन भी याद रखती और कोई-न-कोई उपहार, हमें अवश्य देती। सुख का समय बीतते पता नहीं चलता। प्रणित के दो बच्चे हैं, बड़ी लड़की और छोटा लड़का। छोटी बहू ने घर का सारा काम संभाल रखा था, साथ में स्कूल की नौकरी भी करती थी। एक बार प्रणित और छोटी बहू को एरियर के रूप में कुछ रुपए मिले थे। उन्होंने उनसे कंप्यूटर सेंटर खोल लिया। बहू सुबह नाश्ते-पानी का प्रबंध करती, दोनों बच्चों को तैयार करती और स्कूल चली जाती। वहां से आकर फिर भोजन का प्रबंध करती, घर की सफाई, कपड़े की धुलाई आदि करती। शाम को कंप्यूटर सीखने के लिए बच्चे आते थे। कंप्यूटर वाले कमरे में ही दोनों बच्चों को बिठाकर पढ़ाती और दूसरे बच्चों को कंप्यूटर सिखाती। रात को फिर भोजन की व्यवस्था करती और सुबह के लिए कुछ तैयारी कर लेती। उसे कभी आराम करते नहीं देखा। रिश्तेदार आते तो कहते—“आपकी बहू है या मशीन?” हम हंसकर कहते—“नजर न लगाओ। हमारी बहू ईश्वर की देन है।” आज प्रणित के दोनों बच्चे

पढ़ाई में सबसे आगे हैं। बहू ने उन्हें अनेक गुण सिखाए, अच्छे संस्कार दिए। घर में सब कुछ है, गाड़ी है, अच्छा बड़ा मकान है, घर में तरह-तरह के सामान हैं, किसी चीज की कमी नहीं है।

उधर प्रतीक के भी दो बच्चे हैं—बड़ा बेटा और छोटी बेटा। वे अक्सर हमारे पास आया करते हैं। वे कहते हैं कि उनकी मम्मी उन्हें रोज बाजार से मंगवाकर खाना खिलाया करती है। उन्हें तरह-तरह के खेल खरीद कर दिया करती हैं। एक दिन प्रतीक की बेटा आंचल ने बताया—“दादी पता है, कल मम्मी ने अंशु को बहुत मारा।” मैंने कहा—“अंशु को भइया कहा कर। तेरा बड़ा भाई है। और क्यों मारा तेरी मम्मी ने अंशु को?” आंचल ने कहा—“अंशु, नहीं-नहीं भइया छठी में फेल हो गया, इसीलिए।” मैंने अंशु को प्यार से समझाया, पढ़ाई में ध्यान देने के लिए कहा। कई बार मैंने बड़ी बहू को कहा है कि बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान दिया करे। उन्हें खेल के इतने साधन देने के बदले पढ़ने के लिए बिठाया कर। घर में भोजन बनाकर खिलाया कर। बाहर का

भोजन बच्चे के मानसिक विकास का बाधक है और शारीरिक स्वास्थ्य का शत्रु है। लेकिन उसे कहां इन सब का असर पड़ने वाला है। उसके पास तो हमेशा बात का जवाब तैयार रहता है। कहती है—“ये बच्चे केवल मेरे ही नहीं हैं, प्रतीक के भी हैं। इनकी जिम्मेदारी क्या केवल मेरी ही है, उनकी नहीं? जब वे इनका ध्यान नहीं रखते तो मैं क्यों इनके लिए मरूं? वे तो सारा दिन दुकान पर पैसे कमाने में लगे रहते हैं, मैं घर में सड़ती रहती हूं। इन बच्चों के यही तो दिन हैं खेलने-खाने के, सो मैंने इन्हें छूट दे रखी है, जितना चाहो खेलो, जितना चाहो खाओ।” इतनी बातें सुनने के बाद मेरे कहने के लिए कुछ नहीं रह जाता है। अब जब बच्चे फेल हो रहे हैं, तो उन्हें मारने से क्या लाभ?

आज मैं सोचती हूं कि असली दहेज कौन लेकर आई—बड़ी बहू या छोटी बहू?

सुर-सदन, डब्ल्यू. जेड-1987,
रानी बाग, दिल्ली-110034

भावर्षि प्रेमचंद तुम्हें प्रणाम

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

वरिष्ठ लेखक डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश' की विभिन्न विषयों पर पिचहतर से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्रिकाओं में लेखों का प्रकाशन।

मां आनंदी पिता अजायब,
धरा लमही की हे! तुम्हें प्रणाम
जिसने जना 'मजदूर कलम का'
दिव्य देह, वह धरा-धाम

धनपत राय श्रीवास्तव तुम थे
तुम्हीं अजायब सुत नवाब राय भी
उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद भी तुम
थे साहित्य सिद्ध, जीवन अभिप्राय
सात वर्ष में तजा मातु ने
चौदह में तज पिता गए
जीवन संघर्षों ने वेध-वेध फिर
भाव शूल थे तीव्र किए

अभाव वही, फिर भाव पुष्प
बन रचना नव देते आयाम
हे लमही के संत तुम्हारी
वाणी-अभिव्यक्ति को शत-शत प्रणाम

'सोजे वतन' को किया नष्ट पर
थमा न लेखनी का सतत प्रवाह
रची कृतियां उत्तरोत्तर उत्तम
देह, वय चाहे हुई सब स्वाह
'सौत' कथा आधारशिला थी
दीर्घ कथा यात्रा मग की
उपन्यास-कथा संगिनी रही बन
तात! रचनात्मक तव पग की।।

कथा पितामह! मां वाणी के वरदपुत्र
प्रेमचंद है तुम्हें प्रणाम
जीवित, विश्व क्षितिज पर तेरी
रचना, सिद्धि, जीवंत काम

शिवरानी के सखा-मीत तुम
उर्दू हिंदी के कथाकार श्रेष्ठ
घिस-घिस, सृजी साहित्य महानिधि
मां वाणी के तपी, ज्येष्ठ
'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला' या फिर
'कायाकल्प', 'गबन', 'रंग' व 'कर्मभूमि' ही
'गोदान' सदृश दे उपन्यास विश्व के
रहें सदा बन अपूर्व धरोहर ही

कलम पुजारी हे लमही के
चली साधना वह अविराम
अक्षर-अक्षर अमर हुए तुम
भावर्षि प्रेमचंद! तुम्हें प्रणाम

अनुवादक, संपादक, स्रष्टा
रूप जगत में हैं कितने
रची साधना जहां मौन हो
हुए प्रकीर्णित तुम उतने
निज दारुण, दैन्य संघर्ष जगत के
बने पीठिका सृजन-कर्म के
अमर कथाशिल्पी बन तुमने
चित्र उकेरे मूल-मर्म के

तात! कलम का इक-इक अक्षर
है हिंदी निधि, तुम्हें सलाम
युग प्रवर्तक! श्रम, लेखन उत्तम
भावर्षि प्रेमचंद तुम्हें प्रणाम।।

'अभिव्यक्ति', 157, गढ़ विहार फेज-1,
मोहकामपुर, देहरादून-248005

धुनकर

इंद्रा रानी

बैंक से सेवानिवृत्त इंद्रा रानी के दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन में सक्रिय।

सर्दियों की आहट पूर्व
बज उठती थी गली-गली
धुनकरों की तानी।
इधर आओ दादी बुलाती
रजाई गद्दों के लिए कपास दिखाती थी
रोशनदान के सहारे बांधी जाती तानी
गूंज उठती फिर वातावरण में स्वर लहरी
टर् टर् टर् टर् टर् टर्

संगीत की लय पर झूमती
कपास उड़ती रुआ रुआ
लगता ढेर जमीं से छत तक
जैसे हो रुई सफेद बर्फ
हिमालय की वादी में आज
बर्फ सफेद रुई-सी झर रही है
आकाश के आवरण में
ये कौन धुनकर छिपा बैठा है
तानी की वाणी है मौन
बस अपने कार्य में जुटा है।

524, पॉकेट-5, मयूर विहार फेज-1,
दिल्ली-110091

अशांत

इंद्रा रानी

रास्तों से आते-जाते
सपनों में बतियाते
उम्र उसकी बीतती जाती है
आस की प्यास बुझ नहीं पाती है।
आहटें सुनाई देती हैं
दिखाई दे जाती है परछाई भी
कभी आगे कभी पीछे
पर मन कहां मानता है
वो तो आंखों देखा सच पहचानता है।
आज वर्षा पश्चात
सब कुछ बदला सा है
फूल तितली भंवरे पंछी
झरने की आवाजें और
लाल चूनर ओढ़े पलाश के वृक्ष
जैसे कुछ कहना चाहते हों।
अशांत मन का आग्रह मान
पलकें मूंद उसने आंचल फैलाया है
और पाया है सुख फूलों का उपहार
हवाओं संग आया संदेश विशेष है
मिलन की जिद छोड़ पगली
उसके पश्चात रहता क्या शेष है।

524, पॉकेट-5, मयूर विहार फेज-1,
दिल्ली-110091

मां लक्ष्मी घर आ रही, खोलो बंद किवार

प्रा. प्रेमचंद सोनवाने

प्राध्यापक के पद से सेवानिवृत्त प्रेमचंद सोनवाने
की अर्थशास्त्र के ऊपर दो पुस्तकें तथा एक
उपन्यास प्रकाशित हो चुका है। वर्तमान में स्वतंत्र
लेखन।

कई रंगों से रंग गए, आंगन-देहरी द्वार
मां लक्ष्मी घर आ रही, खोलो बंद किवार
कमल-फूल पर राजता, लक्ष्मीजी का रूप
सुंदर वस्त्रों से सजा, मोहक मातृस्वरूप
खील-बताशे वस्त्र नए, दीपों का त्योहार
अंधियारे में दीप धर, सारा जग उजियार
अवनि-अंबर पर जले, नन्हें नन्हें दीप
घर-घर रंगोली सजी, बिखरे मोती-सीप
महाज्योति का पर्व यह, अंतस दीप जलाव
बैर-भाव को छोड़कर, सबको गले लगाव
लाल रंग में रंग रही, दीवाली की रात
देहरी पर दीपक जले, प्रिय कर लो कुछ बात
सब कुछ महंगा हो गया, आटा-चावल, दाल
चीनी भी रूठी हुई, पीटो अपना भाल

फूल झड़ियां झड़ने लगीं, करें पटाखें शोर
घर-आंगन महका हुआ, खुशियां हैं चहुं ओर
एक दीपक को बार कर, जा माता के द्वार
मां लक्ष्मी को नमन कर, पा कोई उपहार
हर पत्थर को पूजकर, मांगत है वरदान
बेटी के तन को लगे, हल्दी की पहिचान
रूप आग सा दहक गया, देखा अंतिम सर्ग
अंत, अंत तो रह गया, मन हरिणी सा व्यर्ग
कोई प्यासा ना रहे, ऐसा करो उपाय
जल ही जीवन साथियों, जल न निरर्थक जाए
रिक्त जगह पर आप भी, वृक्ष लगाओ एक
हरियाली भरपूर हो, पक्षी रहे अनेक
भ्रूण हत्या एक पाप है, खुला नरक का द्वार
आने दो जग में उसे, पाओ पुण्य हजार
ज्योतिर्मय त्योहार में, चल कुटिया के द्वार
तमस दूर करने सखा, दीपक एक उजियार

गुरुनानक वार्ड, गणेश नगर,
गोंदिया-441601 (महाराष्ट्र)

अधर पर गीत हों तो...

डॉ.रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

कई पुरस्कारों से सम्मानित वरिष्ठ लेखक रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' की विभिन्न विषयों पर चौदह मौलिक तथा दस संपादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

(1)

अधर पर गीत हों तो ये हवाएं गुनगुनाएंगी
अगर हो मुस्कराहट तो दिशाएं मुस्कराएंगी
अगर दिम्भूट हो जाओ तो बचपन याद कर लेना
तुम्हें मां की दुआएं फिर तुम्हारा पथ दिखाएंगी।

(2)

मन को वश में करने वाले
योगी सदाचरण तक पहुंचे
जो मन के हाथों बिक जाते
वे आचरण-क्षरण तक पहुंचे
धन साधा धनवान हो गए
तन साधा तो तन को पाया
हमने संवेदन को साधा
हम मंगलाचरण तक पहुंचे।

(3)

सदियों नहीं जिंदगी कुछ ही क्षण होती है
अगर बुद्धि दूषित हो तो रावण होती है
रत्ना जब गढ़ देती कोई दिव्य प्रेरणा
तब तुलसी के हाथों रामायण होती है।

(4)

जीवन की सूनी राहों पर
एक पीर से आंख लड़ी थी
सटकर चलती थी पर मेरी छाया
मुझसे बहुत बड़ी थी
मैं जब उसके घर पहुंचा तो
भौचक्का सा खड़ा रह गया
मुझे दूँढने मुझसे पहले
मंजिल घर से निकल पड़ी थी।

(5)

सुख से संन्यासी बनकर दिखलाओ
तुम जगत-प्रवासी बनकर दिखलाओ
ये दुनिया राम मानकर पूजेगी
पहले वनवासी बनकर दिखलाओ।

(6)

निष्क्रियता गई विराग गया
सोया था पौरुष जाग गया
जिस दिन हमने डरना छोड़ा
डर हमसे डर कर भाग गया।।

86, तिलकनगर, बाईपास रोड,
फिरोजाबाद-283203 (उ.प्र.)

महानगरी

ललित शेखर

ललित शेखर : विभिन्न पत्रिकाओं में विविध विषयों पर स्वतंत्र लेखन।

महानगरी में जब वह
आया था
था बिल्कुल अकेला
और एक स्वप्निल दुनिया
जिसमें उसकी जेब में सिवाए चिल्लरों के
कुछ ही उम्मीद थी
लौटेंगे पिताजी भी घर एक बार फिर
घूरती निगाहें ही दुनिया की
या फिर विश्वशांति के
पहरेदारों की अंतरयात्राओं में
सुरक्षित पुनः पुनः फिर हम तुम
स्खलित और रोते बिलखते
पर्दे की रक्तिम आभा में
और आंखों में कातरता
उसने पूछा था ठेली वाले से
दो वक्त की रोटी का इंतजाम हो
पाएगा क्या
जेब मेरी बिल्कुल खाली है।
और जैसे निकल पड़ा या वही
क्रांतिवीर जैसे अखबारों के
दफ्तरों में आवाज लगाता
राही मानो पूछ रहा हो स्वयं से
होगी उसकी भी कब अंटी ढीली
और जवाब में एक पत्ती चाय
और जाने क्या सोचकर उसने
इस फिल्म के प्रसिद्ध सीन की तरह
दूर गगन की छांव में
डायलाग की तरह से
ताने थी गर्दन
उठ चुकी थी मीनार
और चंद सिक्कों के लिए
बेजार और भी हो चुका
बेउम्मीद।

एफ/डी-27, नया कविनगर,
गाजियाबाद-201002 (उ.प्र.)

संपादक

ललित शेखर

एक बार फिर
वापिस वातास की
उच्चतम गहराइयों में
और पाताल की
रुधी हुई उबकाईयों के साथ
संपादक एक बार फिर मौन थे
वह एक अखबार का दफ्तर था
कविताओं और रुबाइयों की
फाइल लिए वह
प्रतीक्षारत था उसकी जिंदगी मानो दर्द का
दूसरा नाम थी।
कोने में रखी घड़ी टेबिल पर
बजा रही थी पौने एक
और उसने उसे एक अजीब
प्रश्नवाचक दृष्टि के साथ देखा था
और कैसे हैं आप
कैसा चल रहा है जीवन
उसकी पीठ पर पड़ रही अत्यधिक दबाव
और प्रत्युत्तर में हिलती गर्दन
एक मीठी मुस्कान के साथ
अब वह अधिक झुक चुका था।

एफ/डी-27, नया कविनगर,
गाजियाबाद-201002 (उ.प्र.)

मैंने लिख दिया प्रेम

कविता विकास

वरिष्ठ शिक्षिका एवं लेखिका कविता विकास के दो
काव्य संग्रह और चार साझा काव्य संग्रह प्रकाशित
हो चुके हैं। विभिन्न पत्रिकाओं में विविध विषयों
पर आलेखों का प्रकाशन।

मैंने लिख दिया प्रेम
हवाओं के तरन्नुम में
आंखों की नमी सोख कर
इठला उठी मेघमाला

मैंने लिख दिया प्रेम
डाल-डाल और पात-पात पर
अब न दावानल रहा, न पतझड़
बरस उठा सावन

वह अवर्णित भावों वाला प्रेम
गजब का तिलस्मी और
अपूर्व तेजस्वी है
समुद्र सा ज्वार इसमें
हवाओं का भार इसमें
परिदों का संगीत थामे
जिजीविषा का पर्याय
प्रेम अलौकिक है

मैंने लिख दिया प्रेम
ब्रह्मांड के एक-एक अणु पर
क्षिति, जल, पावक, अंबर, वायु
सिमट गए एक देह में, और
मेरी संपूर्ण चेतना
यायावरी कल्पनाओं में विचर
कोरे कागज पर उतर गई
मैंने लिख दिया प्रेम
उसी कागज पर
शब्द गीत बन गए

मैं और तुम

शहर के शोर-गुल से दूर
स्याह अंधेरे में
जब दुनिया होती है
नींद के आगोश में
तब मिलते हैं
मैं और तुम

कोई बंदिशें नहीं, शिकवा नहीं
बावफा हम नहीं, बेवफा भी नहीं
तजुर्बों से सीखा है
हर चाहत पूरी नहीं होती वरन्
क्या चांद फलक पे होता
बगावत करके अपनों से
कोई एक ही तो मिलता
चाहे तुम, चाहे वे
या कोई भी नहीं

पर हमने निभाई है दुनियादारी
देखो, कितना महफूज रखा है तुम्हें
अपने ख्यालों-ख्याबों में
बिना रोक-टोक के, अनवरत
जब तक सांसें चलेंगी
मिलते रहेंगे
मैं और तुम।

डी-15, सेक्टर-9, पी.ओ.-कोयलानगर,
जिला-धनबाद-826005 (झारखंड)

एक प्रश्न लघु सा

मीरा अवस्थी

मीरा अवस्थी : कवयित्री मीरा अवस्थी हिंदी एवं अंग्रेजी में लेखन करती हैं। कविता के अलावा इनके लेखन का विषय विज्ञान एवं पर्यावरण हैं। इन्होंने पर्यावरण संबंधी पुस्तकों के अनुवाद का कार्य भी किया है। आजकल स्वतंत्र लेखन कर रही हैं।

एक बूंद ओस है
किस महत्ता की अधिकारी?

दे सकती है आर्द्रता
शुष्क पड़े अधरों को
दे सकती है सिंचन,
सूखे हुए एक पत्ते को
दे सकती है कमनीयता
खिलते हुए पुष्पदल को
सो यह एक बूंद भी
बिना बरसे बादल से भारी है

एक मुट्ठी मिट्टी है
किस गरिमा की अधिकारी?

दे सकती है, प्राणदान
एक सुप्त पड़े बीज को
दे सकती है शरण
अगणित अदृश्य सूक्ष्म जीवों को
दे सकती है योगदान
एक दृढ़ गहन नींव को
तो यह मुट्ठी भर मिट्टी,
एक शिलाखंड से न्यारी है।

एक झोंका पवन का,
है किस ऊर्जा का अधिकारी?
दे सकता है गति सार्थक,

एक जड़ पदार्थ को
दे सकता है परागण
एक स्थिर पुंकेसर को
दे सकता है विस्तार
सुरक्षित एक पतंग को
तो इस पवन-झोंके से
आंधी भी हारी है।

एक रश्मि प्रकाश की,
है किस श्रेय की अधिकारी?
दे सकती है साधन
दृष्टि का एक मानव को
दे सकती है माध्यम
आहार हेतु एक पादप को
दे सकती है संचार
शक्ति जड़ औ चेतन को
तो इस रश्मि कीआई,
दामिनी जय की पारी है।

एक लौ अग्नि की
है किस स्तुति की अधिकारी?
दे सकती है दान ज्ञान का
एक निर्धन जिज्ञासु को
दे सकती है उष्मा,
घरों के चूल्हे जलाने को
दे सकती है मार्ग-परिचय,
पथभ्रष्ट घर लौटाने को

तो इस लौ से, प्रचंडता ज्वालामुखी की,
निश्चय ही हारी है।
और सोच कर देखा है कभी क्या?
एक छोटी सी हंसी अवोध की
है किस कृतज्ञता की अधिकारी?
दे सकती है प्रफुल्लता हार्दिक,
उदास अधर-पटलों को
दे सकती है स्पंदन हर्षमय,
एक निस्पंद हृदय को
दे सकती है चमक अनोखी,
निस्तेज आहत आंखों को
तो यह हंसी छोटी सी,
एक कहकहे भीषण पर तारी है।

अब उठता प्रश्न यही है, क्यों भूलभुलैया में
विशाल उपादानों की?
उलझ गए हम, बलि चढ़ा अपने छोटे
और सहज अरमानों की
क्यों नहीं ढूंढ पा रहे आश्रय छोटा सा,
अवधि लगा अनेक कालों की?
क्या अन्वेषण यह सुगम,
परे पहुंच से, हम नादानों की?

बी-3/1ई, जी.ए.एस.टी.ए. आवास परिसर,
पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

लेखकों से निवेदन

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पत्रिका 'गगनांचल' में सुधी पाठकों और रचनाकारों के मौलिक और अप्रकाशित लेख, कहानी, कविताएं आमंत्रित हैं। पत्रिका के आगामी अंकों में लेख भेजते समय लेखक इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि वे अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी लेख के साथ भेजें। आपका परिचय आपकी रचना के साथ प्रकाशित किया जाएगा। बिना संक्षिप्त जीवन परिचय के हमारे लिए आपका लेख पत्रिका में प्रकाशित करना संभव नहीं होगा।

हमें अपने पाठकों को यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि 'गगनांचल' का जनवरी-फरवरी, 2015 अंक हिंदी के प्रतिष्ठित भक्त कवि रसखान पर आधारित होगा। रसखान के व्यक्तित्व और कृतित्व से जुड़े अनछुए पहलुओं को अगर आप हमारे पाठकों के साथ साझा करना चाहते हैं, तो यथाशीघ्र उनके जीवन और साहित्य से संबंधित लेख हमारे पास भेजें। लेख भेजते समय उससे संबंधित चित्र अवश्य भेजें। रचना भेजते समय इस बात का भी ध्यान रखें कि वह पत्रिका के स्तर और गरिमा के अनुरूप हो। रचना 3000 शब्दों के बीच हो, उससे अधिक नहीं। कृपया अपने लेख 15 मार्च, 2015 से पहले भेजें।

कृपया अपने लेख एवं सुझाव निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

संपादक, गगनांचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

एवं

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी), भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002, भारत

फोन नं.- 011-23379309, 23379310

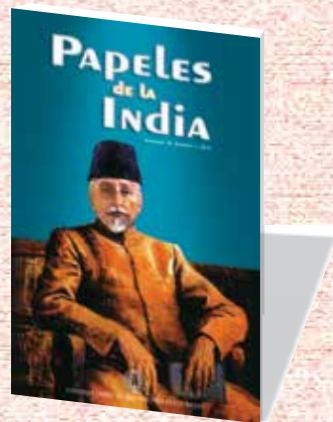
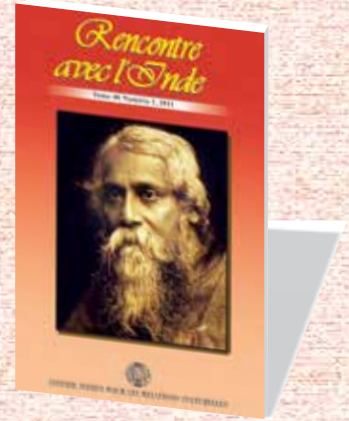
ई-मेल : ddgas.iccr@nic.in तथा pohindi.iccr@nic.in

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

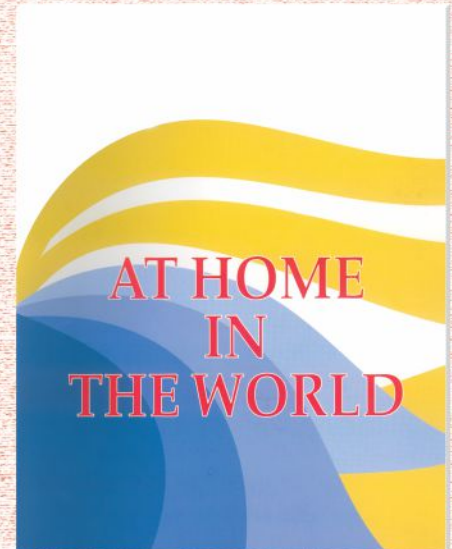
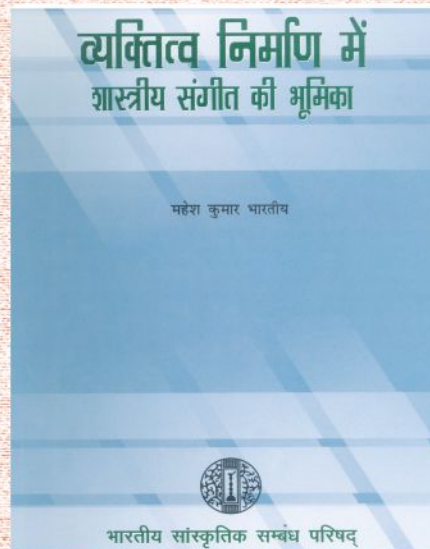
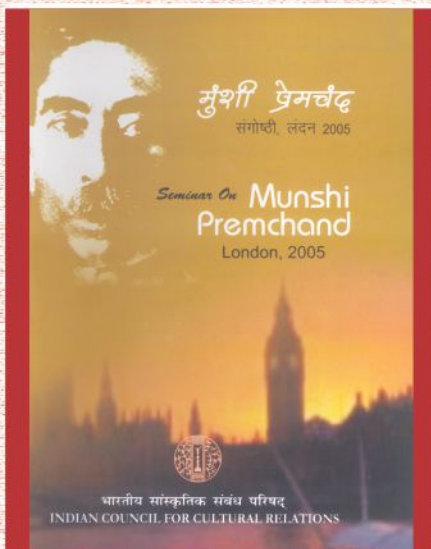
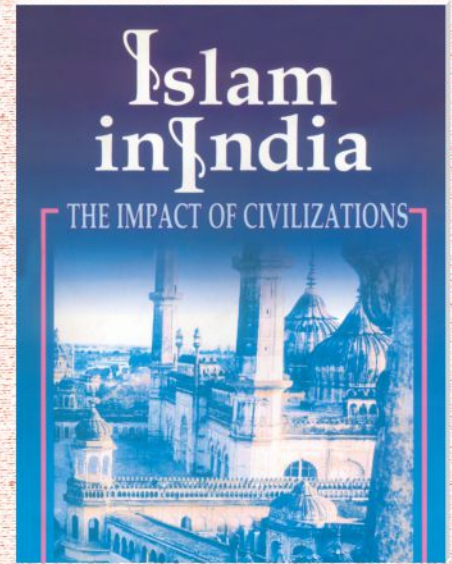
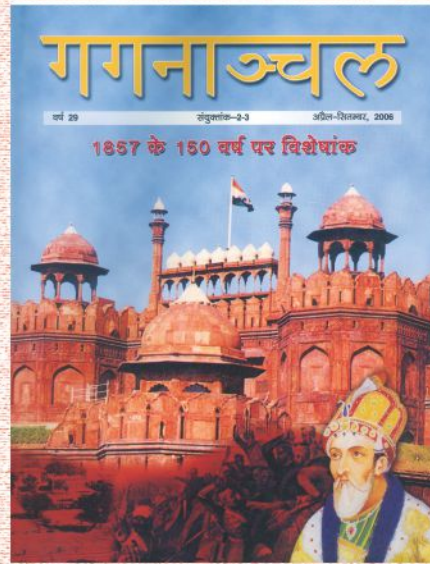
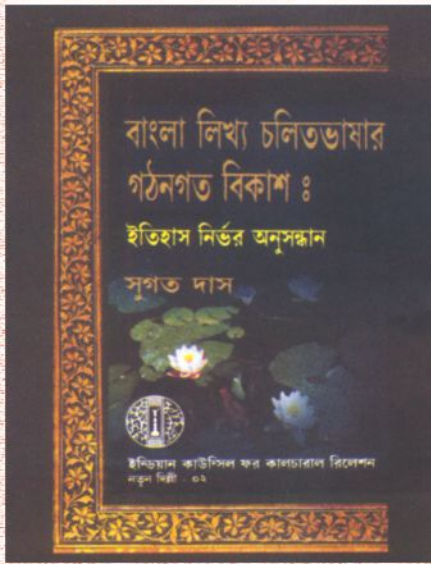
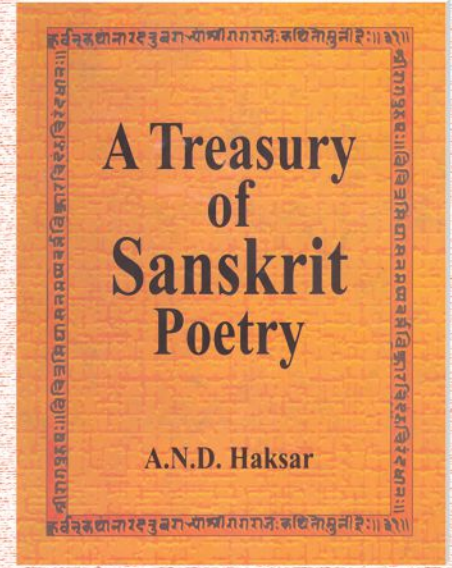
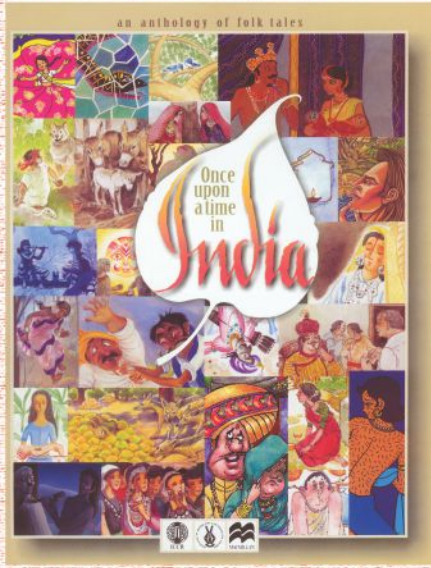
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइजंस (अंग्रेजी), तकाफत-उल-हिन्द (अरबी), और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला आँद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल है। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

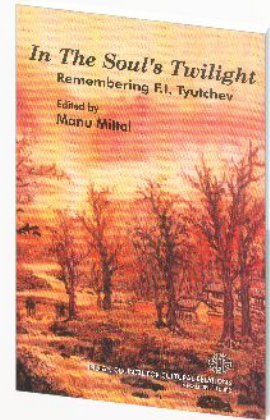
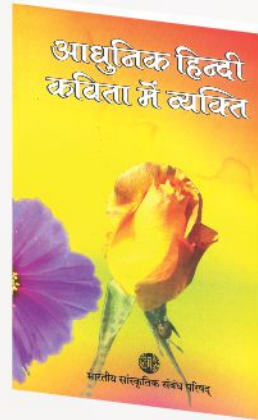
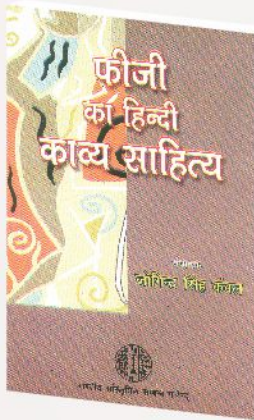
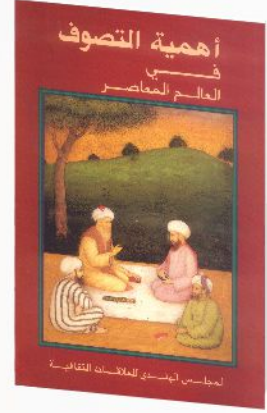
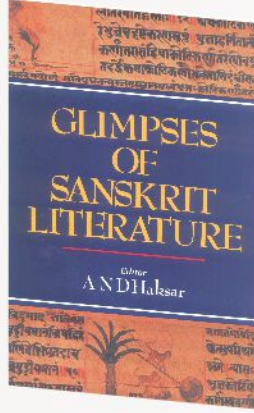
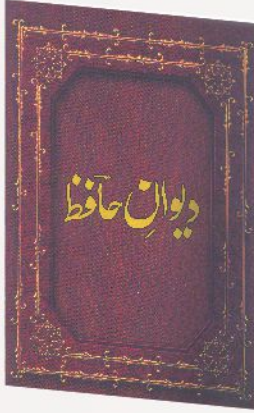
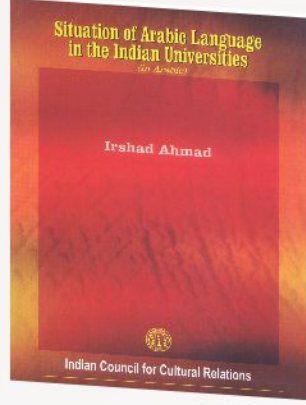
परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन



Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930

फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830

ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in

वेबसाइट: www.iccr.gov.in